कर्म-साधना

प्रकाशक
साहित्य-प्रकाशन
मालीवाड़ा, दिल्ली ।

मूल्य—चार रुपया

मुद्रक
विश्वभारती प्रेस
पहाड़गंज, नई दिल्ली ।

दो शब्द

'कर्म-साधना' की भाषा में प्रवाह है और भाव गहरे हैं। लेखक ने अपने विषय के प्रतिपादन में परिश्रम और विचार से काम लिया है। प्रादेशिक बोली का अच्छा उपयोग हुआ है। ऐसे उद्देश्य-मूलक उपन्यासों की साहित्य और समाज को बड़ी आवश्यकता है।

— वृन्दावनलाल वर्मा

परमादरणीय
प्रोफेसर महावीरप्रसाद जी अग्रवाल को,
जिन्होंने मुझे साहित्य-साधना की
प्रेरणा दी,
सादर समर्पित ।

निवेदन

पाठकों के समक्ष 'कर्म-साधना' का जो स्वरूप उपस्थित है उसमें मैंने मानवीय आशाओं का वह रूप उपस्थित करने का प्रयास किया है, जो अविरल गति से बहनेवाले समय के इस प्रबल-प्रवाह में सुदृढ़ जलयान का काम दे। दिवा-रात्रि, सुःख-दुख एवं उत्थान-पतन का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। विषम परिस्थितियों में बहना, नैतिक निर्बलता का प्रतीक है। विषम-परिस्थिति ही सच्चे मानव-जीवन की कसौटी है। जैसे कुशल चित्रकार अपने चित्र में अप्रत्याशित रूप दिखाने का प्रयत्न नहीं करता, उसी प्रकार आदर्श मानव कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में पड़कर भी कर्तव्य-च्युत नहीं होता। मेरे पात्र पृथ्वी से असंयुक्त नहीं, स्वर्ग के निवासी नहीं; अपितु इसी वसुन्धरा की गोद में खेलनेवाले मानव हैं। आशा है, उनके चरित्र-बल और जीवन की कुशलता से निराश हृदय में आशा का संचार होगा।

मैं अपने प्रयत्न में चाहे भले ही असफल हुआ हूं, किन्तु आशा है जिस प्रेरणा को लेकर मैंने लेखनी उठाई है, उसका ध्यान रखते हुए पाठकगण इसे अवश्य अपनायेंगे।

रामसागर मिश्र

पठनीय उपन्यास तथा कहनी-साहित्य

विसर्जन : प्रताप नारायण श्रीवस्तव (गाँधीवाद तथा राष्ट्रीयता से ओत प्रोत एक रोचक भावपूर्ण कथानक) ६)

चोर की प्रेमिका (सचित्र) : आर. कृष्णमूर्ति; अनुवादक सोमसुन्दरम : (तामिल उपन्यास का हिन्दी रूपान्तर) ४)

परेड ग्राउण्ड : हंसराज 'रहबर' (समाज के पददलित, पीड़ित और उपेक्षित वर्ग का मार्मिक चित्रण) १॥)

विद्रूप : पृथ्वीनाथ शर्मा (स्वस्थ आदर्श को स्थापित करनेवाली एक विमाता का महान् चरित्र-चित्रण) ३)

हृदय-मंथन : सीताचरण दीक्षित (एक हरिजन बालिका की मनोवैज्ञानिक तथा करुणापूर्ण कहानी) ५)

तीस दिन : सन्तोषनारायण नौटियाल ३॥)

अछूत : मुल्कराज आनन्द (अछूत-समस्या के मूल को स्पर्श करने वाली आदर्शवादी कृति) १॥)

आत्मदान : विजयकुमार पुजारी (प्रेम, करुणा, पश्चाताप और आँसुओं से भीगी एक सात्विक प्रणय-कथा) ३)

चुनौती : तकी शिवशंकर पिल्ले (प्रगतिशील युग की विचार-धाराओं से युक्त क्रान्तिकारी कथानक) २॥)

पुनरुद्धार : कंचनलता सब्बरवाल (भारशिव जाति के पराक्रम, साहस और संघर्ष की अमर कहानी) ३)

सिद्धार्थ : (वेदान्त-दर्शन और बुद्ध-कालीन संस्कृति पर लिखा गया नोबल पुरस्कार-प्राप्त महान उपन्यास) २॥)

: १ :

शान्ति अधिक दिन दाम्पत्य-सुख न भोग सकी। २५ वर्ष की आयु में ही गिरीश तथा श्याम को गोदी में पाकर वह पति-सुख से वंचित हो गई।

शान्ति का जन्म काशी के सुप्रसिद्ध कर्मकांडी विद्वान् पंडित विष्णुदेव के यहाँ हुआ था। पंडित जी का घराना पुश्तैनी प्रतिष्ठित धनी व्यक्तियों में गिना जाता था, और आज भी वृद्ध-परम्परा के अनुकूल ही है। ऐसी दशा में उसका लालन-पालन ऐश्वर्यमय वातावरण में हुआ था। माता-पिता धार्मिक, भारतीय संस्कृति के उपासक थे। अस्तु उसकी पढ़ाई धार्मिक रीति से होना स्वाभाविक था। मिडिल तक स्कूली शिक्षा एवं साधारण संस्कृत का ज्ञान उसे घर पर ही कराया गया था। माँ-बाप की अकेली लाडली बेटी होने पर भी गृहस्थ-जीवन से संबंधित प्रत्येक कार्य करना उसे भली भाँति आता था।

"आप सोचा दूर है, प्रभु सोचा तत्काल"—पंडित विष्णुदेव सोचते थे—रूप, गुण तथा ऐश्वर्य-संपन्न श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न लड़के के साथ अपनी बेटी का विवाह करूँगा। किन्तु भाग्य ने पलटा खाया—पूर्व जन्म का संस्कार उदय हुआ। वह रूप-गुण-संपन्न युवक से, किन्तु लक्ष्मी-विहीन कुलीन परिवार में ब्याही गई। पतिदेव बड़े ही सरल, सुशील एवं मृदुभाषी थे। प्रसन्नता तो सदा उनके मुख पर खेलती रहती थी। दुखित व्यक्तियों की संतप्त आत्माएँ उनके पास पहुंचते ही आनंदित हो जाती थीं—पड़ोसी उन्हें 'संकटमोचन' के नाम से पुकारा करते थे। जैसे ही लोगों ने नाम रखा था, उसी के अनुकूल

भगवान् ने शरीर, बल, बुद्धि तथा भगवद्भक्ति आदि देने में भी कंजूसी न की थी। उनका छोटा-सा क़द, गौर वर्ण, लम्बी भुजाएँ, छरहरा मुख बड़ा ही मोहक था। उनके शरीर की दृढ़ता देखते ही सहसा हनुमान जी का स्मरण हो आता था। केवल देवत्व-मनुष्यत्व का ही भेद दिखाई देता था।

पंडित जी का विद्वान्-मंडली में काफ़ी सम्मान था। काशी नगरी अपनी भारतीय संस्कृति की प्रतीक है। इस नगरी की विशेषता संसार से न्यारी है। यहाँ की संपूर्ण वस्तुएँ अपना कुछ विशिष्ट स्थान रखती हैं—विद्वान्-गुण्डे, दानी-कंगले, त्यागी-लोभी, परोपकारी-अपकारी तथा पुण्य-पाप आदि संपूर्ण वस्तुओं की अपनी-अपनी विशेषताएँ अलग-अलग हैं। भूल-भुलैये के लिए तो काशी प्रसिद्ध ही है। यहाँ की गलियों में प्रवेश करने का द्वार घर के दरवाजों के ही समान है, इसलिए यात्रियों को भूलने में थोड़ी भी हिचकिचाहट नहीं होती। इसका पूर्ण अनुभव उसी को हो सकता है, जिसने एक बार भूलकर काशी की गलियों का अनुभव किया हो। गलियों में प्रवेश करने के पूर्व ऐसा लगता है कि टूटे-फूटे, जैसे-तैसे मकान बने होंगे; किन्तु उन सँकरी गलियों के बीच भव्य-भवन नयनों को लुभा लेते हैं।

काशी के पंडित-समाज का आज के वैज्ञानिक युग में भी अपने वेश-भूषा का विचित्र ही ढंग है—पंडिताऊ धोती, दुपट्टा तथा एक अँगोछी शान-शौकत के लिए पर्याप्त है। कंठ में रुद्राक्षी माला, हाथ में कमंडल तथा ललाट पर भस्म आज भी महर्षियों का स्मरण कराती है। पंडितों की बात तो दूर रही, धनी-मानी व्यक्ति भी बिलकुल पंडिताऊ वेश में गंगास्नान, विश्वनाथ-दर्शन करने आते-जाते देखे जाते हैं। उत्सवों एवं सभाओं में बृन्दावनी टोपी का उपयोग करते हैं। जिस प्रकार यह नगरी विद्या, भारतीय वेश-भूषा तथा धर्म-संबंधी विशेषताएँ रखती है उसी भाँति यहाँ की वेश्याएँ भी अपना गौरव समस्त भारत से अलग ही रखती हैं। अपना जीवन केवल भोग-लिप्सा में ही समाप्त नहीं करतीं; बल्कि

साथ ही कलाकारों को वह शक्ति प्रदान करती हैं, जिसका सामना करना संसार की शक्ति के बाहर है। आज भी काशी के कलाकारों की भूरि-भूरि प्रशंसा होती है। इन्हीं सम्पूर्ण विशेषताओं से 'काशी त्रिलोक से न्यारी' है।

काशी नगरी के विद्वानों को अपनी भारतीय संस्कृति पर अभिमान है। भारत में ही नहीं, समस्त देशों में भारतीय शास्त्रों में किसी प्रकार का संदेह उपस्थित हो जाने पर इसी नगरी के विद्वानों को निर्णय करने का अधिकार प्राप्त है। इन निर्णायकों में पंडित 'संकटमोचन' का स्थान प्रमुख था। इन्होंने वेद, व्याकरण, न्याय, वेदान्त, दर्शन, मीमांसा तथा ज्योतिष आदि विषयों का यथावत् अध्ययन कर पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था; किन्तु थे प्रमाण-पत्र विहीन।

पंडित जी ने नौकरी करने के लिए शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया था—आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर देश को शिक्षित बनाने के लिए उन्होंने शास्त्रों का अध्ययन किया था।

पंडित जी व्यवसायी न थे। अपनी प्राचीन परम्परानुकूल अध्ययन-अध्यापन में दिन व्यतीत करते थे। साहू छगनलाल की पाठशाला में पढ़ाते थे। तीस रुपये मासिक वेतन मिलता था; किन्तु स्वच्छन्द थे। उन्हें उपस्थित-समय तथा अध्यापन-घंटे नहीं बताये गये थे। अपना कर्तव्य समझकर स्नान-पूजा के बाद जो समय बचा पाते वह अध्यापन में ही लगाते थे। वे केवल भाषण देकर कुछ मिनटों में ही अपना जी बचाकर भागना नहीं चाहते थे—जब तक विद्यार्थियों को पूर्ण ज्ञान नहीं हो जाता था, पढ़ाई नहीं छोड़ते थे।

पंडित जी के पढ़ाने का अपना ढंग था वे। छात्रों के अंधकार को ज्ञान-ज्योति जगाकर दूर करते थे। उन्हें संसार की अन्य चीजों की चिन्ता न रहती थी—केवल छात्रों को पढ़ाना ही अपना महत्त्वपूर्ण धर्म समझते थे।

विद्यार्थीगण पंडित जी की शैली पर मुग्ध थे। अन्य पाठशालाओं

से भी छात्र पढ़ने आया करते थे। कोठरी में तिल रखने की जगह नहीं रहती थी।

विद्यार्थियों के अलावा बहुत से नवीन अध्यापक पंडित जी की सहायता से अपने विषय का प्रतिपादन करते थे। छात्रों से बचा हुआ समय इन्हीं लोगों के ज्ञान-वर्धन में समाप्त होता था। इन्हीं संपूर्ण विशेषताओं के के कारण पंडित जी एक साधारण व्यक्ति से लेकर बड़े लोगों तक के पूज्य थे। आपनें अपने सरल व्यवहार से जन-समूह में अपना विशेष स्थान बना लिया था।

: २ :

शान्ति अपने सौन्दर्य में अद्वितीय थी। उसकी तुलना संसार की किसी रमणी से नहीं की जा सकती थी। उसके दर्शन से लोगों को भ्रम हो जाता था कि कहीं देवराज के यहाँ से रूठकर कोई अप्सरा तो इस मृत्युलोक का सुख भोगने नहीं चली आई है। धनी-परिवार में जन्म पाकर सम्पूर्ण ऐश्वर्य-सुख प्राप्त होने पर भी यदि सुन्दरता न मिली, तो अन्यत्र कैसे संभव हो सकती है? उसकी रचना में विधाता ने खूब परिश्रम किया था, और उसे अनुकूल सफलता भी मिली थी; किन्तु सौन्दर्य-रचना के प्रलोभन में पड़कर भाग्य-रेखा अंकित करने में उन्होंने भूल कर दी, जिसका परिणाम आज शान्ति को भुगतना पड़ रहा है।

वर्तमान समय में अपने को सभ्यता की चरम सीमा पर विद्यमान कहने वाले समाज के निर्माताओं में जो दाम्पत्य-जीवन का ढकोसला देखा जाता है, वह शान्ति के जीवन में फटकने नहीं पाया था। वह नित्यप्रति अपनें पतिदेव को अपनी भारतीय सभ्यतानुकूल प्रसन्न रखने के लिए सचेत रहा करती थी। वह वर्तमान सभ्यता में अशिक्षित, किन्तु भारतीय सभ्यता की साक्षात् देवी थी। पतिदेव के समक्ष कभी किन्हीं कष्टों का आभास नहीं होने देना चाहती थी। सदा प्रसन्न चित्त से परिचर्या करती थी। पति-पत्नी दोनों में प्रेम-बंधन था, भारतीय दाम्पत्य-जीवन का

आदर्श था, साथ ही अपनत्व का दोनों में अभिमान भी । पतिदेव के अल्प वेतन से ही शान्ति अपने परिवार का भरण-पोषण तथा अतिथियों का सत्कार उचित रीति से बड़ी कुशलतापूर्वक करती थी ।

पति-पत्नी दोनों का जीवन-निर्वाह बड़े ही सुख से होता था; किन्तु ईश्वर से यह न देखा गया । किंचित् बीमारी में ही पंडित जी शान्ति को, यह आशा न थी, कि पतिदेव नन्हें बच्चों-सहित उसे असहाय तथा अभागिन बनाकर इस संसार की यातनाएँ भोगने के लिए छोड़ स्वयं गो-लोकवासी हो जायँगे । पर विधि के विधान को रोकने की किसमें सामर्थ्य है ? स्वयं विधाता ही जब अपने बनाये हुए विधान में किंचित्मात्र परिवर्तन एवं परिवर्द्धन नहीं कर सकते, तो अन्य की बात ही क्या ? शान्ति ब्रह्मा के इस विधान पर कर ही क्या सकती थी ? अपने कर्मों के परिणाम से खीझकर दूसरे पर दोषारोपण करना भी एक अपराध है । शान्ति विधाता को दोषी ठहराने में भी हिचकिचा रही थी, वह मूक अन्तर्ज्वाला में अपने को भस्म कर देना चाहती थी, परन्तु इसमें भी बच्चों के भरण-पोषण की समस्या बाधक हो जाती थी ।

पतिदेव को इस संसार से उठे दो वर्ष बीत चुके, परन्तु आज भी उनके प्रयाण के चित्र शान्ति के समक्ष बिलकुल नवीन हैं । वह सोचती थी, "उन्होंने केवल दो दिन की अस्वस्थता में ही संसार-यात्रा समाप्त की थी । अंतिम क्षण के दो घंटे पूर्व तक वेदान्त-सूत्रों के भाष्य पढ़ाते थे । गुरु-दक्षिणा में छात्रों ने उनका 'शव' ही मणिकर्णिका घाट (काशी) पहुँचाया था । उनकी आत्मा की पवित्रता के संबंध में सन्देह करना भूल है । सैंकड़ों विद्यार्थियों ने दाह-संस्कार में भाग लिया था । शरीर निर्जीव होने पर भी मुख पर मंद मुस्कान थी । श्मशान में चार घंटे तक शरीर में पुनः प्राण-संचार होने की आशा से शिष्यों ने प्रतीक्षा की । पंडित जी ने अपने जीवन-काल में भरसक किसी को निराश नहीं होने दिया; किन्तु उस दिन विवशता थी । शिष्यों को हताश हो अपने पूज्य गुरुदेव के पार्थिव शरीर से वंचित होना पड़ा ।"

शिष्य-मंडली को अपने गुरुदेव के असामयिक निधन पर बड़ा दुःख था। सद्गुरु बड़े भाग्य से प्राप्त होते हैं। शिष्यों ने सोचा था, शास्त्रों का यथावत् अध्ययन कर दिग्विजयी बनेंगे, किन्तु विचार पूर्ण न हो सका। शिष्य-वर्ग कई दिन तक उनके घर आता-जाता और शान्ति को कुछ सान्त्वना दे जाता था।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, सभी ओर से लोगों के हाथ खिचते गये। फलतः वर्षी होने तक शान्ति इस संसार में रहते हुए भी सबसे नाता तोड़ बैठी। अब उसे सान्त्वना देने की बात तो दूर रही, कोई मिलने तक न आता। आते-जाते जब किसी से अचानक भेंट हो जाती तो सीधे बात भी नहीं करता,— बल्कि जल्दी जी छुड़ाकर भागना चाहता। शान्ति को इन कटु व्यवहारों से और भी कष्ट होता था। साथ ही वह सोचती थी—संसार के प्राणी कितने स्वार्थी होते हैं? आज मुझे असहाय देखकर लोग आँख फेर लेते हैं। किन्तु यदि, पैसे भर भी स्वार्थ होता तो जी हुजूरी करने में न चूकते। हे भगवान्! तुम्हारे इस संसार का कैसा विचित्र ढंग?

शान्ति के लिए पतिदेव का निधन-समय जितना ही बीतता जाता था, वह कष्टों के भार से उतना ही नवीन मालूम होता था। चारों ओर दुःख का ही विस्तृत जाल फैला हुआ था। कोई क्षणमात्र के लिए सहायक न था। निस्सहाय वह करुण-क्रन्दन में ही सारा जीवन बिताने को बाध्य हो रही थी।

मानव-जीवन जब दुःखों के पहाड़ से दब जाता है, तब अपने सहयोगी व्यक्तियों एवं सहवर्गियों की याद करता है और उन्हीं याददाश्तों से शक्ति संचित कर आगे की ओर आपत्तियों का सामना करने के लिए बढ़ता है। उसके हृदय में विजयी होने का दृढ़ विश्वास हो जाता है और अपने कर्तव्य में सफल भी होता है। ऐसी दशा में शान्ति को भी अपने पतिदेव या अन्य सहयोगियों का स्मरण हो आना स्वाभाविक था, फिर स्त्री-जीवन में पति का स्मरण, वह भी वैधव्य की

अवस्था में; एक क्षण के लिए भी नहीं भूल सकता । पति-वियोग तथा अन्य सांसारिक कष्टों से वह जर्जर हो चुकी थी ।

शान्ति के घर में पंडित जी के बाद दरिद्रनारायण विराजमान होगये । उनकी कृपा हो तो कैसे कोई कष्टों से मुक्ति पा सकता है ? भाग्यवान् पुरुषों का भार दरिद्रदेव ही ग्रहण करते हैं । इस नियम के पालन में थोड़ी भी भूल नहीं हुई थी । वह दिन-प्रतिदिन उपेक्षित होती जा रही थी ।

शान्ति को अपने हृदय की सहन-शक्ति पर दुःख के साथ आश्चर्य भी हो रहा था । वह सोच रही थी—विधाता ने मेरे हृदय को कितना कठोर बनाया है जो इस कठिन वज्रपात से भी विदीर्ण नहीं होता, और न पति-वियोग की धधकती ज्वाला से ही जल सका । इतना दुस्साहस करने की सामर्थ्य कहाँ से पाई ? पतिदेव ! मैंने कौन-सी अवज्ञा की थी, जो मुझे दर-दर ठोकरें खाने के लिए छोड़ गये ? आप तो संसार के सब तरह के पापों से मुक्ति पाने के लिए उपाय बतलाते थे, क्या मेरे प्रायश्चित् का कोई उपाय नहीं था ?

× × × ×

शान्ति के पतिदेव की आय वर्तमान व्यय के लिए भी पर्याप्त न थी । शान्ति बड़ी कुशलता से कार्य-संचालन करती थी; किन्तु बचत करना हर दशा में असम्भव था । दो वर्ष की इस अवधि में ही सम्पूर्ण आभूषण बिक गए थे, बर्तन बिक गए और ओढ़ने-बिछाने के वस्त्र भी बिक गए । भविष्य के लिए कोई अवलम्ब न था ।

शान्ति के सामने दो बच्चों के पालन-पोषण की कठिन समस्या थी । उसने किसी पुस्तक में माँ-बाप के कर्तव्य के सम्बन्ध में पढ़ा था—"माँ-बाप का परम कर्तव्य होता है कि वे अपने बच्चों का लालन-पालन कर उन्हें योग्य बनायें । यदि माँ-बाप अपने कर्तव्य में असफल होते हैं, तो वे केवल अपने बच्चों के प्रति ही नहीं, अपितु अपने देश के साथ भी घोर अन्याय करते हैं । यही कारण था कि हमारी प्राचीन सभ्यता में

सर्वसाधारण से लेकर जगत् विख्यात नृपति तक भी अपने बच्चों को त्रिकालज्ञ महर्षियों के आश्रम में छोड़कर अपने उत्तरदायित्व को सफल बनाते थे। वे उन्हें महलों में रखकर लालन-पालन के साथ ज्ञान-वृद्धि नहीं कर सकते थे। इन्हीं महर्षियों के आश्रमों से वे प्रकाण्ड विद्वान् होकर निकलते थे, जिनका नाम आज भगवान् भास्कर के समान देदीप्यमान है और भविष्य में भी ऐसा ही रहेगा। साथ ही भारत का एक-एक बच्चा उन्हीं महापुरुषों के नाम पर अभिमान करता है। किन्तु वर्तमान युग के माँ-बाप अपने इस पुनीत कर्तव्य की ओर कम ध्यान देते हैं, यदि प्रयत्न भी करते हैं तो असंस्कृत।"

× × ×

शान्ति पर माँ-बाप दोनों का भार था। यदि अपना ही भार होता तो वह उचित रीति से वहन कर सकती थी, किन्तु एक रमणी को भार के वहन करने में पथ-विचलित होने की आशंका रहती है, और स्वाभाविक भी है।

शान्ति को अपने कर्तव्य में सफल होने की आशा न थी; सफलता के मार्ग-दर्शक समाप्त हो चुके थे। उसे अपने पतिदेव की विद्वत्ता पर पूर्ण अभिमान था। और बच्चों के लिए भी ऐसा ही सोचती थी। पर अभागे किसी कार्य में सफल नहीं होते। इस चिंता में शान्ति को एक क्षण भी चैन नहीं पड़ता था। बच्चों को असहाय तथा मूर्ख देखने की उसने स्वप्न में भी कल्पना न की थी, किन्तु भाग्य की विडम्बना उसके स्वप्नों को कब साकार देख सकती थी?

: ३ :

गिरीश आठ वर्ष समाप्त कर नवें में प्रवेश कर चुका था। छोटा भाई श्याम अभी पाँचवें वर्ष को भी पूर्ण नहीं कर पाया था। दोनों बड़े प्रेम से खेलते-कूदते और मौज उड़ाते थे उन्हें किसी सांसारिक वस्तु की चिन्ता न थी।

गिरीश रूपवान, होनहार लड़का था । अपने पिता की ही तरह सरल, सहज, मृदु-भाषी तथा योग्यतानुकूल दूसरों को सहयोग देने वाला था । अपने सहवर्गियों से हृदय खोल कर मिलता था । उसे मित्रों की संख्या बढ़ाने में किंचित् देरी न लगती थी । एक बार मिलने पर गिरीश के सरल स्वभाव के कारण छोटा-बड़ा कोई भी व्यक्ति अलग नहीं हो सकता था । वह बड़ा ही मिलनसार था । पड़ोसियों को उसके स्वभाव पर बड़ा आश्चर्य होता था । सभी उसे देख कर 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात' उक्ति को बडे गर्व से दुहराते थे ।

वह एक मास से स्कूल जाने लगा है । बगल में ही केशरवानी वैश्य विद्यालय है जिसमें अंग्रेजी कक्षा ८ तक की शिक्षा दी जाती है । गिरीश ने कुछ पहले ही अपनी माता जी से अक्षर-ज्ञान प्राप्त करना आरम्भ कर दिया था, जब वह विद्यालय नहीं जाता था । अगल-बगल के विद्यालय जानेवाले लड़कों से उसका मेल था । विद्यालय की छुट्टी होने पर अपने सहवर्गियों से प्रतिदिन की पढ़ाई का सम्पूर्ण समाचार प्राप्त कर उनके साथ स्वयं अभ्यास कर लेता था । इसलिए उसे कक्षा दो तक की योग्यता विद्यालय में प्रवेश करने के पूर्व ही हो चुकी थी । उसने विद्यालय की कक्षा तीन में प्रवेश पाया । प्रखर बुद्धि के कारण एक माह के अन्दर ही उसने अध्यापकों के हृदय में स्थान पा लिया । वह प्रतिदिन नियत समय पर सहपाठियों के साथ विद्यालय जाता था ।

× × ×

गिरीश की ही कक्षा में मोहन भी पढ़ता था । यह नगर के सुप्रसिद्ध धनी-मानी रायसाहब भोलानाथ का लड़का है । स्कूल जाने के समय बड़ा ही उपद्रव करता है, कभी भी सीधे मन नहीं जाता । पहुँचाने वाले नौकरों की दुर्दशा है । आये दिन नये-नये नौकर स्कूल पहुंचाने के लिए ही रखने पड़ते हैं । घर में कई एक अध्यापक समय-समय पर अपनी कला-कौशल से पढ़ाया करते हैं । किन्तु मोहन ज्यों-का-त्यों मनहूस बना बैठा रहता है । लाख प्रयत्न करने पर भी एक शब्द नहीं बोलता ।

बड़े योग्य एवं अनुभवी शिक्षक अपनी सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक शैलियों का प्रयोग कर चुके; पर सफलता से कोसों दूर रहे ।

मोहन के लिए छः घण्टे विद्यालय में बैठना कठोर कारावास था। रायसाहब ने कई बार विद्यालय में आकर अपने लड़के की परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। अध्यापक महोदय अपने कर्तव्य में असफल रहे। विद्यालय के सम्पूर्ण अध्यापकों ने अपना-अपना कला-कौशल दिखलाया, पर कसौटी में खरे न उतरे। प्रधानाध्यापक महोदय को तीस वर्ष के अध्यापन-काल में इस तरह का कोई छात्र नहीं मिला था। यह प्रथम अवसर था, जबकि उनके सम्पूर्ण अस्त्र शक्ति-विहीन प्रमाणित हुए।

प्रधानाध्यापक महोदय को अपनी शिक्षण-कला पर पूर्ण अभिमान था। वह मूर्ख-से-मूर्ख व्यक्ति को पढ़ाने की क्षमता रखते थे। वह जीवन में केवल रायसाहब के ही लड़के से हारे। इसकी उन्हें बड़ी चिन्ता थी। इसके अलावा रायसाहब द्वारा उन्हें पाँच हज़ार रुपये की वार्षिक आय भी मिलती थी। विद्यालय को सबसे अधिक तथा उचित समय में आपके यहाँ से ही सहायता पहुँचती थी। साथ ही पिछले दो वर्षों से वे विद्यालय के सभापति थे, और उन्हीं का लड़का निरक्षर रहे, यह बहुत ही अनुचित था।

रायसाहब शिक्षा के युग में मोहन को किसी दशा में मूर्ख नहीं रहने देना चाहते थे। ऊँची-से-ऊँची शिक्षा दिलाने का पूर्ण साधन ईश्वर ने उन्हें प्रदान किया था। किसी से कुछ माँगने की आवश्यकता न थी। एक साधारण आदमी भी अपने लड़के को पढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ता, तो भला रायसाहब ही कैसे अपने लड़के को इस सुविधा से वंचित रख सकते थे।

रायसाहब के सब प्रयत्न विफल हुए। वे सोचते थे—विद्वान् होकर दरिद्र होना अच्छा, किन्तु धनवान् होकर मूर्ख होना अच्छा नहीं। रह रहकर उनका चित्त खिन्न हो जाता था। उन्होंने मोहन की शिक्षा के

लिए कोई भी प्रयत्न उठा नहीं रखा। पंडितों से पूछा, ग्रहों की शान्ति कराई तथा तरह-तरह की दवाइयों का प्रयोग किया। लाखों रुपये पानी की तरह बह गये। कोई लाभ न हुआ।

मोहन पढ़ने के ही समय पत्थर बन जाता था, वैसे बड़ा प्रतिभाशाली व बुद्धिमान था। स्मरण-शक्ति खूब प्रखर थी, किन्तु पढ़ाई तथा अध्यापक का नाम लेते ही सम्पूर्ण बुद्धिमत्ता तथा प्रतिभा छाया-चित्र के समान अदृश्य हो जाती थी। बड़ी ही विलक्षण बात थी।

मोहन अपनी कक्षा में बैठा हुआ नागपंचमी का उत्सव मनाने की बात सोच रहा था और उधर अध्यापक जी सवाल पढ़ा रहे थे !

"एक पैसे में साढ़े तीन आम मिलते हैं तो डेढ़ आने में कितने आम मिलेंगे ? सोहनलाल ?··· महावीर ?···सुखराम ?···मोहन ?···"

सभी लड़के नाम लेते ही उठ खड़े हुए, किन्तु मोहन न उठा। अध्यापक महोदय ने दूसरी आवाज लगाई:—"मोहन ?"

चौंककर मोहन "जी मास्टर साहब !"

"सो रहे हो ?"

"जी, नहीं।"

"जी, नहीं। सवाल का उत्तर देने को क्यों नहीं खड़े हुए ?"

मोहन के लिए सवाल का उत्तर देना बड़ा कठिन था। पाँच वर्ष लगातार पढ़ने के बाद रायसाहब के प्रभाव से कक्षा तीन में प्रवेश मिला था, योग्यता से नहीं। फिर भी नागपंचमी के उत्सव की काल्पनिक तैयारी में मोहन सवाल भी न सुन सका और उससे मास्टर साहब से दुबारा पूछना भी असंभव था। मास्टर साहब ने स्वतः सवाल को दुहराया।

"एक पैसे में साढ़े तीन आम मिलते हैं, तो डेढ़ आने में कितने आम मिलेंगे ?"

सभी लड़के मौन, केवल गिरीश उत्तर देने के लिए तैयार था।

"गिरीश, रुको। इस सवाल का उत्तर और कौन दे सकता है ?"

सभी लड़के एक-दूसरे की ओर देखने लगे; किन्तु कोई लड़का उत्तर देने के लिए नहीं खड़ा हुआ। गिरीश पूर्ववत प्रस्तुत रहा, और मास्टर साहब के आदेश पर उत्तर दिया :

"मास्टर साहब, इक्कीस आम मिलेंगे।"

"ठीक ! समझे ! एक पैसे में साढ़े तीन आम मिलते हैं, तो डेढ़ आने में इक्कीस आम मिलेंगे। कल से यदि कोई सवालों का जवाब न देगा तो उसकी (बेत को हिलाते हुए) इसी बेत द्वारा मरम्मत की जायगी। सुन रहे हो, मोहन ?"

मोहन चुपचाप सुनता हुआ कक्षा के बाहर चला गया। गिरीश भी उसके साथ ही निकला। दोनों ने एक-दूसरे की ओर निगाहें गड़ा कर देखा। नेत्रों के वार्तालाप से ही आत्माएँ सम्बद्ध हो गई। वे दोनों परम मित्र बन गये। गिरीश का निवास स्थान जानने की अभिलाषा से मोहन ने पूछा :

"आपका घर कहाँ पर है ?"

गिरीश (मुस्करा कर) बोला "मेरा ?" फिर अंगुष्ठ निर्देश करते हुए कहा, "यहीं स्कूल की बग़ल में।"

"अच्छा, तब तो आपके घर में ही स्कूल लगता है।"

"क्यों आपका दूर है क्या ?"

"नहीं, यहीं ठठेरी बाजार के नुक्कड़ पर है।"

"अच्छा ! आज मास्टर साहब ने जब सवाल पूछा और आपका नाम लिया, तो खड़े क्यों नहीं हुए ?"

उसास लेते हुए—भाई साहब, मेरी पढ़ने की इच्छा नहीं होती। मेरे पिता जी जबरन पढ़ाते हैं। मैं यहाँ से लौटकर नहीं पहुँच पाता और मास्टर साहब आते रहते हैं। एक के बाद दूसरे आ जाते हैं। इस तरह चार मास्टर घर पर पढ़ाते हैं। कोई कुछ पढ़ाता है, कोई कुछ। पढ़ाई से हमारा जी ऊब गया है। नौकर स्कूल पहुँचा जाते हैं, मैं भी आ बैठता हूँ। स्कूल की भी पढ़ाई हमारी समझ में नहीं आती, खाराकर सवाल। फिर आज

तो नागपंचमी का उत्सव मनाने की सोच रहा था, उसी धुन में सवाल नहीं सुना ।"

"मोहन जी, न पढ़ना ठीक नहीं है । घर में बहुत मास्टरों के बजाय एक ही मास्टर से पढ़िए । साथ ही मास्टर साहब के सवालों का उत्तर देना सीखिए । स्कूल में मास्टर साहब की आवाज पर तुरंत खड़े हो जाइए, छिपने की कोशिश मत कीजिए । देखिएगा चार-छः दिन में ही सवालों का उत्तर बनने लगेगा और पढ़ने की इच्छा भी होगी ।"

गिरीश की बातें मोहन को अच्छी लग रही थीं । गिरीश ने जो तरीका बतलाया, उसे करने के लिए वह दृढ़ प्रतिज्ञ होगया । मोहन के लिए पढ़ाई के प्रति उदासीनता के बाद उत्साहित होने का आज प्रथम दिन था। वह गिरीश की मंत्रणा से प्रभावित हो चुका था । अब उसे सरस्वती देवी के वरदान से वंचित रहने की आशंका न थी । दोनों की बातें खतम नहीं हो पाई थीं कि मोहन को लेने के लिए बद्री नौकर आ गया । मोहन ने देखकर कहा :

"क्यों बद्री, हमारा नौकर कहाँ गया ?"

"दूसरे काम से गयल हउअइ, हमें भेजले हउअइ ।"

"अच्छा, चलता हूँ ।" गिरीश से नमस्ते कर मोहन नौकर के साथ चल दिया, और गिरीश वहीं रह गया ।

: ४ :

शान्ति गिरीश के लौटने पर स्कूल का समाचार नित्यप्रति पूछा करती थी । गिरीश आते ही स्कूल की पढ़ाई, खेल-कूद, आदि सारी बातें बड़ी प्रसन्नता से बतला देता था । अच्छे कामों के लिए प्रोत्साहन तथा बुरे कामों से सावधान करना शान्ति न भूलती थी । कभी-कभी जिद कर श्याम भी गिरीश के साथ स्कूल चला जाता था ।

श्याम स्कूल में जाकर बड़े कौतूहल से छात्रों को देखता, और न जाने क्या-क्या सोचता गिरीश से लिपटा रहता, एक क्षण भी अलग न

होता । वह गिरीश के लिये एक बला बन जाता था, इसलिये वह उसे साथ लेजाना नहीं चाहता था । श्याम जिस दिन साथ चला जाता उस दिन गिरीश खेलों में भाग नहीं लेपाता था ।

श्याम सुबह से ही गिरीश के साथ स्कूल जाने के लिए रो रहा था । शान्ति ने डराया, धमकाया—बहुत कुछ-प्रयत्न किया, पर राजी न हुआ । गिरीश जी बचा कर भाग जाना चाहता था । दूसरे दिन नाग-पंचमी उत्सव मनाने के लिए अपने साथियों से परामर्श करना चाहता था । किन्तु श्याम भी छोड़ने वाला न था । खाना बना न था । शाम की शेष बची एक रोटी रखी थी, दोनों ने खाया और स्कूल हाजिर हुए ।

गिरीश के साथ एक-दो बार मास्टर साहब ने श्याम को देखा था, किन्तु कोई आपत्ति नहीं की थी । गिरीश को कोई भय भी न था । कक्षा में अन्य छात्रों की तरह श्याम भी बैठा रहता । वह रह-रहकर लम्बी सांसे लेकर इधर-उधर देखता था । कभी भाई के पढ़ने में बाधा पहुँचाता और कभी दूसरे लड़कों से शैतानी करता इन सब बातोंसे जब थक जाता तो तो सो जाता था । स्कूल का समय समाप्त होने पर गिरीश श्याम को जगाकर घर लाता था ।

स्कूल पहुँचने में आज गिरीश को देर हो गई थी, पर मास्टर साहब से पूर्व ही वह कक्षा में पहुँच चुका था । वंदना मास्टर साहब के आने पर ही होती थी । कुछ मिनटों में वंदना आरंभ होकर समाप्त हो गई । लड़कों ने अध्ययन आरम्भ कर दिया । कुछ लड़के कक्षा के बीच में नागपंचमी की खुशहाली की बातें कर रहे थे । श्याम को नागपंचमी का कोई ज्ञान न था, वह अपनी धुन में मस्त था । कुछ कागज के टुकड़ों को मोड़ता, फिर खोलता; न जाने उसे क्या बनाना चाहता था । वह बार-बार उसके बनाने में तन्मय था ।

मोहन प्रायः नित्य देर से पहुँचता था, किन्तु आज अधिक देरी हो गई थी । मास्टर साहब ने पढ़ाई आरम्भ कर दी थी, और उसमें अन्दर प्रवेश करने का साहस न था । वह गिरीश से बातें करने के लिए

कक्षा में जाना चाहता था। धीरे से कमरे के द्वार तक गया, गिरीश को देखा पर आगे न बढ़ सका। चुपके से लौट आना चाहता था, पर मास्टर साहब की नजर उस पर पड़ ही गई। अब भागना कठिन था। मोहन ने सोचा था—गिरीश को यह मालूम हो जाय कि मैं भी आया हूँ—छुट्टी होने पर बातें करूँगा। पर ऐसा न हुआ। मास्टर साहब ने मोहन को डाँटते हुए कहा :

"मोहन, बाहर से तमाशा देख रहे हो ?"

"नहीं, मास्टर साहब, आज देर हो गई।"

"क्यों देर हो गई ?"

"आज मेरे मामा जी आ गये, इसलिए ।"

"हाँ, तो ऐसा कहो। मामा जी की मिठाई खाने में देर हुई। बाद में भी तो मिल सकती थी मिठाई। मामा जी मिठाई लाकर वापस नहीं लेजाते। चलो बैठो, घंटे भर से पढ़ाई हो रही है।"

मोहन तुरंत दौड़कर गिरीश की बगल में बैठ गया और श्याम को दूर कर दिया। श्याम झगड़ने लगा, वह गिरीश से थोड़ी देर के लिए भी दूर नहीं हो सकता था। फिर मोहन उसके लिए बिलकुल अपरिचित था। गिरीश ने श्याम को दूसरी ओर बैठा लिया। अगल-बगल मोहन-श्याम तथा बीच में गिरीश। मास्टर साहब सवाल पढ़ा चुके थे। अब जबानी सवाल की बारी थी, मास्टर साहब ने पूछा :

"मोहन एक आँख से दस पेड़ देखता है, तो दोनों आँखों से कितने पेड़ देखेगा ? सोहनलाल !···धर्मपाल !···"

सभी लड़कों के मुख पर क्षण भर के लिए मंद मुस्कान दौड़ गई। सोहनलाल खड़ा होकर चुप रहा, और धर्मपाल ने अपनी एक आँख बन्द करके देखा उत्तर देने के लिए खड़ा हुआ और बोला—

"मास्टर साहब, बीस पेड़ देखेगा।"

"हूँ······" मास्टर ने सिर हिलाते हुए कहा, "मोहन, तुम तो पेड़े खाकर ही आये हो" तुम बताओ।"

मास्टर साहब के प्रश्न पर मोहन मुस्कराता हुआ खड़ा हुआ और बोला :

"मास्टर साहब, अभी तक हमने एक आँख से इस प्रकार देखा ही नहीं।"

सभी लड़के ठहाका मार कर हँस पड़े। मोहन चुपचाप खड़ा रहा। मोहन पिछले दिन की गिरीश की मंत्रणा पर सोच रहा था···

मास्टर साहब की मुख-मुद्रा परिवर्तित हो गई। आवेग में आकर कहा :—

"अच्छा तो मैं ही देखकर बताऊँ ?"

सभी लड़के सन्न हो गये। बेंत की मार का आप-ही-आप अनुभव करने लगे। गिरीश ने साहसपूर्वक खड़े होकर कहा...

"मास्टर साहब, मैं बतलाऊँ ?"

"ठहरो, अब मैं ही बतलाऊँगा !"

एक दिन पहले से ही मास्टर साहब ने सवाल का उत्तर न बनने पर मारने की सूचना दे दी थी। उससे मुक्ति पाना असम्भव था। सवाल का उत्तर देने में सोहनलाल से ही मार शुरू होने वाली थी, सभी को प्रसाद में बेंत मिलेगी या कुछ को, यह अज्ञात था। मास्टर साहब ने सोहनलाल की ओर इशारा करते हुए कहा :

"चलो," तेजी से बेंत हिल रहा था।

सोहनलाल का हृदय बेंत के साथ ही हिल उठा। न जाने कितने बेंत पड़ेंगे ! हाथ बढ़ाया, सट से बेंत लगा—बारी-बारी से दोनों हाथों में एक-एक बेंत लगा। मुट्ठी बाँधकर हाथ छिपा लिया और रो पड़ा। मास्टर साहब ने दयाकर छोड़ दिया। अब धर्मपाल की बारी आई। इसे बेंतों की परवाह नहीं थी। दस-पाँच बेंत प्रतिदिन लगते ही थे। मास्टर साहब ने इसकी आंखों में आंसू आते कभी न देखे थे, वह स्वयं मारते-मारते हार खा जाते थे। दो-दो बेंत हाथों में और एक बेंत पीठ पर मार कर पीछे हटा दिया।

मोहन भी बेंतों का स्वाद पाने के लिए चला। घर में कभी दुलार के भी चाँटे न मिले थे, किन्तु आज बेंतों का सामना करना था। उसका हृदय काँप रहा था। मोहन को उठते समय गिरीश ने धीरे से सवाल का उत्तर बतला दिया, किन्तु उत्तर जानते हुए भी मोहन को मार खाने से वंचित रहना असंभव लग रहा था। मास्टर साहब ने हाथ बढ़ाने का इशारा किया—

हाथ बढ़ाते हुए मोहन ने कहा, "मास्टर साहब क्या उत्तर बताने पर भी मार पड़ेगी ?"

मास्टर मुस्कराते हुए बोले —"नहीं उत्तर बताने पर मार न पड़ेगी; बतलाओ।"

मोहन मन ही मन सवाल को दुहराकर बोला—"दोनों आँखों से दस ही पेड़ देखेगा।"

"क्यों ?"

मोहन बोला—"एक आंख बंद करते हुए सम्पूर्ण चीजें दिखाई पड़ रही हैं ? आँख खोल कर दोनों आँखों से भी उतना ही दिखाई देता है।

"ठीक, धर्मपाल समझ रहे हो। एक आँख से जितनी वस्तुएँ दिखाई देती हैं, उतनी ही दोनों आँखों से। दूनी नहीं।"

मोहन प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थान में जा बैठा। मोहन के इस उत्तर से मास्टर साहब को उतना ही आश्चर्य हुआ जितना एक मूक के बोलने पर किसी को हो सकता है।

रायसाहब के सतत् प्रयत्न करने पर तथा अनेक योग्य अध्यापकों के पढ़ाने पर भी मोहन एक शब्द नहीं बोलता था। तीन वर्ष स्कूल में भी आते हो गये; किन्तु उत्तर देना तो दूर रहा, हाज़िरी तक नहीं बोलता। आज आते ही अपने देरी का कारण बताया। अन्य दिनों जब देर हो जाती थी तो नौकर आकर कक्षा में बैठा जाते थे, फिर भी वह बैठना नहीं चाहता था। क्या भगवान् ने इसकी बुद्धि में परिवर्तन कर दिया ? या कोई उत्तम साथी मिल गया ? इसका रहस्य न खुल

पाया। मास्टर साहब के हृदय में कौतूहल हो रहा था।

दो बज गये छुट्टी की घंटी बजी। दूसरे दिन नागपंचमी के उपलक्ष में छुट्टी होने वाली थी—आज दो घंटे पहले ही हो गई। लड़के कक्षा से भरे-भरे करके निकल पड़े।

मोहन तुरंत निकलकर गिरीश की प्रतीक्षा में चौगान में खड़ा था। श्याम की वजह से गिरीश सब से बाद में निकला। एक तो श्याम छोटा, दूसरे सो गया था। उसे साथ लेकर निकलने में देर हो जाना स्वाभाविक था। मोहन की मुख-मुद्रा शायद जीवन में इतनी प्रसन्न कभी न थी। उसे अपने मित्र के उपदेश-पालन का अभिमान था। जिस सवाल का उत्तर कई लोगों ने नहीं दिया था, मार पड़ी थी, और मोहन की भी यही दशा होने वाली थी; उस पर गरीश की कृपा से मार खाने से बचा, साथ ही उत्तर देकर लोगों को अचम्भे में भी डाल दिया था। गिरीश के नज़दीक पहुँचने पर मुस्कराकर बोला :

"कहिए भाई साहब, ये कौन हैं ?"

गिरीश बोला छोटा भाई है।"

"अच्छा, तुम कितने भाई हो ?"

"बस दो ?"

"दो ही ?"

"जी, हाँ। कहिए आज के सवाल का उत्तर कैसा रहा ?"

"हः ! हः ! हः ! बहुत अच्छा !"

"मैंने कहा था न, तुम बहुत अध्यापकों के फेर में मत पड़ो एक ही से पढ़ा करो और स्कूल में मास्टर साहब के बुलाने पर निर्भीकता-पूर्वक सामने खड़े होकर जो बने उत्तर दो। चार-छः दिन में आप-से-आप उत्तर बनने लगेगा और दूसरे लड़के तुम्हीं से पूछेंगे। किन्तु ज़रा परिश्रम करने की आवश्यकता है।"

"मित्रवर, तुमने जैसा बताया है वैसा ही करूँगा। अभी तो हमने पिता जी से कुछ नहीं कहा है। आज पच्चीस तारीख हो गई, पाँच दिन

में मास्टरों का महीना पूरा हो जायगा और मैं कह दूँगा। पहली तारीख से मुक्ति मिल जायगी। अच्छा, कल नागपंचमी का उत्सव है, उसके लिए तुमने क्या सोचा है ? हमने आठ आने के छोटे-बड़े सभी तरह के नाग मँगवाये हैं। अब आगये होंगे।"

"ठीक है, किन्तु मैं कैसे मँगवा सकता हूँ। मेरी माँ तो मुझे पैसा ही नहीं देती और ज़रूरत भी नहीं पड़ती।"

"माँ पैसा नहीं देती ? तो बाबूजी से माँग लो।"

"ठीक कहते हो, लेकिन मेरे बाबूजी नहीं हैं।"

"बाबूजी नहीं है ? कहाँ रहते हैं वह ?"

"माँ कहती हैं कि बहुत दिन हो गये मर गये वह।"

मोहन की आवाज़ रुक गई। उत्साह पर पानी फिर गया। जेब में हाथ डाला— एक दुअन्नी निकाली, गिरीश को देते हुए कहा :—

"लो, इसमें छोटे-बड़े आठ नाग आयेंगे।"

"नहीं-नहीं, तुम रहने दो मां से मागूंगा।"

"माँ से मत माँगना, इसी से नाग ले लेना," उसने हाथ में दुअन्नी रखते हुए कहा

मोहन के आग्रह को गिरीश टाल न सका। दुअन्नी ले जेब में रख ली। और नमस्ते कर दोनों अपने-अपने घर की ओर चल दिये।

: ५ :

स्कूल से गिरीश तथा श्याम के लौटने में अभी एक घंटे का विलम्ब था। शान्ति चिन्तित आँगन में बैठी घर के गिरे हुए भाग को देख रही थी और सोचती थी—आपत्ति आने पर सबसे पहले अपने ही आदमी साथ छोड़ देते हैं ; दूसरों की तो आशा करना ही भूल है। चेतन प्राणियों की बात तो दूर है, अचेतन भी गिरी निगाहों से देख असहयोग करते ह। हाल का बना हुआ मकान अकारण ही ढह गया, शेष भी कुछ दिनों में अपना रास्ता लेगा। पेट भरनेका कोई साधन नहीं, फिर मकान कैसे बनेगा ?

लड़के स्कूल से लौटते होंगे, उन्हें खाने को क्या दूँगी ? सुबह एकही रोटी दोनों खाकर गये हैं, भूखे होंगे। आते ही खाना माँगेंगे। वह रो पड़ी, "भगवान्, मुझे क्यों जीवित रक्खे हो ? मेरे लिए कहीं जगह नहीं। मेरे साथ इन अबोध बालकों को क्यों कष्ट देते हो ?"

× × ×

मोहन से मिली दुअन्नी के लिए श्याम रो रहा था। रास्ते में लोट गया, घर नहीं आ रहा था। दुअन्नी हाथ में लेकर चलना चाहता था। साथ ही गिरीश दुअन्नी को अपने से अलग नहीं होने देना चाहता था। मित्र से पाई हुई नगण्य वस्तु भी अमूल्य रत्न से बढ़कर होती है। श्याम की जिद के कारण गिरीश के लिए दुअन्नी अपने पास रखना कठिन हो गया। एक-दो चांटे भी श्याम को मिले पर वह एक न माना। दुअन्नी लेकर ही शान्त हुआ। गिरीश को हार खानी पड़ी।

श्याम जो अभी तक दुअन्नी के लिए रोता था, पाने पर कुछ खाने के लिए रोने लगा। घर न जाकर उसी जगह खाना चाहता था। सुबह दोनों ने एक ही रोटी में बाँटकर खाया था, पेट कैसे भरता ? ३ बजे तक सन्तोष किया, यही बहुत था; किन्तु रास्ते में भोजन मिलना असम्भव था। बड़ी कोशिश से घर चलने के लिए राजी हुआ। अंदर न पहुँचा, द्वार पर ही पुनः अड़ गया।

× × ×

चौका बिल्कुल खाली था। उसके सत्कार के लिए घर में एक दाना भी न था। अपने को दो दिन से खाना नहीं मिला था, इसकी शान्ति को चिंता न थी ; किन्तु बच्चों को केवल सुबह पूरा भोजन न मिला था और सायंकाल के लिए भी कुछ नहीं था वह उसके लिए बहुत चिंतित थी। अन्न-विहीन शरीर शिथिल हो गया, था। वह सिर पर हाथ रखे नीचे दृष्टि कर अश्रुबिन्दु से भूमि सिंचन में तन्मय थी। कोई सहारा नहीं दिखाई दे रहा था। सहसा गिरीश की आवाज़ आई......

"माँ श्याम नहीं आता, "गिरीश ने खीझकर कहा

शान्ति चौंककर उठती हुई बोलना ही चाहती थी कि दौड़कर श्याम लिपट गया। पीछे से गिरीश भी जला-भुना आया और बोला :

"माँ, श्याम मुझे बहुत परेशान करता है।"

शान्ति ने श्याम के सिरपर हाथ फेरते हुए कहा,—"न करेगा बेटे ?"

श्याम भूख के कारण ही सारा उपद्रव कर रहा था। गिरीश की बातें उसे अच्छी नहीं लग रही थी। माँ का अंचल खींचते हुए कहा:

"माँ भूख लगी है ?"

शान्ति पहले से ही सोच रही थी—"लड़के स्कूल से आते ही खाना माँगेंगे, क्या तो दूँगी ?" और वही हुआ भी। श्याम ने रोते हुए पुनः कहा :

"भूख लगी है।" शान्ति ने उसे हृदय से लगा लिया।

श्याम चुप हो गया। माँ के रोने का कारण न जान सका। यह उसके ज्ञान से बाहर की चीज़ थी। गिरीश माँ को रोते देखकर बोला :

"माँ क्यों रो रही हो ?"

माँ चुप रही।

गिरीश भी रोने लगा—"माँ बोलती क्यों नहीं ?"

आँचल से गिरीश के आँसू पोंछते हुए माँ ने कहा—"तुम्हारे बाबूजी की याद आ रही है बेटा" और गिरीश को सीने से लिपटा लिया। श्याम माँ की गोदी में पुलकित हो पैर हिला रहा था। गिरीश ने माँ के मुख की ओर देखते हुए कहा :

"मैं तो हूँ न ! क्या करना है ? बताओ माँ !"

शान्ति हाथ फेरने के अतिरिक्त आगे कुछ न कर सकी। वह अपने रोने का सही कारण लड़कों के समक्ष प्रकट नहीं करना चाहती थी। एकाएक गिरीश की आवाज़ आने पर अपने आँसुओं के रोकने का प्रयास किया था, किन्तु नेत्रों की अविरल जलधारा रोकना उसके सामर्थ्य से बाहर हो गई। आँसुओं के रोकने के लिए जीवन-यापन के लिए अनिवार्य वस्तुओं की आवश्यकता होती है, जो शान्ति के लिए सहज संभव न था।

श्याम का ध्यान इन प्रपंचों की ओर थोड़ा भी न गया, वह रोटी खाने के लिए व्याकुल था। माँ को देरी करते देख फिर अपनी आवाज़ दुहराते हुए रोने का उपक्रम करने लगा :—

"माँ भूख लगी है। चलो...हुँ...हुँ...हुँ..."

शान्ति कुछ न बोली। पत्थर बनी खड़ी रही। आँसुओं की झड़ी लगी थी। गिरीश भी माँ का साथ दे रहा था, वह सोचता था—श्याम खाना माँग रहा है, इसी से माँ रो रही हैं क्या ? और बोलती भी नहीं। ठीक से सोच नहीं पाया। घबड़ा कर बोला:—

"माँ खाना नहीं बना है ?"

शान्ति चुप रही, गिरीश ने पुनः कहा :

"खाना नहीं बना है, तो हम लोग नहीं खायेंगे। तुम बोलती क्यों नहीं ?"

शान्ति ने भरे कंठ से कहाँ—"हाँ बेटा, नहीं बना है।"

थोड़ी देर गिरीश भी मौन रहा। फिर श्याम से खेलने चलने के लिए कहा। श्याम में इस समय खेलने का साहस न था, किन्तु नाग खरीदने की उत्सुकता अवश्य थी। वह मां की गोद से उतरने का प्रयत्न करते हुए दुअन्नी वाले हाथ को हिलाने लगा। साथ ही गिरीश ने भी नाग लेने की बात कह दी। श्याम माँ को छोड़ कर उछलने लगा। नाग लेने की खुशी में वह सब कुछ भूल गया। दोनों भाई घर से निकल पड़े।

थोड़ी देर शान्ति ने वहीं खड़े रहकर लड़कों के सन्तोष पर विचार किया; फिर भोजन के लिए सोचने लगी। कोई चीज़ नजर के सामने ऐसी न थी जिससे सायंकाल के भोजन का प्रबन्ध हो सके। पतिदेव की मृत्यु होने के दो वर्ष बाद घर की संपूर्ण जायदाद बिक चुकी थी। कपड़े भी पहनने के अलावा और शेष न थे और इनसे कोई काम भी होनें वाला न था। बर्तनों में लोटा, थाली तथा एक पीतल का तसला और वह भी टूटे-फूटे एक कोने में पड़े थे मूल्य में कुछ अधिक के

न थे। अन्दर घर में चारों ओर देखा पर कोई चीज़ न मिली हताशहो खिन्न चित्त आंगन में आ खड़ी हुई।

शान्ति सांसारिक यातनाएँ खूब भोग चुकी थी। कष्टों को सहते हुए बच्चों का पालन-पोषण कर संसार की यात्रा समाप्त करना चाहती थी। उसके सामने बच्चों का पालन-पोषण करना ही कर्त्तव्य था। किन्तु भगवान् उसे अपने कर्त्तव्य में सफल होने का कोई सहारा नहीं दे रहे थे, असफलता दिखाई पड़ रही थी। कर्त्तव्य-भ्रष्ट होकर शान्ति संसार में नहीं रहना चाहती थी, वह छुटकारा पाने के लिए उपाय सोचने लगी :

इस समय बच्चे नहीं हैं, अकेले में संसार से विदा होने का बड़ा सुन्दर समय है। मुझे गंगा की गोदी में प्रवेश कर पति-धाम पहुँचने में विलम्ब न करना चाहिए। वह निश्चय कर चलने के लिए उद्यत हो गई। फिर रुकी, बच्चों की याद आ रही थी,—आकर मुझे ढूढेंगे—न पाने पर दुखी होंगे। स्नेह से हृदय पिघल गया। पति-धाम जाने का साहस टूट गया। माता संसार की सब वस्तुओं का त्याग कर सकती है, किन्तु वात्सल्य का नहीं। चिंतित खड़ी रही—गिरीश और श्याम नाग लेकर वापस लौटे। अपने-अपने नाग पुलकित हो माँ को दिखलाने लगे।

दूकान में गिरीश तथा श्याम दोनों नाग लेने के लिए झगड़ पड़े थे। दूकानदार वयोबृद्ध था, उसके सामने नित्यप्रति लड़के गुड्डी लेने आते झगड़ते और बुड्ढे से ही निर्णय कराकर घर वापस होते थे। उस स्थान में वृद्ध दूकानदार ही न्यायाधीश का कार्य करता था। गिरीश और श्याम के बीच भी निर्णायक बन आधे-आधे नाग दोनों को बाँट दिये थे। दो छोटे-बड़े हर एक ने पाये थे। बड़े ही खुश थे। गिरीश ने नाग पाने पर श्याम से कहा,—"मोहन ने कहा था कि छोटे बड़े आठ नाग मिलेंगे और उतने ही मिले भी"

बच्चों के दिखलाने को प्रसन्नता देख शान्ति ने अपने मुख पर भी मुस्कान लाने का प्रयत्न करती हुई, नाग का स्पर्श कर प्रेमीभिसिक्त हो मधुर स्वर से कहा :

"नाग कहाँ से पाये हो ?

गिरीश और श्याम दोनों साथ ही बतलाना चाहते थे। किन्तु श्याम पूर्णरीति से बतलाने में समर्थ न होते हुए भी बतलाने का उपक्रम करता था। गिरीश ने कहा :

"दूकान से खरीदा है।"

"दूकान से खरीदे हैं ?"

"हाँ !"

"पैसे कहाँ से मिले ?"

"स्कूल में मेरे एक साथी ने नाग खरीदने के लिए दिये थे।"

"अच्छा ?"

नाग लिए हुए दोनों भाई उछलने लगे। बच्चों को देखने से भूखे होने की कल्पना नहीं की जा सकती थी। टन-टन पाँच बज गये। शान्ति भोजन का कोई इन्तजाम न कर सकी, और आशा भी न थी। कोई सहारा न देख मकान बेचने का निश्चय किया और सोचा कि इससे दो-एक साल चलेगा, आगे ईश्वर जो करेगा देखा जायगा।

कुछ क्षण के लिए मकान बेचने पर रहने की समस्या सामने आकर खड़ी हो गई। शहर में एक दिन के लिए भी कोई रहने का स्थान न देगा कहाँ रहूँगी ? पिता जी के यहाँ भी जाना ठीक चीज नहीं।......नहीं ऐसा नहीं ! संकट पड़ने पर ही तो माँ-बाप, भाई-बन्धु का सहारा वाँछनीय है। आज ईश्वर ने उन्हें सब कुछ दिया है; किसी चीज की कमी नहीं है, धन-जन आदि से पूर्ण हैं। जहाँ सैकड़ों आदमियों का खर्च चलता है वह हमारा न चलेगा। पिता जी के यहाँ चलना उत्तम होगा......आप ही आप सोचकर—और सब ठीक है, किन्तु भाभियों के ताने तीखे बाण से भी अधिक कष्ट दायक होंगे। संसार में सब

कष्ट सहे जा सकते हैं, किन्तु ननद-भाभी की फटकार नहीं सह सकती प्राण छोड़ सकती है। सोचा अभी दो-एक दिन के लिए जाती हूं। सदा के लिए नहीं। आधीन रखने पर ईश्वर का भी अनादर हो सकता है। फिर इस समय हमारी दशा ही खराब है। जाना उचित नहीं। आपत्ति पड़ने पर माँ-बाप भी मुख मोड़ लेते हैं। उन लोगों ने अपने कर्त्तव्य का पालन कर दिया। पाला-पोषा, बड़ा किया और कुलीन घर में ब्याह दिया; जिन्दगी भर का ठेका उन पर नहीं है। भाग्य के लिए वे बेचारे क्या कर सकते हैं। मकान बेचना ही निश्चित करके कहा :

"गिरीश तुम दोनों भाई खेलना; मैं अभी आती हूं।"

"अच्छा, जल्दी आना।" श्याम फिर रोने लगा।

श्याम ने हाथ बढ़ाकर माँ के साथ चलने के लिए पुकारा "माँ"...

शान्ति को श्याम का संकेत समझने में थोड़ी भी देर न लगी। उठा लिया, चूमा, हिलाया, झुलाया और गोदी से उतारते हुए कहा।

"गिरीश भैया के साथ खेलना। मैं अभी आती हूँ।" और चल पड़ी।

: ६ :

मुहल्ले में हजारीमल की बड़ी दूकान है, साथ ही उसका कारखाना भी। बनारसी सिल्क की सभी चीजें तैयार होती हैं। दूकान की शाखाएँ कुंजगली तथा ठठेरी बाजार में हैं। सुबह से शाम तक व्यापारियों, दलालों तथा ग्राहकों का जमघट लगा रहता। सेठ जी स्वयं कार-बार देखते थे। बड़ी उत्तम रीति से काम चलता था।

सेठ जी मकान बनवाने के बड़े शौक़ीन थे, आस-पास के खंडहरों को लेकर उन्होंने बहुत सुन्दर कोठी बनवाई थी। देखकर लोग अचम्भित हो जाते थे। मुहल्ले की भव्य इमारतें तैयार होने में सेठ जी की ही सूझ थी। इन्जीनियर भी सेठ जी का सामना करने में संकोच करता था। भवन-निर्माण-कला का न जाने उन्हें कैसे इतना

अधिक ज्ञान हो गया था। बड़ी-बड़ी हवेलियों के बनने में सेठजी से परामर्श चाहा जाता था।

रेशमी वस्तुओं के अलावा सेठ जी ने पंसारी की भी दूकान चलाई थी। वह अभी नई थी। सेठ जी पंसारी की दूकान में अधिक समय व्यतीत किया करते थे। कोठी के नीचे के भाग में पंसारी की दूकान थी और ऊपर रेशम का कारखाना। मुहल्ले के छोटे-बड़े सभी की पहुँच सीधे सेठ जी तक थी। आते-जाते लोग हर-हर महादेव की ध्वनि से गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं को गुंजित कर देते थे। सेठजी हुक्का पीते थे, आराम से गद्दी पर बैठे रहते थे, और यहीं से कार्य-संचालन करते थे।

× × ×

शान्ति सोचती-विचारती सेठ जी की दूकान पर पहुँची। सेठजी गद्दी पर न थे; मुनीम लोग अपना-अपना काम कर रहे थे। इधर-उधर देखा तो कोई दिखलाई न दिया। मुनीम जी से ही पूछा :

"मुनीम जी आज सेठ जी नहीं आये ?"

चश्मा हटाते हुए मुनीमजी ने कहा, "नहीं।"

"कहाँ पर मिलेंगे ?"

"ऊपर बड़ी दूकान में हैं। क्यों क्या काम है ? अभी फुरसत में नहीं हैं।"

"मेरा सेठ जी से ही काम है।"

"अच्छा पधारिये" व्यंग करते हुए हाथ बढ़ाकर कहा, "जरा चेहरे पर सुर्खी है, हम लोगों से बात न करेंगी। सेठ जी से ही काम है।" और मुनीम लोग हँस पड़े।

शान्ति चुप चाप ऊपर जाने के लिए सीढ़ी चढ़ने लगी। कर्मचारी-गण शान्ति को गौर से देख रहे थे। सेठ जी तीन-चार व्यापारियों से बात चीत कर रहे थे शान्ति द्वार के पास तक गई, किन्तु आदमियों को बैठे देख अन्दर न जा सकी।

सेठ जी ने देखा कि कोई औरत आई है। नौकर को बुलाया, रग्घू हाजिर हुआ। सेठ जी की आज्ञा से शान्ति को अन्दर ले गया। शान्ति के पहुँचने के पूर्व ही और लोग निकल चुके थे, केवल एक आदमी बैठा था। शान्ति को सेठ जी अच्छी तरह जानते थे, उसके पतिदेव सम्पूर्ण सौदा सेठ जी की ही दूकान से खरीदा करते थे। पहिचानने में देर न लगी।

"महाराजन ! आज तुमने कैसे कष्ट किया ? पंडित जी के पीछे तो दूकान ही छोड़ दी।"

"हाँ, सेठ जी ! बड़ी मुसीबत में हूँ।"

"तुमने कभी कहा क्यों नहीं ?"

"सेठ जी, दरिद्रनारायण आजाते हैं तो कुछ नहीं सूझता।"

"ठीक कहती हो—लेकिन आज कैसे आई पहले यह बताओ।"

"मैं अपना मकान बेचना चाहती हूँ, इसलिए सेवा में हाजिर हुई हूँ।"

"सेठ जी, गंभीरता पूर्वक—मकान बेचना चाहती हो ?"

शान्ति मौन रही। सेठ जी मकान बेचने का समाचार जानकर प्रसन्न हो गये। संसार की संपूर्ण वस्तुओं में मकान खरीदने में जैसा आनंद सेठ जी को दूसरी वस्तु में नहीं मिलता था। वह मकान को एक सुरक्षित निधि मानते थे। अपने जीवन में इन्होंने किसी का मकान लेने से जवाब नहीं दिया था। भले ही कम कीमत देने के कारण वह न दे सका हो। लम्बी सांस लेते हुए उन्होंने कहा:

"मकान तो बड़ा पुराना है, मौके का भी नहीं है। तुम आई हो, और पंडित जी का हमसे बहुत बड़ा सम्बन्ध रहा है इसलिए ले ही लेंगे।

"यही आशा लगा कर मैं भी आई हूँ।"

"कितने में बेचोगी ?"

"सेठ जी आपको जो उचित जँचे दे दीजिए, मोल-भाव मैं नहीं" जानती।

"ह...ह...ह...! अपनी चीज की कीमत कौन नहीं जानता ?"

"मैं कुछ नहीं जानती।"

"तो भी कुछ तो कहो"

"मैं क्यों कहूँ सेठजी, आप को जो देना हो दे दीजिए।"

"मेरे काम के योग्य तुम्हारा मकान तभी हो सकता है जब मैं चार-पाँच हज़ार रुपये लगाकर उसे अपने ढंग से बनवाऊँगा। अभी तो मेरे लिए खाली ज़मीन ही भर है। इस समय में पाँच सौ रुपये दे सकता हूँ।

शान्ति चुप रही। वह सोचती—एक हजार रुपये से कम न मिलेंगे किन्तु सेठ जी की ज़बान आधे में ही रुक गई। आशा पर पानी फिर गया। दया-पात्री बनते हुए शान्ति ने फिर कहा :

"सेठ जी पाँच सौ रुपये बहुत कम हैं। जगह काफ़ी है, एक परिवार का अच्छी तरह गुजारा हो सकता है। मकान बहुत पुराना भी नहीं है।"

"ऐसी बात नहीं है महराजिन, नहीं तो मैं और रुपये दे देता। तुम्हारे लिए मोल-भाव की कोई बात नहीं है। तुम्हारे बगलवाला इतना बड़ा मकान पारसाल बारह सौ रुपये में लिया है। तुम्हारा मकान उसका चौथाई भी नहीं। सिर्फ तुम्हारी वजह से इतना भी कह दिया। दूसरे का होता तो लेता ही नहीं। पंडित जी का हमारा बहुत दिनों तक सम्बन्ध रहा है; इसका तो ख्याल करना ही पड़ता है।"

शान्ति सेठजी की व्यापारिक कुशलता पर आश्चर्य कर रही थी और सोचती थी कि यदि महाजनों में इतनी चतुराई न हो तो, काम ठप्प हो जाय। सेठ जी की चतुराईपूर्ण बातें सुनकर कुछ रोष में आकर बोली :

"सेठ जी, आपने बड़ी दया की। लेकिन इतने रुपये में मुझे नहीं बेचना है।" वह चलने को उद्यत हुई।

सेठ जी क्रुद्ध होकर बोले, "क्या तुमने समझा था कि दो-चार हजार रुपये मिलेंगे ?"

"नहीं, किन्तु यह भी नहीं समझी थी कि मुफ्त में चला जायगा।"

"अच्छा, जहाँ अधिक में बिकता हो वहीं बेच दो, फिर यहाँ क्यों आई हो ?"

"मैं तो कुछ करूँगी ही—आपको क्या चिन्ता ? सेठ जी आप बेकार ही नाराज हो रहे हैं।"

"नहीं, नहीं, नाराज होने की कोई बात नहीं। तुम भी अपनी समझ के अनुसार ठीक ही कह रही हो, परन्तु मैं भी जहाँ तक उचित समझता हूँ कहे देता हूँ; आगे तुम्हारी जैसी इच्छा। लेकिन हाँ, यदि पाँच सौ में देना हो तो मुझे ही देना।"

"देखा जायगा।"

शान्ति एक तो यों ही सन्तप्त थी। दूसरे सेठजी से मकान का मूल्य सुनकर उसका संताप और भी अधिक बढ़ गया। उसे सेठजी के मोल-भाव पर आश्चर्य लग रहा था। उन्हें चाहिए था कि सहानुभूति प्रकट करते हुए उचित मूल्य देते। पर ऐसा न कर बार-बार पंडित जी का नाम लेते थे, जिससे वह उन्हें हितैषी मान हजार रुपये की चीज पाँच सौ में में ही दे देती। न देने पर क्रोध का कारण बनी, इसका उसे पश्चाताप था।

शान्ति ने कभी कठोर शब्दों का प्रयोग नहीं किया था। लड़कों से भी कटु शब्दों का व्यवहार करना अनुचित मानती थी, किन्तु आज सेठ जी से बातचीत करने में कुछ कठोरता आ गई, इसका उसे क्षोभ था। चलते हुई सेठ जी से कहा :

"सेठ जी, क्षमा कीजिएगा। मेरा स्वभाव इस समय खराब हो गया है। बड़ी उलझन में हूँ।"

सेठ जी हँसकर बोले—"नहीं, नहीं, कोई बात नहीं।"

शान्ति निराश ही घर की ओर चल पड़ी।

: ७ :

शान्ति का प्रयत्न सफल न हुआ। उसने सोचा था सेठ जी, मकान ले लेंगे। अभी सिर्फ पचास ही रुपये लूँगी और धीरे-धीरे आवश्यकता पड़ने पर लेती जाऊँगी। इन पचास रुपयों से दो महीने का काम चलेगा। आज एक रुपये का आटा लेकर घर लौटूँगी, सुबह से बच्चे

भूखे हैं, तुरत खाना बनाकर दे दूँगी इन...विचारों को लेकर सेठ जी के घर गई थी; किन्तु निराश लौटी । अब उसके सामने कोई अवलम्ब न था— और कर ही क्या सकती थी ।

शान्ति का शरीर दो दिन भूखा रहने से शिथिल होगया था ही, धीरे-धीरे चल रही थी । दो-तीन मकान पार करने के बाद ठाकुर संग्रामसिंह की याद आगई । ठाकुर साहब अच्छे जमींदार थे । उन्हें संसार के किसी सुख की कमी न थी, स्वर्गिक आनन्द से जीवन सफल बना रहे थे । उन्होंने भी कई लोगों की जायदाद खरीदी थी । लोग अपनी चीजें अच्छे दामों पर बेच आते थे । सेठ जी की तरह कंजूसी से मोल-भाव करना वे पसन्द नहीं करते थे । गिरवी पर भी रुपया देकर गरीबों का काम चला देते थे । शान्ति ने सोचा—ठाकुर साहब के यहाँ चलकर मकान बेच देना चाहिए, जितना देंगे उतना ही ले लूँगी—रुकी और उधर चल पड़ी ।

शान्ति को अपने जीवन की तरुणाई में भी नगर की सैर करने का शौक न था । वह मुहल्ले के चार-छः लोगों को छोड़ और किसी को नहीं जानती थी । ठाकुर साहब की कोठी गोवर्द्धन सराय पर थी, और शान्ति की ननिहाल भी वहीं थी । शान्ति ठाकुर साहब को अच्छी तरह पहचानती थी । बचपन में अपनी नानी के साथ एक-दो बार जा भी चुकी थी न ।

ठाकुर साहब प्रतिष्ठित जमींदार थे, और बनारसी सिल्क के व्यापार करने का उन्हें शौक था — कुंजगली में बनारसी सिल्क की बड़ी दूकान थी । दूकान का सारा काम मुनीमों पर ही रहता था । दीवाली, दशहरा पर दूकान की शोभा बढ़ाने आते थे; किन्तु दूकान का कार्य खासा अच्छा चलता था ।

शांति ने ननिहाल में सुना था कि ठाकुर साहब दूकान पर कभी नहीं जाते, न जाने कैसे काम चलता है,— मालूम था कि दूकान पर नहीं रहते, साथ ही दूकान भी नहीं जानती थी—कोठी की ओर चल पड़ी ।

सन्ध्या हो गयी थी। बनारसी रईसों की बग्गियाँ कतार से आ-जा रही थीं। एक-से-एक बढ़कर अश्वों की जोड़ी दिखाई दे रही थी। ऐसा ताँता लगा था कि सड़क पार करना आसान न था। काशी नगर-भर की सड़कें अपेक्षाकृत कम चौड़ी हैं; खासकर बुलानाला से गोदूलिया तक। शान्ति ठठेरी बाजार से गोविन्दपुरा होकर गोवर्द्धन सराय जाना चाहती थी, किन्तु बग्गी, एक्का, ताँगा, रिक्शा, मोटर तथा जन-समूह से जल्दी पार करना कठिन था। धीरे-धीरे भीड़ से निकलती हुई रिक्शों, ताँगों से बचकर गोविन्दपुरा की गली में पहुँच गई और तेजी से आगे बढ़ चली।

गोविन्दपुरा की प्रधान गली पर हिन्दू-वेश्याओं के घर हैं, ऊपर उनका निवास और नीचे तरह-तरह की दूकानें। सायंकाल बत्ती जलने का समय हो रहा था—उस मंडली की यह प्रथा थी कि बत्ती जलने के पूर्व अपना शृङ्गार कर वेश्याएँ झरोखों में बैठ जाती थीं। वे ऊपर बैठी हुई देवकन्याओं की तरह संसार की गति देख रही थीं।

शान्ति भी यह जानती थी कि यह मुहल्ला वेश्याओं का है, किंतु उसे कोई मार्ग-ज्ञात न था। तबला ठनक रहा था, सारंगी बज रही थी तथा नूपुरों की झंकार पथिकों को आह्वान दे रही थी। आने-जाने लोग रुकते जाते थे। शान्ति अपनी गति से बढ़ती जा रही थी।

वेश्याएं शान्ति को गौर से देखकर मुहल्ले में नवीन नर्तकी के आने का सन्देह कर रही थीं। उसके रूप, सौन्दर्य एवं सुकुमारता से ईर्ष्या कर रही थीं। कुछ देर बाद शान्ति ठाकुर साहब की कोठी पर पहुँच गई। सन्तरी पहरा दे रहा था। शान्ति ने पूछा"ठाकुर साहब कहाँ हैं ?" प्रहरी ने द्वार की ओर इशारा करते हुए कहा "अन्दर ही हैं। आप जा सकती हैं।"

ठाकुर साहब नहा-धोकर टहलने जाने की तैयारी में थे, किन्तु बैठक से बाहर न हुए थे ठीक इसी समय शान्ति आ पहुँची। ठाकुर साहब उसे

अच्छी तरह पहचानते थे। बाल-काल से ही शान्ति के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर उत्सुकतापूर्वक देखा करते थे। शान्ति के पतिदेव की मृत्यु के बारे मे भी जानते थे। शान्ति के वैधव्य से बहुत लोग परिचित थे। शान्ति की अवस्था देखकर बहुत सी औरतें उसकी अत्यन्त सुन्दरता के प्रति घृणा कर रही थीं। इन सब बातों से ठाकुर साहब अच्छी तरह परिचित थे। शान्ति को देखकर आश्चर्य मे पड़कर बोले :

"अरे शान्ति ?"

शान्ति ने लज्जा से नत-मस्तक होकर मधुर स्वर से कहा, "जी हाँ।"

उठने का उपक्रम करते हुए ठाकुर साहब ने कहा, "आज मेरे घर में चन्द्रोदय ! अहो भाग्य !"

शान्ति चन्द्रोदय शब्द सुनते ही पीली पड़ गई। उसका हृदय काँपने लगा; कुछ उत्तर न दे सकी। चुपचाप चकित सी मुद्रा में खड़ी रही।

ठाकुर संग्रामसिंह ने जब शान्ति के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर सर्व-प्रथम उत्सुकतापूर्वक देखा था, तभी वह उसके सौन्दर्य-सागर में डुबकी लगा कर अपनी वासना पूर्ण करना चाहता थे; किन्तु सामाजिक परवशताओं के कारण सफलता न मिल सकी। साथ ही प्राचीन आर्य-परम्परा के साथ संघर्ष करने का अवसर भी नहीं मिला था। ठाकुर साहब अनेक कठिनाइयों के कारण अपना उद्देश्य सफल नहीं बना सके थे, किन्तु विवाह होने के पूर्व तक पूर्ण प्रयत्नशील रहे। विवाह के अनन्तर इस दिशा में उनका प्रयत्न शिथिल हो गया; किन्तु शान्ति के स्वयं उपस्थित होने पर दबी हुई वासना पुनः जीवित हो उठी। हृदय में आशा का संचार हुआ शान्ति के सौन्दर्य का भर-आँखों दर्शन कर कोच की ओर इशारा करते हुए ठाकुर साहब ने कहा, "शान्ति ! तुम पैरों को कष्ट क्यों दे रही हो ?"

"नहीं, मुझे कोई कष्ट नहीं हो रहा है। आप इसके लिए चिंतित न हों।"

"तुम्हारे लिए में चिन्ता न करूँ ? यह कैसे सम्भव हो सकता है ?" शान्ति मुँह सिकोड़ कर चुप रही। ठाकुर साहब सोच रहे थे — आज ईश्वर ने बड़ी कृपा की, मनोरथ पूर्ण करने के लिए सुगम साधन सुलभ कर वह उसे किन शब्दों में धन्यवाद दूँ। वह बड़ा ही दयालु है। संसार के सभी जीवों की उसे चिन्ता है। वह अपने कर्त्तव्य से एक क्षण भी च्युत नहीं हो सकता। वह मन-ही-मन शान्ति के आलिंगन की कल्पना कर रहे थे। बैठक में ही टहलते हुए उन्होंने कहा, क्यों कष्ट कर रहीं हो ? "शान्ति, बैठ जाओ।"

"कोई कष्ट नहीं है, ठाकुर साहब !" कहकर वह कोच पर बैठ गई। उसको ठाकुर साहब की प्रत्येक बात अप्रिय लग रही थी, किन्तु सुनने पर लाचार थी। जिस कार्य के लिए गई थी, उसे वह अब तक कह भी न कर पाई थी। कटु शब्दों का कालकूट पीने को ही बाध्य हो रही थी। बच्चों के अकेले होने के कारण उसका मन छटपटा रहा था। वह ठाकुर साहब को शीघ्र ही अपनी प्रार्थना सुनाकर प्रस्थान करना चाहती थी।

बोली, "ठाकुर साहब, मेरी एक प्रार्थना सुन लीजिए। मैं जल्दी जाना चाहती हूँ।"

"हाँ, हाँ, प्रार्थना नहीं, आदेश कहो शांति !

"आप जो समझिये।"

"नहीं, नहीं, नाराज न हो। कहो क्या कहना है ?"

"आज मेरे बच्चे भूखे हैं—दिन भर से भूखे हैं। जो जायदाद थी पंडित जी के पीछे इन दो वर्षों में बिक चुकी है केवल मकान बाकी है उसे आज आपके यहाँ बेचने आई हूँ।" वह करुणा सिक्त होकर चुप हो गई।

"हः...हः......हः...कैसी भोली औरत हैं। अप्सरा-जैसी सुन्दरता

पाकर मकान बेचने चली है। हीरे का मूल्य नहीं जानती। अरे ! तू, चाहती तो बड़ी-बड़ी हवेलियाँ बन सकती थीं। ये मकान बिकने की नौबत भी न आती। बच्चे मौज उड़ाते और तू भी रानी बनी बैठी रहती।"

ठाकुर साहब की बात सुनकर शान्ति का चित्त विह्वल हो उठा। क्या सोचकर आई थी, और क्या हो रहा है। हृदय-गति तीव्र हो गई। लम्बी साँस लेती हुई बोली, "ठीक कहते हैं ठाकुर साहब ! लेकिन जिसके भाग्य में दुःख ही लिखा है उसे तो सुख कैसे मिल सकता है ?"

शान्ति के पास आते हुए ठाकुर साहब ने कहा, "शान्ति, अब भी तुम गलत रास्ते पर हो। भाग्य कुछ नहीं करता। मानव-कर्त्तव्य ही भाग्य है। कर्म के समुदाय को ही भाग्य कहते हैं। अभी तक तुमने भाग्य के भ्रम-जाल में पड़कर तरह-तरह के कष्टों का अनुभव किया है, किन्तु अब तुम कर्त्तव्य की ओर अग्रसर होकर देखो। सारी रिद्धियाँ-सिद्धियाँ तुम्हारे पैरों की सेवा करेंगी। वह सुख मिलेगा जो देवताओं को भी अप्राप्य है।" हाथ उठाते हुए बोला ये महल, उपवन एवं सम्पूर्ण ऐश्वर्य तुम्हारे ही तो हैं। तुम्हारे लिए मेरे वक्षस्थल में प्रेम का सिंहासन खाली है। मैं उसी में तुम्हारी स्थापना करके पूजा करना चाहता हूँ। क्या मेरी अर्चना स्वीकार न करोगी ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।"

शान्ति हड़बड़ाकर कोच से उठती हुई बोली, "सावधान ! ठाकुर साहब, कर्त्तव्य के माने यह नहीं होते कि मैं दुष्कर्म से अपनी उन्नति करूँ। अपने धर्म का पालन कर कठोर कष्ट भोगना ही उत्तम कर्त्तव्य है। राक्षसी कर्म से उन्नति संभव नहीं। यदि दुष्कर्म से क्षणिक उन्नति हो भी जाती है तो विनाश शीघ्र ही संभव है।" यह कहकर वह कक्ष से बाहर चलने के लिए उद्यत हो गई।

ठाकुर साहब ने सिर हिलाते हुए कहा—"हूं . तो मैं दुष्कर्म के लिए कह रहा हूँ। ठहरो, बड़ी देवी बनी हो; जा कहाँ रही हो ?

छोटे मुंह बड़ी बात, आई है मकान बेचने, दे रही है उपदेश ! न ज ने कितनों को बर्बाद कर चुकी, अब बड़ी सती बनने आई है।" और हाथ पकड़कर भीतर की ओर खींचा।

शान्ति छूटने का प्रयास करती हुई बोली "छोड़ो—छोड़ो !" चिल्ला उठी आतुरता से चुम्बन का प्रयास करते हुए ठाकुर ने कहा—"हः हः हः कितने रुपये चाहिएँ ?"

शान्ति अपनी सारी शक्ति लगाकर उस पामर की दृष्टि से ओझल होना चाहती थी। परन्तु विषयासक्त ठाकुर उसे कब छोड़ने वाला था। उस समय शान्ति शान्ति का प्रतीक न रहकर एकाएक क्रान्ति-रूप में परिणत हो झटक कर ठाकुर साहब से अलग हो गई। वह अधर्म के पाश से छूटकर लम्बी साँस लेती और काँपती हुई अलग खड़ी ठाकुर साहब को फटकार रही थी, "दुष्ट तूने नारी को अबला समझकर उसके रूप, सौन्दर्य एवं कोमलता को इन्द्रियों की वासना की तृप्ति का साधन मात्र समझा है ! किन्तु नारी अबला न रहकर अपने सतीत्व की रक्षा के लिए जौहर का ताण्डव नृत्य दिखलाने के लिए सबला हो जाती है। नारी ही जगज्जननी के रूप में संसार का सृजन करती है और वही चंडी बनकर संहार भी। वासना की माद-कता में बेहोश हो अपने आपको मत भूल ! नारी का अपमान ही देश के पतन का कारण बनता है और सम्मान समृद्धि का साधन। कुकर्मी ! तुझे एक शरणागत नारी पर अत्याचार करने को उद्यत होते शर्म नहीं आई ? नारी के गौरी रूप को चंडी बनाना चाहता है ?"

× × ×

ठाकुर क्रोध से कांप रहे थे। शान्ति का क्रोध अभी शान्त न हुआ था। वह आवेश में कहती ही जा रही थी। प्रभावती अन्दर से बैठक में स्त्री की आवाज सुनकर दौड़ती हुई आई और पहुँच कर देखा—ठाकुर साहब अपराधी के रूप में खड़े अपनी गलती स्वीकार करने की मुद्रा में जल-भुन रहे थे, शान्ति डाट रही थी। यह दृश्य देखकर प्रभावती

घबड़ाकर अपने पतिदेव की ओर देखती हुई बोली, "यह क्या हो रहा है ?"

ठाकुर साहब चुप रहे। शान्ति आवेश में थी ही, झट बोली, "अपने ठाकुर साहब से ही पूछो।"

शान्ति की ओर देखकर प्रभावती ने कहा, "मैं ठाकुर साहब से ही पूछ रही हूँ। आप क्यों बिगड़ उठीं ?"

"अच्छा, पूछ लो ! मैं क्यों बिगड़ रही हूँ, यह भी यही बतायेंगे।" यह कहकर वह बाहर चली गयी।

प्रभावती शान्ति से और अधिक बातें न कर सकी।

: ८ :

पुरोहित जी ने अपने जीवन-काल में केवल दो ही धनी एवं प्रतिष्ठित चेले मूंडे थे। वह भी अपनी पंडिताई से नहीं, सेवा से। पुरोहित जी के परिवार का भरण-पोषण इसी पौरोहित्य-वृत्ति से चलता था। खाने-पहनने के लिए किसी प्रकार की कमी न थी। रायसाहब तथा ठाकुर साहब के यहाँ नित्यप्रति सायंकाल तक एक बार पहुँचना उन्हें नितान्त आवश्यक था। रायसाहब के यहाँ सुबह ८ बजे तथा ठाकुर साहब के यहाँ सायंकाल ७ बजे का समय निश्चित था। रायसाहब संस्कृत-भाषा का कुछ ज्ञान रखते थे, अतः उन्हें साहित्यिक चर्चा में अति रुचि थी। ठाकुर साहब अँग्रेजी के पूर्ण विद्वान् थे, पर संस्कृत से बिलकुल अनभिज्ञ। पुरोहित जी से पौराणिक गप-बाज़ी सुनने का शौक़ रखते थे। कुछ देर मनोरंजन हो जाता था। यही पुरोहित जी की जीविका का साधन था।

सायंकाल ७ बजने में कुछ ही समय शेष था। पुरोहित जी ठाकुर साहब के दरबार में जा रहे थे और मार्ग में सोच रहे थे—ठाकुर साहब की अवस्था चालीस वर्ष से कम न होगी, किन्तु कोई सन्तान नहीं हुई, इससे बहुत चिंतित रहते हैं। बहू आये भी दस-बारह वर्ष हो रहे हैं।

दोनों स्वस्थ भी हैं, न जाने ईश्वर क्यों विमुख है ? यदि भगवान् एक सन्तान दे-दें तो न जाने कितने कंगालों के घर बन जायें । घर-घर खुशियाँ मनाई जायें । आज ठाकुर साहब को क्या कमी है ? बड़े-बड़े हाकिम दरवाज़े पर आकर जी-हुजूरी करते हैं; अपार धन-राशि से भवन सुसज्जित हैं; किन्तु एक सन्तान के बिना सब व्यर्थ है ।

एक बार ठाकुर साहब ने अपनी जन्मपत्री भी दिखलाई थी । सन्तान होने का योग तो अवश्य है । शान्ति कराई जाय तो सफलता अवश्य मिलेगी । मैंने बतलाया भी था,—इसे ठाकुर साहब ने स्वीकार किया था और विधान भी पूछा था । मुझे आज चल कर पुत्रेष्ठि-यज्ञ करने लिए विधान बतलाना चाहिए ।

ठाकुर साहब अँग्रेजी पढ़े होने के कारण अपने भारतीय धार्मिक कृत्यों पर कम आस्था रखते थे; किन्तु उनकी पत्नी उतना ही अधिक । यह भेद होते हुए भी सन्तान के हेतु दोनों के धार्मिक मत एक थे, ऐसा होना स्वाभाविक है । आपत्ति आ जाने पर सड़ी वस्तु में भी विश्वास हो जाता है । इतनी बड़ी जमीदारी, बड़ी-बड़ी हवेलियाँ तथा अपार ऐश्वर्य को सुरक्षित रखने के लिए ठाकुर साहब के पीछे कोई न था । अतः पुत्र-प्राप्ति के लिए एक मत होकर सफलता की कामना करना उनके लिए स्वाभाविक था ।

पुरोहित जी के लिए ठाकुर साहब के यहाँ कोई पर्दा न था, वे स्वच्छन्दता से आ-जा सकते थे । भारतीय सभ्यता में ऋषियों, मुनियों एवं पुरोहितों के लिए प्राचीन काल से कोई प्रतिबन्ध नहीं रहा है । वे अपने सदुपदेश से ज्ञानवर्द्धन कर समाज की उन्नति में योग देते थे । आज भी यत्र-तत्र इस परम्परा का आंशिक पालन हो रहा है । पुरोहित जी अपने को उन्हीं महर्षियों की सन्तान मानकर सत्यनिष्ठ होने में स्वाभिमान समझते थे, और था भी । सात का घंटा सन्तरी बजा रहा था—पुरोहित जी कोठी के द्वार पर उपस्थित हो गये । सन्तरी ने झुककर प्रणाम किया और पुरोहित जी ने आशीर्वाद देकर कोठी में

प्रवेश किया।

हरी-हरी घास उमंग से बढ़ रही थी। प्रत्येक वृक्ष श्रावण की झर-झर वर्षा से धन्य हो रहा था। उसे अब ग्रीष्म की प्रचण्ड लू का लेशमात्र स्मरण न था। समय ने पलटा खाया; झुलसती हुई लतिकाएँ सजल वायु के झोकों से आनन्दित हो अपना रूप परिवर्तन करने लगीं। पक्षी करुण-क्रन्दन छोड़ मधुर गीत गा रहे थे। वे अपने-अपने जोड़ों के साथ सुख से फूले नहीं समाते थे। बीच-बीच में तरह-तरह के फूल खिले हुए थे। चारों ओर बादल घुमड़ रहे थे। उपवन की शोभा देखते ही बनती थी।

पुरोहित जी आनन्द से प्रकृति-सौन्दर्य देखते हुए जा रहे थे; और मन में ठाकुर साहब को नवीन पथ की ओर अग्रसर होने के लिए उपदेश देने की बात सोच रहे थे, साथ ही विधाता से मंगल-कामना के लिए हाथ पसार रहे थे।

× × ×

शान्ति अपना मकान बेचने को गई थी, किन्तु वहाँ ऐसा न होकर "आये थे हरि-भजन को ओटन लगे कपास" वाली कहावत चरितार्थ हुई। घर बिकने की जगह सतीत्व बिकने की नौबत आ गई। शान्ति ने कभी स्वप्न में भी इस परिस्थिति की कल्पना न की थी। सारी सम्पत्ति बिक चुकी थी, केवल धर्म ही शेष था। प्रभावती के अचानक उपस्थित हो जाने से शान्ति को भागने का अवसर मिला। ठाकुर साहब की बैठक से निकलकर वह जल्दी-जल्दी सीढ़ी उतर रही थी। पैर सीधे नहीं पड़ रहे थे। क्रोध से शरीर काँप रहा था—उसे सँभालना उसके काबू के बाहर था—परिस्थिति से लाचार यों ही वेग से पैर बढ़ रहे थे।

उधर पुरोहित जी भी बैठक में जाने के लिए सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे। शान्ति को यह अनुभव हुआ कि कोई आदमी नीचे से आ रहा है, परन्तु पहचान न पाई। पुरोहित जी की सीढ़ी चढ़ने की गति

धीमी थी। शान्ति को काँपते और उतरते देखकर पुरोहित जी को कुछ आश्चर्य हो रहा था। पुरोहित जी यह शंका कर ही रहे थे कि शान्ति दीवार से टकराई और गिरी। गिरते ही कुछ आवाज हुई।

वह टकराकर पुरोहित जी के ऊपर गिरी थी; अतः वह अपने को दीवार में टकराने से न बचा सके। बायें हाथ में चोट लगी। झिझक कर शान्ति को दीवार के सहारे करते हुए क्रोधित हो दायें हाथ से बाँया कंधा मलते हुए बोले, "कौन है दुष्टा ! पशु की तरह सीढ़ी कूदती है। ईश्वर ने बचा लिया नहीं तो आज अकाल मृत्यु हो गई होती।"

पुरोहित जी अपने कपड़े सँभाल कर चलना चाहते थे। पैर उठे और रुक गये। शान्ति को पहचानते हुए सहानुभूति प्रकट कर कहा, "ओह ! शान्ति यह तो हमारे मुहल्ले के पंडित संकटमोचन की स्त्री है। यहाँ कैसे आई थी ?" पगड़ी उतार हवा करते हुए शान्ति को हिलाया-जुलाया, किन्तु वह बेहोश थी, पुरोहित जी को कैसे पहचानती?

कुछ क्षणों के लिए वह संसार की चिताओं से मुक्त थी। उसे अपने बच्चों की भूख प्यास का भी ध्यान न था—

पुरोहित जी कुछ मिन्टों तक हवा करते हुए शान्ति के वहाँ अचानक पहुँचने पर आश्चर्य कर रहे थे; शान्ति कभी किसी के यहाँ मोहल्ले में भी नहीं जाती। उसका स्वरूप सब लोग नहीं पहचानते थे। हाँ, पंडित संकटमोचन की प्रसिद्धि के कारण लोग उसे जानते थे। साथ ही उसका सौन्दर्य ही उसकी प्रसिद्धि के लिए पर्याप्त था, किन्तु शान्ति के लिए इसकी कोई उपयोगिता न थी।

जब उसे कुछ होश आया तो उसने करवट ली; आँखें तिलमिलाईं, लम्बी श्वास लेकर थोड़ा सजग हुई और उसने सामने देखा कि अपने मुहल्ले के और पतिदेव के साथी पुरोहित जी उसे हवा करते हुए खड़े थे। कुछ शरमाई और बोली, "पुरोहित जी ?" और रो पड़ी।

"नहीं-नहीं, शान्ति रोओ मत। नहीं तो फिर बेहोशी आ जायगी।

अभी ठीक हुई जाती हो।" तेजी से हवा करते हुए पुरोहित जी ने कहा।

शान्ति ने अपने कपड़े सँभालने का उपक्रम करते हुए पुरोहितजी की ओर हाथ बढ़ाया। पुरोहित जी ने हवा करना बंद कर हाथ पकड़ कर धीरे से उसे उठाया और-क्रम से अवशेष पाँच सीढ़ियों को पार कराया। शान्ति पूर्णतः होश में आगई थी। पुरोहित जी का सहारा छोड़कर रुक-रुक कर चलती हुई आँसुओं को पोंछ कर बोली, "पुरोहित जी, आज आपने मेरे प्राण बचा लिए। आप न होते तो मुझे बड़ी चोट आती और प्राण बचना असंभव हो जाता। यहाँ मुझे उठाकर फेंकने-वाला भी कोई न था। मेरे कारण आपको भी चोट आई।"

"शान्ति! चिंता न करो। जो ईश्वर करता है वही होता है। हो सकता है, तुम्हारी सहायता के लिए ही ईश्वर ने मुझे यहाँ भेजा हो।"

शान्ति के साथ पुरोहित जी कोठी की परिधि के बाहर आकर सड़क की पटरी पर चल रहे थे। अब तक शान्ति बिलकुल ठीक हो गई थी। चोट में पीड़ा थी, किन्तु लँगड़ाना बंद हो गया था। वह ठाकुर साहब के यहाँ क्यों गई थी, इस भेद को अब तक पुरोहित जी न जान पाये थे। उनका मन इसके लिए अकुला रहा था, किंतु प्रश्न करने में भी उन्हें संकोच होता था। बहुत देर तक अपने को इसकी जानकारी में वे अनभिज्ञ न रख सके। शान्ति से ठाकुर साहब के यहाँ आने का कारण पूछ ही बैठे, "शान्ति, आज तुमने ठाकुर साहब के यहाँ आने का कैसे कष्ट किया?"

"पुरोहित जी, आज मैं अपना सब कुछ बेचने आई थी।"

पुरोहित जी न समझ पाये और उन्होंने आश्चर्य से फिर पूछा, "क्या बेचने आई थीं?"

अपने अंचल से आँसू पोंछते हुए उसने कहा, "सब कुछ।"

"स्पष्ट कहो—"

शान्ति थोड़ी देर कुछ न बोल सकी। फिर बोली, "आज सुबह से मेरे बच्चे भूखे हैं, घर में कोई चीज़ न थी और रुपये-पैसे भी न थे। सारी जायदाद बिक चुकी। ठाकुर साहब के यहाँ मैं अपना मकान बेचने आई थी।"

"मकान बेचने आई थी? अब तक तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा? कुछ तो प्रबन्ध होता ही! इतना कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता थी?"

"पुरोहित जी, अभी आपने कहा कि जो भगवान् करते हैं वहीं होता है तो मैं उनके क्रम को कैसे बिगाड़ सकती हूँ?"

"खैर, कोई बात नहीं। अभी इन्तजाम हो जायगा, किन्तु पहले से ही बतलाना चाहिए था। अपने आदमियों से ही तो विपत्ति में मदद ली जाती है। हाँ, मकान लेने के लिए ठाकुर साहब ने फिर क्या कहा?"

शान्ति इस प्रश्न को सुनते ही सन्न हो गई। पुरोहित जी से बातें करते समय उसका मन कुछ क्षण के लिए ठाकुर साहब के दुष्कर्मों की ओर से हट गया था, किन्तु पुरोहित जी के पूछने पर पुनः उस घटना का रूप सामने आ गया। उसने करुण स्वर से कहा, "क्या बताऊँ? पुरोहित जी, बताने लायक भी नहीं है। मैं मकान बेचने गई थी, किन्तु जिन्हें लक्ष्मी का वरदान प्राप्त है, उन्हें मकान की अपेक्षा नारी की इज्जत से खेलना अधिक प्रिय है। ईश्वर ने बड़ी मदद की कि धर्म बचा।"

इतना सुनते ही पुरोहित जी का क्रोध भभक उठा। वह बोले, "अच्छा, ठाकुर साहब की यहाँ तक हिम्मत? इस नीच को मिट्टी में न मिला दिया तो ब्राह्मण नहीं।"

"नहीं-नहीं पुरोहित जी, आपको विशेष क्रोधित होने की आवश्यकता नहीं। वह अपने कर्त्तव्य का फल स्वयं भुगत लेगा। जो करेगा सो भरेगा। अन्यायी और दुराचारी आप ही-आप नष्ट हो जाते हैं। उन

लिए प्रयत्न करना व्यर्थ है। आप पंडित हैं, सब कुछ जानते हैं।"

"ठीक कहती हो शान्ति! लेकिन आततायियों का शीघ्र ही वध कर देना चाहिए। वे जितने दिन इस पृथ्वी में रहते हैं उतने ही दिन भार बनकर संसार का अहित करते हैं। उनका एक क्षण भी जीना महा अनर्थकारी होता है महापुरुषों ने कहा है।"

: ९ :

शान्ति के कठोर उत्तर को सुनकर प्रभावती किसी तथ्य तक न पहुँच पाई थी। अब उसका निराकरण भी होना संभव न था। शान्ति वहाँ से चली गयी। बरामदे से उसको पुरोहित जी के साथ जाते भी उसने देखा। शान्ति पुरोहित जी से कुछ बातें कर रही थी। वह भी स्पष्ट न सुनाई दीं। वह एक ही वाक्य सुन पाई—"ईश्वर ने मदद की।"

शान्ति ठाकुर साहब को अपराधी बनाकर डाँट रही थी, प्रभावती ने आकर केवल अंतिम शब्द सुना था। क्रोधित होकर शान्ति कह रही थी—"एक अभागी शरणागत नारी पर अत्याचार करने को उद्यत है, शर्म नहीं आती। नारी के गौरी रूप को चंडी बनाना चाहता है?" इसी से प्रभावती ने ठाकुर साहब की शैतानी का अन्दाज लगा लिया था। "ईश्वर ने मदद की" इससे बात और भी स्पष्ट होगई।

ठाकुर साहब प्रभावती के प्रश्न का उत्तर देना उचित न समझकर मौन हो रहे। वह इसी में अपनी खैर मना रहे थे। उनको यह विश्वास न था कि शान्ति इस रूप में सामने आयेगी। उन्होंने सुना था—रूपवान् स्त्री अपने सौन्दर्य-मद में मस्त हो अपने रास्ते से भटक जाती हैं, यही कारण था कि वे पर-पुरुषों की प्रेरणा से अपना सतीत्व नहीं बचा पातीं। ठाकुर साहब की धारणा थी कि नारी की लज्जा तभी तक सुरक्षित रह सकती है, जब तक उन्हें एकान्त स्थान न मिले।

"घृत कुम्भ समा नारी, तप्तांगार समः पुमान्।
तस्माद् घृतंच वह्निं च नैकत्र स्थापयेद्बुधः।"

किन्तु आज शान्ति इसके विपरीत ही निकली। एकान्त साधन था, रूप की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी, और संपूर्ण ऐश्वर्य की अधिकारिणी बनाने का प्रलोभन भी दिया गया था; किन्तु सब तुच्छ। क्या सचमुच शान्ति अपने सतीत्व-रक्षण में देवी थी ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता ! वह किसी दूसरे से प्रेम करती होगी। प्रेम-बंधन के सामने संसार के संपूर्ण सुख तुच्छ हो जाते हैं। इस युग में सतयुग की स्त्रियाँ कहाँ से आईं ? मेरे सामने से शान्ति चली जाय, मेरे लिए लज्जा की बात है। ठाकुर प्रभावती को बाधक समझ कर उस पर मन-ही-मन क्रोधित हो रहे थे।

प्रभावती के पूछने पर ठाकुर साहब कुछ उत्तर नहीं दे सके, चिन्ता की मुद्रा में मौन थे। प्रभावती के होंठों में मुस्कराहट थी; किन्तु वाक्यों में व्यंग। वह बोली, "आप बोलते क्यों नहीं ?"

क्रोध में आकर ठाकुर साहब ने कहा, "हट जाओ, सामने से !"

"अरे ! मुझ पर क्यों बिगड़ रहे हो ? मैंने कौन-सी गलती की है ?

ठाकुर साहब मौन रहे तो प्रभावती ने पुनः कहा,

"वह औरत क्यों बड़बड़ा रही थी ?"

"ठाकुर साहब खीझकर बोले, "उसी से पूछो !"

"उससे क्या पूछूं ? उसने तो आपसे ही पूछने के लिए कहा है।" वह ठाकुर साहब की ओर बढ़ी।

ठाकुर साहब क्रोध से उतावले थे। शान्ति को छोड़ अन्य किसी औरत को सामने नहीं देखना चाहते थे। बार-बार उसी की याद हृदय को विदीर्ण किये देती थी। उसके प्राप्त करने की उधेड़ बुन में उनका मन व्याकुल था, फिर प्रभावती के प्रश्नों का समाधान कैसे हो सकता था ? खीझकर ठाकुर साहब ने कहा, "बकवास मत करो, एक बार मैंने कह दिया, सामने से हट जा।"

"अच्छा, तो मैं बकवास कर रही हूँ ? क्या मैं इतनी अबूझ हूँ ? वह बेचारी अबला अपनी विपत्ति को ले लेकर कुछ सहायता माँगने आई

होगी ! यहाँ सहायता पाना तो दूर रहा, अपना धर्म मुश्किल से बचा पाई । इसमें आप मेरे ऊपर क्यों नाराज़ होते हैं ? स्वयं अपने पर नाराज़ हो । आपने गलत मार्ग कक अनुसरण किया है । अंधेर हो गया । एक विधवा अबला पर इस तरह यत्याचार करने में आपको शर्म नहीं

ठाकुर साहब खड़े होते हुए प्रभावती को डाँटकर बोले चुप रहो बड़ी बातें बनाती हो ।"

प्रभावती शान्त होने के बदले और भी उत्तेजित होकर कहने लगी "मैं चुप क्यों रहूँ ? हिन्दू-समाज में स्त्रियों जैसा असहाय जीवन किसी का नहीं है । उन्हें बोलने तक का अधिकार नहीं है; परदे में बंद रहती है; ज़रा संदेह हो जाने पर त्याग दी जाती हैं, भले ही संदेह निरर्थक हो; इसका कोई ख्याल नहीं किया जाता । स्त्री-पुरुष दोनों बिषय-बासना की तृप्ति की दृष्टि से बराबर हैं । पुरुषों के लिए बिशाल अधिर और स्त्रियों के लिए कठोर बंधन ! कितना अन्याय है ! यदि नारी के लिए कठोर बंधन हैं, तो पुरुषों को उससे मुक्त रखना न्याय-संगत नहीं ।

ठाकुर साहब अभी तक चुपचाप प्रभावती की बातें सुने जा रहे थे । संघर्ष की भावना उनमें तीव्र हो चुकी थी; उन्होंनें एक-दो बार प्रभावती को डाँटने का भी प्रयाग किया; किन्तु असफल रहे । अन्य दिनों ठाकुर साहब की कड़ी भृकुटी देखकर ही प्रभऽवती नत-मस्तक हो जाती थी; परन्तु उस दिन कई बार फ़टकारने पर भी शान्त न हुई । उसके सामने ठाकुर साहब को साहस न था कि वह अपनी सफ़ाई देकर निर्दोष हो जाते । वह उस समय स्वयं अपराधी थे ।

प्रभावती की यह प्रगति देख ठाकुर साहब को बड़ा क्षोभ हो रहा था । उन्हें यह कभी आशा न थी कि प्रभावती मेरी आज्ञाओं की इस तरह अवहेलना कर झगड़ने के लिए तैयार हो जायगी और मुझे ही नीचा देखना पड़ेगा । प्रभावती द्वेष से नहीं, बल्कि वह समाज की वस्तुस्थिति का विवेचन कर रही थी । उसका उद्देश्य अपने पति को अपमानित करना नहीं था । वह जानती थी कि इसका परिणाम भया-

नक होगा ।

प्रभावती का एक-एक शब्द ठाकुर साहब के लिए नुकीले बाण से भी बढ़कर कष्टदायक था। उनकी मुख-मुद्रा से हृदय की ग्लानि स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

उनकी लाल-लाल आँखें, लम्बी स्थूल भुजाएँ क्रोध से काँप रहीं थीं, उन्हें शान्त करने के लिए कोई साधन सुलभ न था। समय काफ़ी बीत चुका था, आठ बजने में कुछ ही मिनट की देर थी।

ठाकुर साहब कपड़े पहनकर टहलने के लिए जाने को पहले से ही तैयार थे, प्रभावती की बातों से ऊबकर घर से निकल पड़े। घड़ी में टन-टन आठ बजे, प्रभावती चिंतित खड़ी ठाकुर साहब की गति-विधि देखती रही।

: १० :

पुरोहित शान्ति की करुण कहनी सुनते हुए बेनियाबाग पार कर सँकरी गलियों में चल रहे थे और समवेदना प्रकट कर भविष्य के लिए सान्त्वना दे रहे थे। शान्ति मौन, मन-ही-मन अपनी जटिल परिस्थिति पर सोच रही थी—उसे बच्चों के पालन-पोषण का कोई मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था। वह इस शंका से भयभीत हो रही थी कि क्या इससे भी अधिक कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा ?

पुरोहित जी ने दुखित होकर कहा, "शान्ति, अब तक तुमने इतना कष्ट उठाया; किन्तु मुझसे कभी न कहा। हम और पंडित जी एक साथ पढ़े-लिखे और खेल-कूदकर बड़े हुए। उन पर सरस्वती देवी की विशेष कृपा थी, वह बहुत बड़े विद्वान् हुए। मैं साधारण ही रहा। हम दोनों की बड़ी मित्रता थी, यह तो तुमसे छिपा नहीं था कि हम दोनों में कोई अन्तर न था। जमाना बड़ा टेढ़ा है, इसलिए मैंने आना-जाना जारी नहीं रखा किन्तु ऐसी परिस्थिति में क्या मैं तुम्हें कुछ सहयोग न देता ?" पुरोहित जी की आँखों में आँसू छलछला आये।

शान्ति ने करुण स्वर से कहा, "पुरोहित जी, विधि के विधान को मिटाने की आप और हम किसी में सामर्थ्य नहीं। उसकी लकीर पर ही एक रंक से लेकर महाराजा तक को चलना पड़ता है। कर्म का फल तो भोगना ही पड़ेगा।"

"ठीक है! शान्ति लेकिन कर्म का फल भोगने के लिए हाथ-पर-हाथ रखकर बैठे रहना भी तो अच्छा नहीं। कर्तव्य करने पर असफल होने में भाग्य का दोष लगाया जा सकता है; इससे पहले नहीं।"

शान्ति पुरोहित जी की बातें स्वीकार कर मौन रही। पुरोहित जी मन-ही-मन सोच रहे थे कि रायसाहब के यहाँ कई दिन से महाराजिन नहीं आ रही है। उसके काम छोड़ने की खबर भी मिल चुकी है। वे दूसरी महाराजिन की तलाश में हैं—मुझ से भी कहा था अभी तक कोई नहीं मिली। शान्ति को रायसाहब के यहाँ काम दिला देना अच्छा होगा। लड़कों को भी पढ़ने के लिए कुछ सहयोग मिल जाया करेगा। किन्तु सोचा कि इस कार्य को शान्ति-अस्वीकार तो नहीं करेगी? कहीं बच्चों के भरण-पोषण का प्रश्न है, अवश्य स्वीकार करेगी इसी में उसका कल्याण है। लम्बी साँस लेते हुए उन्होंने शान्ति से कहा "शान्ति, तुम्हारा जीवन इस समय आर्थिक संकट से घिरा हुआ है। तुम कहीं अच्छे घर में नौकरी क्यों नहीं कर लेतीं? बच्चों का लालन-पालन भी उचित रीति से हो जायगा और तुम्हें दर-दर भटकना भी न पड़ेगा।"

कृतज्ञता के भार से दबी हुई शान्ति ने कहा, "ठीक कहते हैं, पुरोहितजी! किन्तु मुझ अभागिनी के लिए नौकरी भी कहाँ है?"

शान्ति के इस उत्तर से पुरोहित जी को यह स्पष्ट हो गया कि शान्ति को नौकरी करने में कोई आपत्ति न होगी। उन्होंने कहा :

"हमारे मुहल्ले के पास ही ठठेरी बाजार के नुक्कड़ पर रायसाहब की कोठी है। उनके यहाँ कई दिनों से महाराजिन नहीं आती है; इस लिए दूसरी महाराजिन की तलाश है। मुझसे भी कई बार ढूंढ़ने के

लिए कहा था। अभी चलकर तुम से बातचीत करा देता हूँ। यदि तय हो जाय तो कर लो; अच्छा है। रायसाहब बड़े अच्छे आदमी हैं, उनकी सज्जनता से नगर भर के लोग प्रसन्न हैं। कई पाठशालाएँ खोल रखी हैं। उनकी धर्मशालाएँ तो हर एक तीर्थस्थान में बनी हुई हैं। कई जगह सदावर्त भी खुले हैं, बड़े दानी हैं, कलियुग के कर्ण माने जाते हैं।"

शान्ति पुरोहित जी की बातें सुनकर दान-ग्रहण का खंडन करना चाहती थी। अवसर न देख उभड़ न सकी; किन्तु अपने विचारों को पूर्ण रीति से दबा भी नहीं पाई। साथ ही पुरौहित जी की बातों में स्वीकृति प्रदान करना भी अपना कर्तव्य समझती थी। वह बोली :

"पुरोहित जी, रायसाहब सचमुच बड़े अच्छे हैं; किन्तु उनके दान से मेरे जीवन का कोई सम्बन्ध नहीं। मैं अपने बच्चों का पालन-पोषण दान के बल से नहीं करना चाहती। भूखों मर जाना अच्छा; किन्तु दान की रोटी खाकर जीवन व्यतीत करना अच्छा नहीं। मैं अपने बच्चों को दान की रोटी खिलाकर जन्म भर के लिए निकम्मे नहीं बनाना चाहती। उन्हें परिश्रम से प्राप्त की हुई रोटी दूँगी, भले ही कई दिनों में मिले। उनका जीवन मुझे ऐसा ही बनाना है जिससे अपने कर्तव्य में सफलता प्राप्त कर सकें। यही मेरे पतिदेव का आदेश था। इसीसे उन्होंने जीवन-काल में अध्यापन-वृत्ति छोड़कर अन्य किसी वृत्ति को स्वीकार नहीं किया नहीं तो आज मेरे सामने इतना बड़ा अर्थ-संकट न आता। फिर उनकी आज्ञाओं का पालन करना ही मेरा धर्म है।"

"ठीक है, शान्ति! किन्तु जो मैंने कहा वह तुमने समझा नहीं। मेरा मतलब तुम्हें दान लेने के लिए नहीं था—मैं तो उनकी सज्जनता एवं धार्मिकता के बारे में बतला रहा था। फिर भी दान लेना पाप नहीं है। ब्राह्मण के लिए पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-यज्ञ कराना, दानलेना दान देना ये षट्कर्म कहे गये हैं। इन्हीं षट्कर्मों के अन्दर दान लेना भी आता है। यदि दान-ग्रहण खराब माना जाता तो इसको अच्छे कर्मों

में गिनती न होती। साथ ही बड़े-बड़े महर्षियों ने, जिनके भृकुटि-विक्षेप से संसार काँपता था - दान-ग्रहण किया था; अतः उसे निकृष्ट बतलाना दुस्साहस होगा।"

पुरोहित जी की बातें सुनकर शान्ति ने कहा, "पुरोहित जी, संसार में कोई वस्तु ख़राब नहीं होती; उसका उपयोग खराब होता है। प्राचीनकाल में हमारे ऋषि-मुनि दान लेकर तुरन्त दूसरे को दे देते थे। दान से पाई हुई वस्तु से उन्हें रत्ती मोह नहीं होता था; परन्तु आज एक पैसे की वस्तु पाने पर भी किसी दूसरे को देने की इच्छा नहीं होती, अपने उदर-पोषण में ही लगा ली जाती है। ऐसी दशा में दान-ग्रहण का फल आलस्य एवं अकर्मण्यता को छोड़कर और क्या हो सकता है? मैं अपने बच्चों को दान-ग्रहण की शिक्षा नहीं देना चाहती।"

"ठीक है, किन्तु तुम्हारे लिए तो मैंने महाराजिन का काम सोचा था, जो परिश्रम का ही है, दान का नहीं। अपने मुहल्ले की कई ब्राह्मणियों ने ऐसे ही साधनों से अपने बच्चों का पालन-पोषण कर उनके भविष्य को उज्ज्वल बनाया है। भगवान् चाहेगा तो तुम्हें भी बच्चों को शिक्षित बनाने में सफलता मिलेगी।"

"पुरोहित जी, मैं आपके विचारों से सहमत हूँ, लेकिन······" शान्ति ने मस्तक नीचा कर लिया।

"नहीं-नहीं, और कोई बात नहीं है, वह बड़े ही सज्जन हैं। उनके यहाँ रहने से तुम्हें पता चल जायगा। हाँ, ईमानदारी से काम करना चाहिए।"

"इसके लिए मैं आपको क्या विश्वास दिला सकती हूँ···?"

पुरोहित जी ने हँसकर कहा, "नहीं, तुम पर मुझे पूर्ण विश्वास है। सचाई के साथ काम करने वालों का ईश्वर साथ देता है।"

× × ×

रायसाहब के दरवाजे पर कंगलों की भीड़ लगी थी। काशी तथा प्रयाग आदि तीर्थस्थानों में कँगलों की संख्या अधिक पाई जाती

है। उनका विचित्र ही ढंग होता है। कोई भजन कर रहा था, कोई बाजा बजा रहा था और कुछ हल्ला मचाने में ही तल्लीन थे। दो-तीन सिपाही उन्हें शान्त कराने में लगे थे।

अधिक भीड़ देखकर शान्ति ने पूछा, "पुरोहित जी, यह भीड़ क्यों इकट्ठी हो रही है ?"

पुरोहित जी ने हँसकर कहा, "ये सब रायसाहब के यहाँ सदावर्त्त लेने आये हैं। नित्यप्रति सायंकाल ७॥ बजे यह भीड़ इकट्ठी हुआ करती है। सदावर्त्त बँटना आरंभ हो गया होगा, इसी से लिए हल्ला मच रहा है।"

शान्ति ने गदगद होकर कहा, "अच्छा, सचमुच रायसाहब दानी हैं ? इस मँहगाई में इतने लोगों को रोज़ाना अन्न-दान देते हैं; भगवान् ही पूरा करता है।'

"हाँ, शान्ति, मैंने तो पहले ही कहा था कि वे कलियुग के दानवीर कर्ण हैं।"

शान्ति तथा पुरोहित जी बातें करते हुए रायसाहब के दरवाजे पर पहुँचे। सिपाहियों ने पुरोहित जी के चरण छुए। उन्होंने आशीर्वाद दिया और शान्ति को द्वार के भीतरी भाग में बैठाकर स्वयं रायसाहब की बैठक में चले गये। वह वहीं बैठी, दान-वितरण देख रही थी। कोई इधर से लेता, कोई उधर से। बहुत-से कई बार पा जाते; और कुछ लोग एक बार भी नहीं। शान्ति मन-ही-मन भगवान् से पूछ रही थी, हे भगवान् ! क्या मुझे भी इन्हीं छल-छिद्रों से अपना पेट भरना होगा ? इससे तो मृत्यु उत्तम है। क्या इस भार-स्वरूप जीवन से मुक्त करना तुम्हारे हाथ में नहीं ? उसका माथा घूम गया, और अपने को सँभालने के लिए उसने दीवार का सहारा लिया।

: ११ :

ठाकुर साहब के चले जाने के बाद प्रभावती बैठक में ही बैठी उनकी नाराज़गी पर सोच रही थी, संसार कितना विचित्र है ! स्वयं

गलती कर लोग दूसरों पर नाराज़ होते हैं, न तो अपनी करनी पर पश्चात्ताप होता है और न वे अपने स्वभाव में परिवर्तन करने की थी थोड़ी-भी आवश्यकता समझते हैं। फिर भी नारियों को सदा पतिदेव के अपराधों का फल भोगना ही पड़ता है। कितना घोर अन्याय ? नारी-जीवन एक अभिशाप है। परन्तु ! स्वयं नारी ही प्रेम से पिघलकर पुरुष में लीन होना चाहती है; किन्तु पुरुष नारियों के यौवन ढल जाने पर उनको नीरस समझ उपेक्षा कर देता है और पवित्र-प्रेम को केवल वासना-तृप्ति का साधन समझ बैठते हैं। पुरुष का नारी के साथ इतना घोर अन्याय ! वह उद्विग्न हो कक्ष के बाहर हो जाना चाहती थी—एकाएक ठाकुर साहब कक्ष में प्रवेश करते हुए दिखाई दिये। प्रभावती कुछ क्षणों तक विचारों में डूबी हुई खड़ी रही। फिर ठाकुर साहब की बगल में कोच पर बैठ गई।

ठाकुर साहब बगीचे में नित्य एक घंटा टहला करते थे। साथ ही प्रभावती को भी ठाकुर साहब के साथ टहलने का शौक़ था। वह नवीन सभ्यता में पली हुई नारी अपने अधिकारों को समझती थी—पुरुषों के अन्याय करने पर लोहा लेने का साहस रखती थी। उसे सामाजिक रूढ़ियों से घृणा थी, धर्म के नाम पर अकर्मण्यता को नहीं देखना चाहती थी—वह भारतीय आर्य नर-नारियों के आदर्श में ही धर्म-परायणता का का मंगलमय स्वप्न देखना चाहती थी। प्रभावती यह नहीं चाहती थी कि नारी कठपुतली बनकर मनसिज के दरबार में वासना के रंगमंच पर यौवन-मद से नर्त्तन करे। वह चाहती थी—भारतीय नारी अपने पूर्व इतिहास को ध्यान में रखकर पुरुषों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चले और आनेवाली आपत्तियों में हर तरह से योग दे। वह महारानी लक्ष्मीबाई को न भूले। नारियों का आदर्शमय जीवन पुरुषों की अपेक्षा अधिक महत्व रखता है। बालकों में इन्हीं माताओं द्वारा देश-सेवा की भावना जागृत होती है, और वही सन्तानें अपने कर्तव्य-पथ पर आगे बढ़ती हुई देश के स्वाभिमान को सुरक्षित रखती हैं।

ठाकुर साहब प्रभावती की बगल में कोच पर शान्त बैठे थे और आपबीती पर कुछ सोच रहे थे । अपने जीवन में प्रथम बार ठाकुर साहब को तिरस्कृत होना पड़ा था । इसका उन्हें बड़ा क्षोभ था । कार्य ही क्षोभ का था साथ ही उन्हें मन-ही-मन ग्लानि भी हो रही थी । वह किंकर्त्तव्य विमूढ़ थे और अपना कल्याणकारी पथ ढूँढना उनकी शक्ति के परे था ।

प्रभावती ठाकुर साहब की चिंताओं को दूरकर उन्हें प्रसन्न करना चाहती थी । उसे अपने पतिदेव को नाराजगी से मना लेने का स्वाभिमान था—आज परीक्षा होनी थी; कुछ अनमनस्क होकर बोली, "आज आपको क्या हो गया है, जो बोलना तक बंद कर दिया ?"

ठाकुर साहब ने प्रभावती की ओर कड़ी निगाहों से देखा और फिर आँखें नीची कर लीं । प्रभावती फिर कुछ न बोल पाई । बीच ही में मुग्गी ने आकर कहा, "दुलहिन, जेवनार बनिगयवहै, थार लगवाई ?"

प्रभावती ने मुग्गी की ओर देखकर कहा—'हाँ थाली लगवाओ ।'

ठाकुर साहब ने प्रभावती की ओर देखते हुए मुग्गी को डाँटकर कहा, "नहीं, मैं नहीं खाऊँगा ।"

होठों में क्षणिक मुस्कराहट लाकर प्रभावती ने कहा, "क्यों ? आज गुस्से से पेट भर गया है ?"

"हाँ, गुस्से से ही पेट भर गया ।"

"तब तो बड़ा अच्छा है । लोग बेकार ही खाने के लिए परेशान होते हैं । उन्हें चाहिए कि जब भूख लगे गुस्से हो जायें, सारी झंझट दूर । दुनिया के पचड़े में पड़कर तरह-तरह के कष्ट सहने की क्या आवश्यकता ! शायद वैज्ञानिकों ने इस बिषय में अनुसंधान नहीं किया ।"

ठाकुर साहब गुस्से में बोल उठे, "अच्छा, तो तुम्हीं करके दिखा दो । केवल डी० लिट् होना ही तो बाकी है । एम० ए० प्रथम श्रेणी में पास किया ही है—डाक्टरेट की कमी क्यों रहे ?"

"यदि आपकी आज्ञा होगी तो क्यों न करूँगी ?"

"तुम्हारे लिए मेरी आज्ञा ? आज की पढ़ी-लिखी स्त्री पति के आदेशों का पालन करेगी तो उसका अपमान न होगा ? फिर वह अपने नारी-अधिकारों को इस युग में कैसे सुरक्षित रख सकेगी ?"

"मेरी धृष्टता क्षमा कीजिएगा। यह आपका ख्याल गलत है कि पढ़ी-लिखी स्त्री पति के आदेशों की अवहेलना करती है। वह जितना अनुशासन का पालन करती है, शायद उतना अशिक्षित नारी नहीं कर सकती; किन्तु अन्याय सहने के लिए तैयार न होगी। ग़लत मार्ग पर चलते देख उचित पथ की ओर इंगित करेगी, इसमें अवज्ञा का कोई प्रश्न ही नहीं हैं।"

ठाकुर साहब ने खीझकर कहा, "ग्राम-वधुओं का हृदय कितना स्वच्छ एवं निर्मल होता है ? वे अपने पति के आदेशों का अक्षरशः पालन करती हैं। उन्हें तरह-तरह के विवादों से परेशान करना नहीं आता। कॉलेज के वातावरण में पलकर कपटपूर्ण व्यवहार करना भी नहीं जानतीं। उनमें लज्जा, शील तथा मर्यादा का बन्धन रहता है।"

ठाकुर साहब की बातें सुनकर प्रभावती सहम गई। सारा जोश यों ही ठंडा पड़ गया था। वह ठाकुर साहब को अधिक अप्रसन्न समझकर आगे कुछ बोलने का साहस न कर सकी। करीम खाँ ने आकर सलाम किया, और कहा—"हुजूर, मोटर तैयार है।" ड्राइवर को नौ बजे रायसाहब के यहाँ चलने का हुक्म हुआ था। ठाकुर साहब ने अपने कपड़े सँभालते हुए कहा, "अच्छा चलता हूँ।" छड़ी लेकर चलना चाहते थे कि अन्दर से सुग्गी खाना लेकर उपस्थित हो गई ठाकुर साहब बाहर जाने के लिए तैयार थे, मेज पर खाना रखते हुए सुग्गी ने कहा, "सरकार ! थार आय गयहवै जेवनार कइ लेई।"

ठाकुर साहब ने सुग्गी की ओर देखते हुए कहा, "थाल आ गया है तो मैं क्या करूँ ? पीठ में बाँध लूँ ?"

सुग्गी डर गई। यह इतनी सुशील नौकरानी थी कि इसके

ऊपर कोई नाराज़ ही नहीं हो सकता था। ठाकुर साहब के यहाँ १० वर्ष काम करते हो गये; किन्तु अब तक कोई शिकायत नहीं होने पाई। उस पर कभी डाट नही पड़ी। ठाकुर साहब का यह हाल देख उसकी समझ में कुछ न आया।

सुग्गी विन्ध्य-प्रदेश की राजधानी रीवां की रहने वाली थी। रीवा प्रदेश बनने के पूर्व बघेलखंड की राजधानी कहलाती थी। यह नगर है तो छोटा; किन्तु समीपस्थ प्राकृतिक सौन्दर्य से अधिक रमणीक मालूम होता है। नौकरानी जाति की नाइन थी। व्यवहार में इतनी निपुण कि कहने की कोई बात ही नहीं है; क्योंकि यह तो उसका स्वाभाविक गुण था। अवस्था ढल चुकी थी, पचास से कम की न होगी। उसने अपने जीवन-काल में सामाजिक परिस्थितियों का खूब अनुभव किया था। सदा बड़ों के ही सम्पर्क में रही थी। ठाकुर साहब के स्वभाव को बचपन से जानती थी। ठाकुर साहब प्रायः अपने पिता जी के साथ दशहरा देखने रीवां जाया करते थे, और महीने-दो महीने रह कर वापस आते थे। शायद पुरानी रिश्तेदारी भी थी दशहरा देखने के साथ-साथ अपने इष्ट-मित्रों से मिल आते थे। उन्हें रीवां में रहना न जाने क्यों अधिक प्रिय था। उन्हीं के द्वारा सुग्गी भी काशी आई थी। ठाकुर साहब भी अपने जमाने में कई बार दशहरा देखने रीवां गये थे। वह उनकी आदतों को अच्छी तरह जानती थी। वे खाने में कभी नाराज नहीं होते थे। सारा काम छोड़कर भोजन करते थे परन्तु उस दिन की परिस्थिति समझ न पाई। ठाकुर साहब ही नहीं, ठकुराइन साहिबा भी अप्रसन्न दिखाई दे रही थीं। सुग्गी ने प्रभावती से पूछा :

"दुलहिन आजु सरकार नाराज काहे हैं ? जेउनारउ नहीं भई, उइसै चले गैन।"

प्रभावती कुछ न बोली—चिंतित, मौन रही। ठाकुर साहब ड्राइवर के साथ मोटर पर बैठकर रायसाहब की ओर चल दिये। घर से मोटर की आवाज़ हुई और दृष्टि से ओझल हो गये।

: १२ :

रायसाहब बैठक में कुछ व्यापारियों के साथ वार्तालाप कर चुके थे। और सभी व्यापारी लोग अपनी बातें समाप्त कर बिदा हो चुके थे। रायसाहब भी विश्वनाथ-दर्शन के लिए जाने वाले थे। सायंकाल प्रतिदिन दर्शन करने का उनका नियम था। वे सब काम छोड़कर विश्वनाथ जी के दर्शन करने जाते थे, दिन भर तो व्यापारियों की वजह से फुरसत नहीं मिलती थी, सायंकाल भी भीड़ लगी रहती थी; लेकिन ८ बजे के बाद व्यापार-सम्बन्धी काम बन्द कर देते थे। घंटे-दो-घंटे भगवन्-भजन में ही बिताते थे। बड़े भक्त, दयालु तथा साधु-सेवी थे।

× × ×

आठ बजे सायंकाल घर से निकलने के पहले गर्मी के दिनों में शर्बत पीते थे, शर्बत की ही प्रतीक्षा थी। एकाएक पुरोहित जी को देखकर बोले, "आइए-आइए, पुरोहित जी ! आज आपने इस समय कैसे कष्ट किया ?"

"हः···हः···हः···ऐसे ही। मैंने सोचा कि चलें रायसाहब के यहाँ कुछ समय बीत जायगा।"

"बड़ी कृपा की।" आराम कुर्सी की ओर इंगित कर उन्होंने कहा, "पधारिए।"

पुरोहित जी कुर्सी पर आराम से बैठ गये। रायसाहब ने नौकर को आवाज़ दी। बद्री नौकर स्वतः शर्बत लेकर आ रहा था, रायसाहब की आवाज सुनकर जल्दी ही बोला, "हाजिर हुआ सरकार।"

बद्री ट्रे में चार गिलास शर्बत लेकर उपस्थित हुआ। रायसाहब ने उठने का उपक्रम करते हुए पुरोहित जी की ओर हाथ बढ़ाकर कहा :

"पंडित जी को दो।

पुरोहित जी ने मुँह बनाते हुए कहा, "नहीं-नहीं, आप लीजिए। मेरी इच्छा नहीं है।" कहकर दोनों हाथों से सन्तोषमुद्रा प्रकट की।

"शर्बत तो है, क्या हर्ज है 'ब्राह्मणस्य मधुर प्रिय.' मीठी वस्तु

से ब्राह्मणों को कभी अरुचि कर न होनी चाहिए; नहीं तो इस वाक्य का कोई मूल्य ही न रहेगा।

"किसी शब्द का मूल्य व्यक्ति विशेष के कारण नहीं घटता-बढ़ता,, प्यास नहीं है, नहीं तो कोई हर्ज था"—पुरोहित जी ने कहा।

"अरे ! एक गिलास शर्बत के लिए प्यास की क्या आवश्यकता ? गिलास-दो-गिलास तो यों ही पान किया जा सकता है। हमारे पिता जी कभी-कभी सुनाया करते थे कि एक पंडित जी सदा मौन भोजन करते थे। जब वे भोजन के लिए मना करना चाहते थे तो हाथ की अँगुलियों को छिटका कर इशारा करते थे। उन्होंने बतलाया कि हाथ की अँगुलियों को फैला कर जवाब देने में पंडित जी का आशय यह होता था कि एक नहीं पाँच-पाँच। इसी के लिए खाते समय बोलना बंद कर रखा था। यदि आपका भी ऐसा ही इशारा हो तो पाँच गिलास मँगवाऊँ।"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़े—शर्बत का गिलास खाली करने में तल्लीन बातें करते रहे। बर्फ की शीतलता कुछ क्षण के लिए रसास्वादन में बाधक हो जाती थी; किन्तु वे बाधा से विचलित होने वाले न थे। रायसाहब ने गिलास मेज़ पर रखते हुए कहा, "पुरोहित जी, आपकी क्या सेवा करूँ ?" पान की तश्तरी आगे बढ़ायी। पान लेते हुए पुरोहित की ने हँसकर कहा, "आपकी कृपा ही सब से बड़ी सेवा है।"

पुरोहित जी की बात खतम नहीं हो पाई थी कि जल्दी में रायसाहब बोल उठे, "कृपा तो आप लोगों की है, सेवा हम लोगों की।" पुरोहित जी ने गंभीर स्वर में कहा, "अन्दर से मुझे एक महाराजिन ढूँढ़ने के लिए आदेश मिला था, उसी के लिए उपस्थित हुआ हूँ।"

"अच्छा, आपको अन्दर का बड़ा ख्याल रहता है।

पुरोहित जी ने मुस्कराते हुए कहा, "ह, ईश्वर को भी अन्दरके प्रबन्ध के लिए सचेत रहना पड़ता है, हम लोगों की बात ही क्या है ?" उन्होंने नौकर को आवाज़ दी, "बद्री ! देखो द्वार पर एक औरत

बैठी होगी, बुला लाओ।"

पुरोहित जी के आदेशानुसार बद्री शीघ्र ही शान्ति के समीप पहुँच कर बोला, "महाराज जी आपके बुलौ हैं।"

शान्ति ने आश्चर्यपूर्वक नौकर की ओर देखकर कहा, "हमको ?"

"हाँ, जिनके सथवाँ आप अइली हैं, उहैं बुलावत हउअँइ ?" बद्री ने कहा।

शान्ति बनारसी बोली अच्छी तरह समझ लेती थी; चूँकि यह नगर की भाषा नहीं थी, किन्तु नौकर अथवा दूधवाले आदि ग्रामीण गाँव की ही भाषा बोला करते थे, इसलिये उसे समझने में कोई अड़चन नहीं हुई। पुरोहित जी का बुलावा समझकर धीरे से उठी और बद्री के साथ चल पड़ी। एक मंजिल सीढ़ी चढ़कर ऊपर पहुँच गई। पुरोहित जी शान्ति की ओर इशारा करके बोले, "रायसाहब, यही औरत है। आप जो कुछ पूछना चाहते हों पूछ लें।"

शान्ति की ओर देखते हुए रायसाहब ने कहा—"अभी तक क्या करती थीं ?"

पुरोहित जी ने बतलाया, "अभी तक तो घर में ही रहती थी—अपनी गुजर होते न देख किसी तरह अपने बच्चों के पालन-पोषण के लिए नौकरी करना चाहती है। कार्य में बड़ी कुशल है, अच्छे घर की बहू-बेटी है और बड़ी ईमानदार है। यह सब इसका काम बता देगा।"

"ठीक है; लेकिन आपके जान-पहचान की है न ?"

"हाँ-हाँ, हमारे पड़ोस में ही मकान है और जो कुछ आप जानना चाहते हों स्वयं भी पूछ सकते हैं।"

भौंह सिकोड़ते हुए रायसाहब ने कहा —और मैं क्या पूछूँगा, आप पर मुझे विश्वास है। आपने उचित ही समझ कर लाने का कष्ट किया होगा।" शान्ति की ओर देखकर वह बोले, "हाँ, हमारे यहाँ अच्छी तरह ईमानदारी से काम करना होगा। पहले महाराजिन को जो दिया जाता था, वही तुम्हें मिलेगा।"

शान्ति लज्जा से नत-मस्तक हो रायसाहब की बातें सुन रही थी। साथ ही पुरोहित जी के विश्वास दिलाने पर आभार से दबती जा रही थी। वह गम्भीर मुद्रा में खड़ी थी। पुरोहित जी ने लम्बी साँस लेकर कहा, "समझ रही हो ! अच्छी तरह से काम करना होगा। भोजन-कपड़े के अलावा दस रुपया महीना मिलेगा। यही पहली महाराजिन को मिलता था।" पुरोहित जी को शान्ति की ईमानदारी पर पैसा भर की अविश्वास नहीं था; पर सभ्यता के नाते रायसाहब के सामने ईमानदारी से काम करने के लिए पुरोहित जी ने भी सचेत किया।

शान्ति ने काम करना स्वीकार कर लिया। उसे यदि केवल दस रुपये महीने भी मिलते, तो भी नौकरी कर लेती; बच्चों के पालन-पोषण में कठिनाई हो रही थी, फिर भोजन-वस्त्र के अलावा दस रुपया महीना मिलेगा, यह क्या कम है ?

रायसाहब ने पुरोहित जी से कहा, "ठीक है। कल से काम करने भेजिए। आठ बजे सुबह से ७ बजे सायंकाल तक काम रहता है, उसके बाद छुट्टी। महाराजिन तुम समय पर आओ और काम पूरा करके चली जाओ।"

पुरोहित जी ने मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए शान्ति से कहा, "अच्छा, अब तुम जाओ। कल से आठ बजे आकर अच्छी तरह काम करना और समय पर चली जाना।"

शान्ति पुरोहित जी की बातें सुनकर जाना चाहती थी, किन्तु बच्चों के खाने की समस्या उसे रोक रही थी। खाली हाथ जाकर बच्चों को खाने के लिए क्या देगी। इसकी उसे विशेष चिंता थी। शान्ति ने अपने जीवन में एक पैसे की कोई वस्तु किसी से नहीं माँगी थी। यदि वह चाहती तो महीने-दो-महीने उधार से भी काम चला सकती थी। अपने सिद्धान्त से लाचार होकर घर बेचने चली थी, भगवान् ने मदद की—रोज़ी की आशा हो गई—पर वह भी दूसरे दिन से। बड़ी ही विषम परिस्थिति थी। केवल शाम के लिए खाने का प्रबन्ध होना

कठिन था। शान्ति पग दो पग चली और रुक गई——साहस टूट गया। वह रायसाहब से सेर भर आटा कर्ज रूप में चाहती थी; वह भी केवल महीने भर के लिये—कहने में संकोच हो रहा था। वह समझती थी कि प्रथम दिन से ही इस तरह का व्यवहार किसी भी व्यक्ति को उपेक्षित बना देता है। कुछ दिन तो शिष्टता एवं ईमानदारी से काम करना चाहिए। इन दोनों गुणों की मनुष्य को जीवन में उन्नति के लिए हमेशा आवश्यकता पड़ती है। ' रायसाहब शान्ति को रुकते देख बोले, "पुरोहित जी ! देखिए महाराजिन कुछ कहना चाहती है।"

पुरोहित जी ने तुरंत उठकर शान्ति से पूछा, "क्या बात है, कुछ पूछना चाहती हो ?"

शान्ति की आँखों से कुछ जल-कण भूमि पर गिर पड़े——अंचल से आँखों को पोंछते हुए बोली, "कुछ नहीं, सुबह से मेरे बच्चे भूखे हैं, अभी उनका पेट भरना बाकी है——आज के लिए एक सेर आटा कर्ज चाहती हूँ किन्तु........."

पुरोहित जी सोच रहे थे कि नौकरी के संबंध में कुछ बात करेगी, किन्तु ऐसा न होकर दूसरी ही समस्या सामने आई। शान्ति की बात सुनकर पुरोहित जी का हृदय दया से पिघल उठा। वे सोचने लगे कि चलकर मैं अपने घर से दो-एक दिन के लिए प्रबन्ध कर दूँ। इसके बाद के लिए तो भगवान् ने कर ही दिया है। इस बात को रायसाहब से कहना वह उचित नहीं समझ रहे थे। कोई बड़ी बात होती तो ठीक भी था, किन्तु सेर-दो सेर आटे के लिए कहना उचित नहीं। पुरोहित जी ने शान्ति से कहा, "कोई बात नहीं। अभी चल कर प्रबंध कर देता हूँ।"

पुरोहित जी के मुख पर दुःख के चिह्न देखकर रायसाहब को सन्देह हो गया कि यह तो अभी प्रसन्न चित्त थे महाराजिन ने कौन ऐसी बात कही जिससे पुरोहित जी की मुख-मुद्रा बदल गई। पुरोहित जी के बोलने के पहले ही रायसाहब ने प्रश्न किया, "क्या बात है पुरोहित जी ?"

पुरोहित जी ने गंभीर होकर उत्तर दिया, "कुछ नहीं।"

"आखिर कोई बात तो होगी ही, आपको बतलाने में संकोच क्यों? महाराजिन रो क्यों रही है?"

पुरोहित जी थोड़ा हिचकिचाये; फिर बोले, "कुछ नहीं; आज दिन भर से इसके बच्चे भूखे हैं। एक सेर आटा कर्ज रूप में चाहती है। महीना पाने पर दे देगी, किन्तु कहने का साहस नहीं कर रही थी और खाली हाथ जाने में भी असमर्थ थी।"

"अच्छा, तो आपको भी कहने में संकोच हो गया! आप तो हमारे यहां के क़ायदे को जानते हैं। फिर संदेह करने की क्या जरूरत थी? अन्दर से दिला दीजिए।" बद्री नौकर को आवाज़ लगायी, वह दौड़कर हाजिर हुआ। रायसाहब बोले, "देखो, इस औरत को सेर-दो सेर आटा दिला दो।"

शान्ति को साथ लेकर बद्री भंडार की ओर चल पड़ा—दो सेर आटा, एक सेर आलू, नमक पाकर मन-ही-मन शान्ति आभार से दबी जा रही थी। अपने अंचल में ही सारी चीजें बाँध कर बैठक में होकर घर जाने के लिए निकली। रायसाहब ने पूछा, "सब मिल गया?"

शान्ति ने संपूर्ण वस्तुएँ मिल जाने का आशय प्रकट किया। पुरोहित जी ने भी कहा—"हाँ, मिल गया।"

शान्ति अपने घर की ओर चल दी।

: १३ :

शान्ति के चले जाने के बाद भी पुरोहित जी और रायसाहब बैठक में ही बैठे रहे। लम्बी साँस लेते हुए रायसाहब ने कहा, "पुरोहित जी, संसार की गति बड़ी विचित्र है—कोई रो रहा है, कोई गा रहा है, और कोई कुछ कर रहा है। संसार का प्रत्येक प्राणी अपने-अपने सुख-दुःख में भूले हैं। एक दूसरे से सहयोग नहीं करता। बड़ा ही घनिष्ट हुआ तो दो-चार मिनट के लिए सहानुभूति प्रकट कर देते हैं, फिर ज्यों-का-

त्यों। इसका क्या कारण है ? हम सुख में दुःख को भूल जाते हैं। स्वयं मैं ही लम्बी-लम्बी बातें करता हूँ, आपको घंटे-दो घंटे वेदान्त के संबंध में परेशान करता हूँ; परन्तु इस विवाद का मुझ पर कोई असर नहीं पड़ता। दूसरे के लिए एक क्षण भी कष्ट सहने को तैयार नहीं हूँ। कभी-कभी संसार की गतिविधि पर मुझे क्षोभ अवश्य होता है; किन्तु मैं स्वयं क्षोभ उत्पन्न करने वाले कार्य करने से दूर नहीं हूँ। साथ ही अपने कर्तव्य की ओर भी ध्यान नहीं देता, सारा ज्ञान इस मायाजाल में चकरा जाता है।"

पुरोहित जी ने कहा, "अभी आपने केवल नेत्रों से ही जगत-प्रपंच के कार्यों का अवलोकन किया है; संसार की गति-विधि देखने के लिए इन चर्म-चक्षुओं से नहीं, ज्ञान-चक्षुओं से काम लेना पड़ता है। यह स्वयं भगवत्-कृपा तथा सद्गुरुओं से प्राप्त होते हैं, जो संसार को अनित्य मान कर आत्मा को ही ब्रह्म मानते हैं—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अर्थात् सम्पूर्ण संसार ही ब्रह्म का स्वरूप है। संसार की माया में पड़कर एक-दूसरे का कोई सहयोग करने के लिए तैयार नहीं होता। यदि संसार की नश्वरता का सही ज्ञान हो जाय तो सारी कठिनाइयों से मुक्ति मिल सकती है, परन्तु ऐसा होना ही कठिन है।"

"पुरोहित जी, भगवत्-कृपा से ही सब कुछ होता है तो क्या ईश्वर चाहता है कि छोटे-बड़े, ऊँच-नीच तथा विद्वान्-मूर्ख आदि विषमताएँ हों ?" रायसाहब ने कहा।

पुरोहित जी ने हँसते हुए कहा, "नहीं-नहीं, ईश्वर ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा कुछ नहीं चाहता। सभी लोग अपने-अपने कर्म के अनुसार फल भोगते हैं ?"

रायसाहब और पुरोहित जी की बातें इस विषय को छोड़ कर वेदान्त के संबंध में होने लगीं, परन्तु थीं केवल कोरी बातें ही-पुरोहित जी प्रतिदिन वेदान्त की ही बातें किया करते हैं और कथा कहने के समय में वेदान्त को भुलाकर दान-दक्षिणा के महत्त्व को खास तौर से

बतलाते हैं--शान्ति के दान-विरोध को पुरोहित जी ने भी कुछ अंश तक सही मान लिया था। इस पर उन्हें विश्वास हो गया था कि बड़े आदमी छोटों को आगे बढ़ने का अवसर नहीं देते, बल्कि अकर्मण्य बनाने के लिए थोड़ी-बहुत सहायता कर देते हैं। अभी तक पुरोहित जी के सामने दान देनेवाले सबसे बड़े धर्मात्मा तथा परोपकारी थे। अब उतने ही देश के उत्थान में अवरोधक। उन्होंने समाज में दान-वृत्ति से जीवन व्यतीत करनेवालों की परिस्थितियों का अनुभव तथा मनन किया। अन्ततः इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि शान्ति का कहना ठीक था। उन्हें भी अपनी जीवन-वृत्ति पर क्षोभ हो रहा था; पर कर क्या सकते थे? कोई आधार न था। एक मात्र दान-वृत्ति ही जीवन का सहारा थी।

रायसाहब सोच रहे थे—इस औरत की पुरोहित जी ने बड़ी प्रशंसा की। क्या सचमुच ही यह आत्म-सम्मानवाली मालूम होती है? वह शान्ति के सम्बन्ध में पुरोहित जी से कुछ और जानना चाहते थे। अतः बोले, "पुरोहित जी, आपने इस महाराजिन के विषय में जो बातें बतलाईं, उनसे मैं सहमत हूँ।"

पुरोहित जी ने गम्भीर स्वर से कहा, "हाँ, रायसाहब मैंने जो कहा है वह सत्य ही है—परिस्थिति नौकरी के लिए बाध्य कर देती है। आज तीन दिन से स्वयं भूखी रहकर बच्चों को खिलाया, किन्तु आज दिन भर से बच्चे भी भूखे हैं, वापस आकर उन्हें खाना देने का आश्वासन देकर आई थी—खाली हाथ लौटकर क्या देती? सारी सम्पत्ति बिक चुकी मकान बेचने के लिए निकली थी, उसमें भी सफलता नहीं मिली। उसे बाध्य होकर नौकरी के लिए मजबूर होना पड़ा।"

रायसाहब ने मुस्कराकर कहा, "मकान बेचकर कितने दिन गुजर करती?"

पुरोहित जी ने कहा, "आप ठीक कहते हैं; लेकिन जब तक तृण मात्र का सहारा रहता है, तब तक कुछ सन्तोष रहता है—भविष्य भले ही

अन्धकारमय हो। कुछ दिन खाने के लिए मकान के रुपये होते ही; बाद में भगवान् का भरोसा था।"

"हाँ, बड़ी कुशल है। उसने भीख नहीं माँगी है, कर्ज माँगा है और अपनी तनख्वाह से आटा चुकाने का आश्वासन भी दिया है। एक सेर आटा तो योंही सदावर्त्त में मिल जाता, उसने बेकार ही कर्ज माँगने का कष्ट किया।"

"नहीं, रायसाहब! उसने बेकार माँगने का कष्ट नहीं किया। उसका सिद्धान्त बहुत उत्तम है—एक बार मुफ्त की रोटी खा लेने पर फिर परिश्रम नहीं किया जाता। संसार में मनुष्य भोजन मिलने के लिये ही तरह-तरह के कष्ट उठाते हैं; किन्तु रोटी की चिन्ता दूर हो जाने पर परिश्रम करने के लिए जी नहीं चाहता। दरवाजे पर ही चलकर देख लें—बूढ़े लँगड़े तथा ग़रीब कम ही हैं; हट्टे-कट्टे जवान काम करने-योग्य व्यक्ति अधिक हैं। ये सुबह से शाम तक आध सेर आटे के लिए बैठे रहते हैं। यदि काम करते तो स्वयं खाते और अपने बाल-बच्चों को भी खिलाते। पर ऐसा न करके बीवी-बच्चे-सहित आनन्द से गप्प लगाते, गाना गाते, हल्ला मचाते, जो मन-भाता वही करते बैठे रहते हैं। और सदावर्त्त बंटते समय दो-तीन बार मार-झपट कर दूसरों के हिस्से का भी अन्न लेकर उसे बेंच कर गाँजे का दम लगाते हैं। बेचारे ग़रीब बुड्ढे, अन्धे सदावर्त्त का भी अन्न इन कामचोरों की वजह से नहीं लेने पाते। यदि इन्हें इस तरह मुफ्त में खाने का साधन सुलभ न होता तो अपने पेट भरने के लिए कोई-न-कोई जरिया निकालकर काम करते। इससे देश में भिखमंगों की संख्या कम होती और देश की स्थिति इतनी भयावह न होती। शायद अन्य देशों की अपेक्षा भारत में भीख माँगनेवाले अधिक हैं और यही कारण है कि हमारा देश अपने पैरों खड़े होने में असमर्थ है। सभी वस्तुओं के लिए दूसरे देशों की सहायता चाहता रहता है। दूसरी वस्तुओं को तो छोड़िए भारत कृषि-प्रधान देश माना जाता है; परन्तु वह अपने खाने के लिए भी अन्न पैदा नहीं कर

सकता। स्वयं पेट भरने के लिए ही दूसरे की सहायता चाहता है। फिर भला कैसे उन्नति हो सकती है ? यह तभी संभव हो सकता है, जब यहाँ के जवानों को भीख मिलना बन्द हो जाय अन्यथा देश का सुधार होना संभव नहीं।"

रायसाहब पुरोहित जी की बातें सुनते हुए आश्चर्य कर रहे थे। उन्होंने शान्ति की बात चलायी थी और यहाँ यह एक दूसरी ही समस्या सामने रख रहे थे। रायसाहब बोले, "पुरोहित जी, आज आपको क्या हो गया है ? प्रतिदिन दान-महिमा के पुल बाँधते थे—भिन्न-भिन्न वस्तुओं के दान से क्या-क्या पुण्य होता है इसका विस्तृत वर्णन होता था। आज इतना अन्तर ! आकाश-पाताल का भेद ! क्या आपकी दृष्टि में दान देना पाप है ? यदि बड़े लोग दान देकर छोटों को कर्तव्य-हीन बनाते हैं तो उन्हें न बनना चाहिए। वे दान के लोभ में पड़कर अपने रास्ते से क्यों हटते हैं ?"

"यह ठीक है, किन्तु क्षणिक सुविधा को देखने से लोगों के विचार में परिवर्तन हो जाता है। मुफ्त में मिली हुई वस्तु को छोड़कर काम करने के लिए अपनी गर्दन कौन फँसाना चाहेगा ?"

"तो इसके माने यह हैं कि दान देनेवाले ही पाप करते हैं ?"

पुरोहित जी ने हँसते हुए कहा, "नहीं-नहीं, पाप नहीं। धनवान् का तो यह कर्त्तव्य ही है कि गरीबों की मदद करें। यदि मुफ्त में ही खाने को देते है तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है ! किन्तु यदि युवक भिखमंगों के लिए काम करने का साधन तैयार कर दिया जाय तो मुफ्त दान की अपेक्षा देश के हित के लिए अधिक अच्छा हो। गरीबों सहायता के साथ-साथ राष्ट्र की भी सेवा हो।"

पुरोहित जी चलना चाहते थे। बातें भी करीब-करीब समाप्ति पर ही थीं और रायसाहब को भी दर्शन के लिए जाने में विलम्ब हो रहा था। पुरोहित जी ने कहा, "आपको दर्शन के लिए देर हो रही है। आज्ञा हो तो अब मैं चलूँ।"

रायसाहब ने मुस्कराते हुए कहा, "नहीं, विलम्ब की कोई बात नहीं है" फिर घड़ी की ओर देखकर बोले अच्छा, साढ़े आठ बज गये ! अच्छा तो फिर कल तो दर्शन होंगे ही। लेकिन मुझे भी तो चलना है। जरा रुकिए, मैं भी साथ ही चलूँगा।"

पुरोहित जी थोड़ी देर के लिए ठहर गये और रायसाहब अपनी छड़ी ले कर तैयार हो गये। दोनों बैठक से निकले ही थे कि ठाकुर संग्रामसिंह सामने दिखाई दिये। ठाकुर साहब बोले, "आज पुरोहित जी के साथ कहाँ की तैयारी है ?"

रायसाहब ने कहा, "कहीं की नहीं। आइए, विराजिए। आज आपने कई दिनों बाद पधारने का कष्ट किया।"

ठाकुर साहब ने गम्भीर स्वर में कहा, "हाँ, इस वर्ष विजयदशमी महोत्सव मनाना चाहता हूँ, इसलिए सारा समय उसी के प्रबन्ध में बीत जाता है। अभी तो दो माह बाकी हैं, किन्तु तैयारी बहुत करनी पड़ती है; दिन जाते देर नहीं लगती। मार्ग में मुझे सन्देह हो रहा था कि आप दर्शन करके वापस न लौटे होंगे, किन्तु आप जल्दी ही वापस आ गये।"

"अभी दर्शन करने गया ही कहां हूँ, पुरोहित जी आ गये, इस कारण जा सका। तैयार ही था। पुरोहित जी ने आज दान व बेकारी के विषय में बातें छेड़ दी थीं इसी विवाद में कुछ देर हो गई।"

"रायसाहब, धर्म के ठेकेदारों की बात क्या कहते हैं ? वे क्षण भर में दुनिया को पलट सकते हैं, स्वयं सृष्टिकर्त्ता भी इन्हीं ठेकेदारों के इशारे से अपना विधान बनाता है दूसरों की तो कोई बात ही नहीं ? आपको विलम्ब हो रहा है; ऐसा न हो कि धर्म के ठेकेदारों से मुक्ति पाकर भी दर्शन करने से वंचित रह जायँ और व्यर्थ की बकवास में समय नष्ट हो।"

ठाकुर साहब को पुरोहित जी से संकोच हो रहा था, क्योंकि उन्हें इस बात का पता चल गया था कि शान्ति के साथ किये गये नीचतापूर्ण

व्यवहार से पुरोहित जी अनभिज्ञ नहीं हैं। सीढ़ियों मे फिसलने पर उन्होंने ही शान्ति की सहायता की थी। पुरोहित जी ठाकुर साहब को जितने ही आदर की दृष्टि से देखते थे, इस घटना के बाद उन्हें वह उतनी ही अधिक घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे—वह कुछ कहना नहीं चाहते थे। इस रहस्य को स्वयं पुरोहित जी तथा ठाकुर साहब को छोड़कर दूसरा कोई नहीं जानता था और न वे दूसरे को बतलाना ही चाहते थे।

रायसाहब को दर्शन के लिए जल्दी थी; पुनः दुहराया. "हाँ, ठाकुर साहब ! आपने कैसे कष्ट किया, आपकी दूकान का क्या हाल है ?"

"ठीक है, एक बात आपसे पूछनी थी कि सम्पूर्ण सिल्क-व्यापारियों की बैठक बुलाई जाय और बढ़ते हुए मूल्य को रोकने के लिए विचार किया जाय।"

"हाँ-हाँ, मैं आपके विचारों से पूर्ण सहमत हूँ। मेरा तो बहुत पहले यह विचार था, पर कोई काम करनेवाला नहीं मिला। इसलिए देर हो गई। किन्तु अब देर करने का समय नहीं, जल्दी ही बैठक बुलाकर तय कर लेना चाहिए।"

ठाकुर साहब तथा रायसाहब की बातें समाप्त होने में देरी जानकर पुरोहित जी ने खड़े होकर चलने की आज्ञा चाही, किन्तु स्वयं रायसाहब ने कहा, "घबराइये नहीं, मुझे भी जल्दी है; मैं चलता हूँ।"

पुरोहित जी ने कहा, "घबराने की कोई बात नहीं है, नौ बज गये हैं, आपको दर्शन के लिए जल्दी है और मुझे घर जाने की।"

ठाकुर साहब ने कहा, "अच्छा, आप दोनों सज्जनों को देरी हो रही है तो अब चलना चाहिए। हाँ, रायसाहब ! आप दर्शन करके कितनी देर में लौटेंगे ?"

रायसाहब ने साँस खींचते हुए कहा, "मुझे एक घंटे मे कम नहीं लगता। दूसरे दिन नौ बजे वापस आ जाता था; किन्तु आज काफी

विलम्ब हो गया है ।"

ठाकुर साहब ने कहा, "रायसाहब, दो दिन का दर्शन क्या एक दिन में नहीं हो सकता ?"

रायसाहब ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "क्यों नहीं, जिस तरह दो दिन का भोजन एक दिन में किया जा सकता है, वैसे ही दर्शन में भी हो सकता है।" उन्होंने पान की तश्तरी आगे बढ़ायी ।

पान खाने के बाद ठाकुर साहब को समझ लेना चाहिए था कि अब जल्दी ही चलना चाहिए; किन्तु वह घर से नाराज होकर आए थे । उन्हें जल्दी उठने की कैसे सूझती ? वह दो-तीन घंटे का समय काटने के लिए निकले थे । रायसाहब को भी दर्शन के लिए जल्दी थी, इसलिए वे ठाकुर साहब को बिदा करने के प्रयत्न में थे, कई बार पान की तश्तरी आगे बढ़ा चुके, पर कोई उपाय न चला । पुरोहित जी से न रहा गया । पुनः चलने के लिए तैयार हुए । ठाकुर साहब ने देखा कि अब इन लोगों की इच्छा जाने की है । अतः वे भी चलने के लिए प्रस्तुत हुए । ठाकुर साहब मोटर में सवार हुए, पुरोहित जी तथा रायसाहब दर्शन के लिए चल दिये ।

: १४ :

शान्ति एक घण्टे में वापस लौट आने की बात सोचकर गई थी, किन्तु चार घण्टे से अधिक बीत गये । वह छटपटा रही थी । जीविका का प्रश्न था, इसलिए बिना बात तय हुए वह लौट भी नहीं सकती थी । बच्चों के भविष्य के लिए एक सहारा ढूंढकर उसे लौटना था । बड़ी आशा लेकर मकान बेचने गई थी, किन्तु भगवान् की महिमा अपार है कि घर बिकने से बच गया और पेट का भी प्रबन्ध हो गया । वह सोच रही थी, पहुँचते ही बच्चों को रोटियाँ बनाकर खिलाऊँगी और भर-पेट भोजन कर उनके मुरझाये हुए चेहरे खिल उठेंगे ।

शान्ति रायसाहब की कार्यकुशलता के विषय में सोच रही थी कि अकेले

अपने बुद्धि-बल से सेंकड़ों आदमियों की रोजी चलाते हैं । काम करने वालों को तनख्वाह देते हैं—भिखमंगों को अन्नदान देते हैं—कई मन गल्ला इस अकाल के समय में भी रोज़ दिया जाता है। न जाने कहाँ से इतना गल्ला आता है ? रायसाहब के लिए सरकार से छूट होगी, तभी तो कण्ट्रोल के समय में इतना गल्ला इकट्ठा रखते हैं, नहीं तो राशन के गल्ले से एक दिन भी पूरा न पड़े, एक मेहमान के लिए भी कण्ट्रोल दफ्तर की शरण लेनी पड़ती है। बड़े-बड़े आदमी अन्न के लिए परेशान रहते हैं । कल पड़ोस की नाइन बतला रही थी कि एक दिन सेठ किशोरीलाल जी के घर कई मेहमान आगए, सब लोग खाना खाचु के थे, घर में पर्याप्त गल्ला न था। राशन की दूकान भी बन्द थी, इधर-उधर की दूकानों में तलाश किया पर कुछ न मिला। कभी-कभी बगल की दूकानों से एक सेर आटा डेढ़-दो रुपये सेर के भाव से मिल जाता था, किन्तु उस दिन वह भी न मिला। पड़ोसियों के यहाँ उधार मिलना तो असंभव ही था। अतः नाश्ते और दूध से ही काम चलाना पड़ा। अनाज की इतनी कठिनता होते हुए भी रायसाहब को मुझे आटा दिलाने में थोड़ी भी हिचकिचाहट नहीं हुई।

× × ×

माँ के चले जाने पर एक घण्टे तक खुशी से गिरीश तथा श्याम खेलते रहे, इसके बाद खेलना बन्द कर दिया, और दौड़कर अन्दर गये। उन्हें माँ के बाहर जाने का स्मरण न था। श्याम माँ को पुकारता हुआ रोने लगा। गिरीश ने समझाया, "माँ कह गई हैं अभी आती हूँ तो आती होगी।" श्याम थोड़ी देर चुप रहा; फिर रोने लगा। गिरीश स्वयं भी भूखा था—वह श्याम को सँभालने में असमर्थ हो रहा था। श्याम बार-बार बाहर जाने के लिए हठ कर रहा था—आखिर गिरीश श्याम को रोक न सका और स्वतः भी श्याम के साथ बाहर निकल पड़ा। द्वार पर खड़े होकर दोनों भाई माँ की प्रतीक्षा कर रहे थे।

समय साढ़े सात से अधिक हो गया। दोनों भाई दिन भर से

भूखे थे माँ एक घण्टे के लिए गई थी और अब तक नहीं लौटी —घबरा रहे थे। एक तो बच्चे, दूसरे भूख से व्याकुल। एक सयाना आदमी भी भूख से व्याकुल होकर घबड़ा जाता है, और किसी काम के करने में उसका जी नहीं लगता, फिर ये तो बच्चे ही थे। शान्ति अपने जाने का स्थान तो बता नहीं गई थी। यदि बता भी जाती, तो बच्चों के लिए पाना मुश्किल था। न जाने कहाँ-कहाँ भटकी होगी।

श्याम के ऊधम मचाने पर गिरीश उस ओर चल पड़ा जिस ओर माँ को जाते हुए देखा था। पीछे-पीछे नाचता, कूदता और रोता हुआ श्याम भी चल रहा था; कहीं रुकता, कहीं बैठता और कहीं लेट जाता। गिरीश खीझकर कई चाटें भी लगा चुका था, किन्तु इसका उलटा ही प्रभाव पड़ा, वह और तेजी से रोने लगा। गिरीश दस हाथ आगे था और श्याम पीछे। कोई स्त्री दूर से दिखाई देती तो वे माँ समझ कर लिपटने के लिए दौड़ पड़ते थे। किन्तु समीप पहुँचने पर निराश होना पड़ता। श्याम तो कभी-कभी लिपट जाने से भी न चूकता था। बहुत-सी स्त्रियाँ श्याम को झिड़ककर आगे बढ़ जातीं किन्तु कुछ सहृदता भी दिखलाती थीं। गोदी में उठाकर अंचल से मुख पोंछ देतीं और कहतीं कि तुम घर लौट जाओ माँ आ रही है।

दोनों भाई सिसक-सिसक कर रो रहे थे। एक चबूतरे की सीढ़ी से सटकर बेहोश-सा गिरीश खड़ा हो गया और श्याम आगे बढ़ गया। श्याम को आगे बढ़ते गिरीश ने नहीं देखा, वह ठीक रास्ते से न जाकर भटक गया!

× × ×

शान्ति अपनी धुन में तेजी से आगे बढ़ती जा रही थी, उसे जल्दी भोजन बनाकर बच्चों को खिलाना था। अधिक देर लगने पर लड़कों के रोने की चिन्ता थी। वैसे तो गिरीश अवस्थानुकूल काफी धैर्यवान् था; वह आपत्तियों का मुकाबला करने में साहस नहीं छोड़ता था, पर श्याम की शैतानी से वह भी तंग आ जाता था। आये दिन बच्चों का

झगड़ा होता ही रहता था। शान्ति लाख समझाती, पर एक न मानते। दिन भर में एक बार झटापटी कर ही बैठते थे—शान्ति को लड़कों से अलग हुए चार घण्टे से अधिक हो गये थे, न जाने कितनी बार लड़े होंगे। शान्ति को इसकी विशेष चिन्ता थी कि कहीं वे लड़-झगड़कर घर से बाहर न निकल पड़े हों।

शान्ति ठठेरी बाजार से अपने मुहल्ले में पहुँच चुकी थी, मकान थोड़ी ही दूर था। सेठ की दूकान पर सौदा खरीदनेवालों की भीड़ लगी थी, सारी गली रुकी थी, एक कोने से निकलकर आगे बढ़ी—सीढ़ी से सटा हुआ गिरीश सिसक रहा था, आँखें बंद थीं—शान्ति एकाएक रुकी और धारीदार फटी कमीज देख कर बोली :

"गिरीश !" वह दौड़कर लिपट गया और रोने लगा। शान्ति उसे शान्त करने का प्रयत्न कर रही थी, और उसने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "गिरीश, रोओ मत। चलो, घर अभी खाना बनाकर दूंगी। तुम श्याम को छोड़ अकेले क्यों चले आए ? मैं कह गई थी न कि अभी आती हूँ।"

रोते हुए गिरीश ने कहा, "तुमने तो जल्दी आने को कहा था, पर शाम होने पर भी नहीं लौटीं। श्याम बहुत रोया, बड़ा उपद्रव किया और घर से चल दिया। मैंने कई बार रोका भी पर मुझे मारने को तैयार था -मुझे भी डर लगने लगा, तब तुम्हें खोजने के लिए चला" वह इधर-उधर देखने लगा।

आश्चर्यपूर्वक शान्ति ने पूछा, "श्याम भी तुम्हारे साथ आया था ?"

डरा हुआ गिरीश दबी जबान से बोला, "हाँ, वहाँ रोता हुआ पड़ा था।"

शान्ति ने 'श्याम श्याम' कह कर दो-तीन बार पुकारा, पर श्याम का कहीं पता न था। श्याम अपनी माँ को ढूंढ़ता हुआ भटक रहा था और माँ श्याम के लिए व्याकुल थी। आगे-पीछे की गलियों में कुछ दूर तक शान्ति ने देखा, फिर सोचा शायद घर की ओर लौट गया हो,

गिरीश को साथ लेकर घर को चल पड़ी। कुछ ही मिनट में घर पहुँच गई। द्वार पर नाइन को खड़ी देखकर वह सोच रही थी—श्याम घर में ही आ गया है, इसीलिए नाइन मेरी प्रतीक्षा में खड़ी है। किन्तु वास्तव में वह श्याम के घर में होने की वजह से नहीं, बल्कि शान्ति का घर सुनसान देखकर खड़ी सोच रही थी कि क्या शान्ति मकान छोड़ कर कहीं दूसरी जगह चली गई? पर मकान छोड़ने की चर्चा तो उसने कभी नहीं की। यदि कहीं जाती तो उसे अवश्य बता जाती। शान्ति इस तरह कहीं घूमने भी नहीं जाती थी, फिर बच्चे भी घर में नहीं थे। आखिर चली कहाँ गई?

शान्ति के लिए थोड़ा बहुत नाईन का ही सहारा था। दिन में वह चौधरी साहब के यहाँ रहती थी। सन्ध्या समय सात बजे लौट कर आती और घंटे-दो घंटे अपने सुख-दुःख की बातें शान्ति से करके घर चली जाती थी। नाइन अपने परिवार से अलग रहती थी। उसके लड़के, पतोहू, नाती आदि सब थे, पर उनसे उसे कोई मतलब न था। कई वर्षों से शान्ति की बगल में रहती थी। जब-तब आवश्यकता पड़ने पर शान्ति के बच्चों की देखभाल करती थी। जाते समय शान्ति ने नाइन की तलाश की थी, पर सात बजे के पहले वह घर में कैसे मिल सकती थी? फिर चौधरी साहब के यहाँ दो दिन से महमान आये हुए थे, इसलिए आने में और भी देर हो गई। लौटते ही वह शान्ति के घर गई और उसे सुनसान देख चिन्तित खड़ी थी। इसी बीच शान्ति घर पहुँची। वह श्याम के बारे में कुछ पूछना ही चाहती थी कि नाइन पूछ बैठी, "श्याम कहाँ है?"

शान्ति को नाइन से इस तरह के प्रश्न की आशा न थी। वह सोच रही थी—श्याम घर में अकेला है, इसलिए उसे छोड़कर नाइन घर नहीं गई, मेरे इन्तजार में खड़ी है, पर बात ऐसा न थी। नाइन के इस वाक्य को सुनकर शान्ति के होश उड़ गए—वह मूर्छित होकर गिर पड़ी, अंचल खुल गया—सारा आटा बिखर गया और आलू इधर-उधर लुढ़क

गये। गिरीश रो रहा था।

शान्ति की हालत देख नाइन समझ गई कि श्याम अवश्य ही कहीं भटक गया है। वह झट शान्ति के पास पहुँची, उसे उठाया और झाड़-पोंछ कर हवा करने लगी। साथ ही वह गिरीश को शान्त करने की कोशिश कर रही थी। शान्ति को दुखित देखकर वह स्वयं दुखी थी—रह-रहकर शान्ति व्याकुल हो जाती थी और उसके मुख से श्याम निकल पड़ता था।

नाइन शान्ति के इस असहनीय दुःख को दूर करने में असमर्थ थी। परन्तु उसकी मदद करने में वह कोई भी कसर न उठा रखना चाहती थी। शान्ति की मदद श्याम के ढूँढने से ही हो सकती थी, पर नाइन श्याम को कहाँ ढूँढती? बड़ी विषम परिस्थिति थी। फिर भी नाइन ने हिम्मत न हारी वह शान्ति की सहायता के लिए चल पड़ी।

शान्ति की दशा देख वह स्वयं पागल-सी हो रही थी।

: १५ :

ठाकुर साहब की मोटर चौक में पहुँची। बरसात का समय था। बादल चारों ओर से घिर आये थे, टप-टप बूँदें पड़ने लगीं। ठाकुर साहब ने ड्राइवर से पूछा, "टंकी में कितना पैट्रोल होगा?"

"यही, हुजूर, गैलन-दो गैलन।"

"बस?"

"हाँ, हुजूर। टंकी में तो पाँच गैलन आता है। अलग से पीपे में रख लेता हूँ। लेकिन आज कहीं दूर जाना नहीं था, इसलिए नहीं रखा है।"

"क्यों? जाना क्यों नहीं है? अभी इलाहाबाद चलना है।"

"हुजूर, हमको नहीं बताया गया था। कोठी पर भी पीपे में पैट्रोल कम होगा। आज सुबह बहू साहिबा को जंगल घुमाने चला गया था उसी में सब खतम हो चुका है। थोड़ा-सा बचा होगा।"

ठाकुर साहब सुबह घूमने की बात सुनते ही गर्म हो गए और बोले, "बिना हमसे पूछे इस तरह किसी को घुमाने न ले जाया करो। अभी हमें इलाहाबाद ज़रूरी काम से चलना था,—पैट्रोल ही नहीं है। मिल भी नहीं सकता ?"

"शायद मिल जाय। आजकल पैट्रोल—बाबू की तबियत ख़राब है, इसलिए वह नौ बजे घर चले जाते हैं। अब तो साढे नौ बजते होंगे।"

घड़ी की ओर देखकर ठाकुरसाहब ने कहा, "नौ बज कर बीस हैं। सोचते कि न मालूम कब कैसा जरूरी काम आजाय। चार-छः गैलन पैट्रोल पड़ा रहने दें। जो आया फूँका क्या चिन्ता है ?"

ड्राइवर ठाकुर साहब की बातें सुनता हुआ चुपचाप सोच रहा था, अभी इलाहाबाद जाने की कौन-सी मुसीबत आ पड़ी। मैंने अभी खाना नहीं खाया और घर में यह भी नहीं बतलाया कि मैं ठाकुर साहब के यहाँ जा रहा हूँ, लोग इन्तज़ार में बैठे होंगे।

खाना खाने के लिए छुट्टी माँगने पर शायद और नाराज़ हो जायँ। इसी चिन्ता में पड़ा था, तब तक मोटर मैदागिन चौमुहानी पहुँच कर टकराते-टकराते बची। ठाकुर साहब का दिल धड़कने लगा, ड्राइवर काँप रहा था। वह मोटर को एक किनारे रोककर और इंजन का आवरण हटाकर देखने लगा।

ठाकुर साहब गुस्से में आकर बोले—"क्या बात है ? आँख मूँद कर चलाते हो। बे मौत मरे थे।"

इंजन को ढँकते हुए ड्राइवर ने कहा, "हुजूर, ब्रेक टूट गया और कुछ नहीं हुआ।"

आश्चर्य पूर्वक—"ब्रेक टूट गया। भगवान् ने ही बचाया। अब क्या होगा ?"

ड्राइवर ने मोटर पर बैठते हुए कहा, "बिना ब्रेक की गाड़ी में इलाहाबाद चलना ठीक नहीं। बनने पर ही चल सकते हैं। आज तो बन नहीं सकता कल ही बनेगा।"

घर्र-घर्र दो-तीन आवाजें हुईं, और मोटर चलने लगी। थोड़ी देर में ठाकुर साहब कबीरचौरा होकर अपनी कोठी पर पहुँच गए और मोटर से उतरकर ड्राइवर से कहा, "कल सबसे पहले ब्रेक बनवा लेना" ड्राइवर सलाम कर अपने घर की ओर चला गया।

× × ×

प्रभावती जयपुर के शाही खानदान की बेटी थी। उसे आधुनिक ढंग से एम० ए० तक की शिक्षा भी मिली थी। सर्व प्रथम हिन्दू-विश्व-विद्यालय में ठाकुर साहब से परिचय हुआ था। वह सोच रही थी कि उस समय की बातों को क्या ये भूल गए होंगे? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। जिसके लिए सामाजिक नियमों का बंधन तोड़ा गया; जाति-परम्परा को तिलांजलि देकर प्रेम को प्रधानता दी गई, क्या ठाकुर साहब उसका तिरस्कार करने का साहस कर सकेंगे? पिता जी ने राज-घराने में मेरा विवाह तय किया था, किन्तु मैंने स्वयं प्रेम-पाश में बँधकर समाज की परम्परा का ध्यान न रख, पिता जी के विरुद्ध कदम उठाया था। मेरी वजह से पिता जी को समाज में अपमानित होना पड़ा। क्या इस ओर ठाकुर साहब का ध्यान न जायगा? उन्हें भी तरह-तरह की बाधाएँ पहुँचाई गई थीं, उनके पिता ने घर से निकालने की धमकी दी थी। एक दिन क्लास में प्रोफेसर साहब बिहारी के दोहों को पढ़ा रहे थे—काल्पनिक नायक-नायिका के द्वारा अर्थ समझा रहे थे। उस दिन उनके प्रेम की भावना कितनी तीव्र हो उठी थी पाठ समाप्त होने पर ठाकुर साहब ने कहा था, "संसार की सभी वस्तुओं को छोड़कर मैं केवल तुम्हें चाहता हूँ, मेरे जीवन के लिए तुम्हीं सर्वस्व हो। क्या वह सब केवल वासना थी?"

पुरुष अपने स्वार्थ में अन्धा होकर नारी की ओर झुकता है, किन्तु नारी उसकी स्वार्थपरता को न समझकर समर्पण कर देती है। ओह! नर-नारी के पवित्र प्रेम में यह प्रवंचना समाज के लिए कितनी अहितकर है! स्वार्थ में उचित-अनुचित का ज्ञान नष्ट हो जाता है।

इसीलिए स्वार्थपरता मानव-जीवन की उन्नति में बाधक है।

× × ×

सीढ़ी चढ़ते हुए ठाकुर साहब सोच रहे थे, "आज मैंने ही गलती की। नहीं, गलती नहीं; संसार में आने का यही तो सुख है। यदि किसी सुन्दर रमणी का हमने सम्मान किया, तो क्या अपराध ! चिन्ता करना व्यर्थ है। लेकिन प्रभावती······

प्रभावती क्या मुझे बुरा समझती है ? यदि नहीं तो पीछे क्यों पड़ी है ? उसकी भी भावनाएँ बदल गई हैं। शान्ति के चले जाने के बाद ज़िद करके बातें करने का आखिर क्या मतलब था ? बार-बार मना करने पर भी प्रतिवाद करने पर तुली हुई थी। वही प्रभावती जो मेरे कड़ी निगाह होने पर संकोच से दब जाती थी, सामना करने को तैयार है। कष्टों से घिरा होने पर भी जिससे मिलने में मुझे शान्ति मिलती थी, उसी के स्मरण से ज्वाला उत्पन्न होती है, शरीर जलने लगता है—इतनी विषमता !

ठाकुर साहब प्रभावती से कही अपनी बातों का स्मरण कर रहे थे—उस सुहावनी रात को चारुचन्द्र खेल रहा था। आकाश में तारा टिमटिमा रहे थे। उन्हीं को साक्ष्य देकर मैंने कहा था—संसार के सम्पूर्ण ऐश्वर्य को छोड़कर मैं केवल तुम्हें चाहता हूँ। सामाजिक अपमान सहन कर तुम्हारे साथ बन में भी रहने को तैयार हूँ। उस दिन प्रभावती के सौन्दर्य के समक्ष मेरी दृष्टि में कोई भी युवती सुन्दरी न थी और वर्ण की कमनीयता मन को मोह रही थी।

मेरे पिता जी ने कालेज में पढ़ी हुई लड़कियों के साथ विवाह करने के लिए मना किया था, किन्तु प्रभावती के सौन्दर्य एवं सुशीलता को देखकर उन्हें भी अनुमति देनी पड़ी। यदि प्रभावती ने नारी-मर्यादा को उल्लंघन करके समाज में प्रचलित रूढ़ियों का तिरस्कार न किया होता तो मेरे साथ विवाह होना सम्भव न था। किन्तु प्रभावती का वह देवी स्वरूप बदल कर डाकिनी में परिवर्तित हो गया है। नारी,

अपने प्रिय के लिए सभी वस्तुओं का त्याग कर देवी बन उसे आनन्दित करती है, किन्तु क्षण भर में ही डाकिनी रूप धारण कर उसके सारे सुख को नष्ट करने में भी सफल हो सकती है ? नारी जितनी सुखकर है, उतनी ही दुखद भी।

प्रभावती ने जो कुछ भी त्याग किया है, वह मेरे लिए नहीं, बल्कि अपने ही स्वार्थ-साधन के लिए। यदि उसका कोई स्वार्थ न होता तो वह एक महाराजा के साथ तय हुई शादी को अस्वीकार कर मुझ साधारण रईस के साथ विवाह करने को तैयार न होती। महारानी बनकर संसार के सम्पूर्ण सुखों के भोगने की इच्छा किसे नहीं होती ? संसार में ऐसा कोई पैदा नहीं हुआ, जो अपनी हानि कर दूसरे का उपकार करे। यदि वस्तुतः ऐसा कोई है तो वह संसार के महापुरुषों में में गिना जायगा। किन्तु कहाँ मुड़ली पहाड़ी कहाँ-सुमेर पर्वत ! इन दोनों की कैसे समता हो सकती है ! एक ओर प्रभावती का स्वार्थमय जीवन, दूसरी ओर परोपकार का सच्चा आदर्श। स्वार्थ के साथ परोपकार का एकत्व सर्वथा असम्भव है।

पति के समक्ष धृष्टता करना ही नारी का सबसे बड़ा अपराध है। स्त्री के सभी अपराधों को पुरुष क्षमा कर सकता है, किन्तु अवज्ञा को नहीं। आज प्रभावती ने ठाकुर साहब से निडर होकर बातें की थीं। ठाकुर साहब स्वयं गलत रास्ते पर थ, इसलिए बात इतनी बढ़ गयी थी। अन्यथा वह एक शब्द भी इच्छा के विरुद्ध नहीं बोलती। प्रभावती ठाकुर साहब के चले जाने के बाद ज्यों-की-त्यों खड़ी रही। ठाकुर साहब के प्रवेश करते समय थोड़ा सहमी।

ठाकुर साहब ने देखा वह एक घण्टे पहले, रायसाहब के यहाँ जाने के पूर्व जिस रूप में खड़ी थी, अब भी उसी रूप में है। मन ही मन कुढ़ रहे थे—प्रभावती की इस मायावी चाल से क्रोध और भी बढ़ गया। पर चुपचाप कपड़े उतारकर खूँटी पर टाँगे और पंखा चलाकर, आराम कुर्सी पर लेट गए।

प्रभावती अपने अपराध के लिए क्षमादान चाहती थी, किन्तु ठाकुर साहब से कहने का साहस न होता था। वह अन्दर गई और थाल लेकर वापस आई। सामने मेज़ पर रखती हुई बोली, "मैं अपनी गलती के लिए क्षमा चाहती हूँ।"

"मुझ से क्षमा ! तुम्हारे लिए मृत्यु-दण्ड ही क्षमा है।" ठाकुर साहब ने कहा।

प्रभावती सुनकर सन्न रह गई। उसे यह आशा न थी कि ठाकुर साहब इतने अधिक नाराज़ हो जायेंगे। विनय के साथ बोली, "आपका आदेश मुझे सहर्ष स्वीकार है, किन्तु भोजन करने के लिए अन्तिम प्रार्थना है।"

ठाकुर साहब प्रभावती की प्रार्थना स्वीकार कर भोजन करने लगे।

: १६ :

शान्ति को कुछ देर बाद होश आया—नाइन हवा कर रही थी, गिरीश बगल में सिसक-सिसक कर रो रहा था। शान्ति बोलना चाहती थी, किन्तु खुश्की आ जाने से न बोल सकी। उठने का उपक्रम करते हुए गिरीश की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—"मत रोओ बेटे !" वह नाइन के सहारे उठकर बैठ गई। पर आँसू अब भी टपक रहे थे।

शान्ति तीन दिन से बिना अन्न के थी। उसका शरीर कैसे काम कर सकता था ! फिर एक बार ठाकुर साहब के यहाँ सीढ़ी से गिर कर बेहोश हो चुकी थी। काफी चोट आई थी। पुरोहित जी ने सहारा दिया नहीं तो सिर फूट जाता; दूसरी ओर एक बच्चा खो गया—शान्ति को बेहोशी आजाना स्वाभाविक था। शान्ति को सान्त्वना देते हुए नाइन ने कहा :

"घर में चारों ओर मैंने आते ही देख लिया है, यहाँ भी नहीं है न जाने कहाँ होगा ?"

शान्ति सोच रही थी—कहीं घर में ही किसी कोने में सो तो नहीं रहा है। वह बोली, "नाइन, एक बार फिर से देख लो शायद कहीं सोता न हो।"

शान्ति की बात नाइन को भी जँची, वह धीरे से उठी और शान्ति के साथ अंदर चल पड़ी। श्रावण के बादल घिर आये थे। घनघोर गर्जन से हृदय काँप उठता था। बिजली की कड़क बड़ी ही भयावनी थी। बड़ी-बड़ी बूंदों का गिरना आरम्भ हो गया था। घर में चारों ओर अंधकार छाया था—बिजली की चमक से क्षण भर के लिए उजाला हो जाता था और फिर वही अंधकार। घर में दीपक जलाना भी शान्ति के लिए असंभव था। शायद दीपक तेल से खाली था। फिर बरसात में चंचल वायु के झोकों से उसका जलना भी कठिन था। नाइन अंधकार को दूर करने के लिए अपने घर से लालटेन लाने के लिए गई।

नाइन अवस्था में पचास से कम की न थी; किन्तु काम में काफी फुर्तीली थी। जीवन भर उसे टहल ही बजानी पड़ी, यदि एक दिन टहल न बजाये तो खाना न मिले। कुछ ही क्षणों में घर जाकर अंधेरे में लालटेन ढूंढ़ी, जलायी और लेकर वापस आगई।

शान्ति के घर के किवाड़ सब खुले थे, आँगन में फूटा लोटा पड़ा था। चारों ओर बार-बार ढूंढने पर भी श्याम न मिला। वह तो गलियों में भटकता हुआ माँ को ढूंढ रहा था। निराश हो शान्ति रो पड़ी...।

मुहल्ले के लोग शान्ति की चिल्लाहट और रोना सुन कर अपने-अपने घरों से निकले—रोने का कारण पूछा। बेटा खो जाने का समाचार जानकर थोड़ी बहुत सहानुभूति प्रकट कर अपने-अपने घर के लिए वापस हो गये। कोई इधर-उधर खोजने, कोई कोतवाली में इत्तला करने के लिए कह रहा था—शान्ति में इन तरकीबों से काम करने की शक्ति न थी।

अड़ोस-पड़ोस के लोग सोच रहे थे—दस बजे की रात इसका लड़का कैसे खो गया? यह सोने का समय है। क्या सोते ही समय लड़के की

खोज की ? इसके पहले चिंता नहीं थी। चार-पांच वर्ष के लड़के के लिए इतनी देर तक कैसे निश्चिन्त रही ? नाइन के बतलाने पर ज्ञात हुआ कि दिन भर से लड़के भूखे थे, उनके लिए खाने का प्रबंध करने घर से निकली थी और बच्चों को घर में ही छोड़ गई थी। लौटने पर गिरीश बाहर रोता हुआ मिला; और श्याम न जाने कहाँ निकल गया। नन्हा-सा बच्चा जाने कहाँ भटकता होगा ? नाइन की आँखें सजल हो आई।

कुछ युवतियाँ आपस में बातें कर रहीं थी—क्या रात को ही बच्चों के खाने का प्रबंध हो सकता था—हाँ, अभी कौन अधिक अवस्था बीत गई है। एक दूसरे की ओर आश्चर्यपूर्वक आंखें गड़ा कर देखा और मुस्कराई - बुड्ढियों के डांटने पर चुप हो गईं।

शान्ति के मकान से सटा हुआ देवीदयाल का मकान था। ये मुहल्ले के सबसे बड़े पहलवान थे। वर्तमान समय में उनसे लड़ने को कोई तैयार नहीं था। विशाल-काय, अपार बल ! उनके दल के प्रभाव को कौन नहीं जानता था। कोई लड़ने का साहस नहीं कर सकता था। बुलानाला के पहलवानों की मंडली से कुछ तनातनी हो गई थी। लड़ने के लिए एक नवयुवक पहलवान ने अपना नाम देवीदयाल के पास भेजा था। शहर में बड़ी सनसनी थी। सुबह सात बजे टाउन-हाल के मैदान में कुश्ती होनी निश्चित् हुई थी। सरकारी तौर से पुलिस का प्रबंध भी दंगे के भय से लोगों को कराना पड़ा।

देवीदयाल प्रातःकाल अखाड़े में पहुँच कर विजयी होने की उमंग में उस समय मालिश करा रहा था। एकाएक दस बजे रात को रोने की आवाज सुनकर पूछा—"कौन रो रहा है ? कुछ देर बाद गुस्से में घर से बाहर निकलकर सीढ़ी से गरजा :

"ये कौन हल्ला मचा रहा है ?"

सामने खड़े हुए लोगों ने कहा, "पंडित जी की औरत है। उसका छोटा बेटा गायब हो गया है ? इसीलिए रो रही है।"

"लड़का गायब हो गया है ? तो मुहल्लेवालों को निकाल देगी ! जाकर कोतवाली में इत्तला कर दे । सुबह आप-से-आप मिल जायगा। पंडित जी के मरने के बाद साल भर योंही सोना हराम था, इधर दो-तीन माह से कुछ शान्ति मिली तो आज से फिर शुरू हो गया ।"

देवीदयाल की बातें लोगों को बुरी लग रहीं थी । यद्यपि कुछ अंश तक बातें सत्य थीं, पर बेचारी शान्ति के दुःख में रोने के लिए रोक उचित न थी । संसार में गरीबों की दुःख में और भी दुर्दशा होती है। भर मन रो भी नहीं सकते, कैसी विधि की विडम्बना है ! देवीदयाल की बातें एक बूढ़ी औरत से न सही गयीं तो वह बोल उठी :

"कोई मर रहा है, कोई मलहार गाता है। वह बेचारी, लड़का गायब हो जाने पर रो रही है, ये उलटे डाटने चले हैं।"

गुस्से में आकर सीढ़ी से उतरते हुए देवीदयाल ने कहा, "तो इसमें क्या ? लड़का गुम गया है तो तलाश करे, रोने से क्या घर आ जायगा ?"

बुड्ढी पुनः बोल उठी, "जिसका बच्चा खो जाता है, उसी को मालूम होता है । आपको क्या ?"

झरझर पानी की झड़ी लग गई । भाग-भाग कर लोग अपने घरों में छिपने लगे । शान्ति के प्रति लोगों की तरह-तरह की धारणाएँ थीं—पंडित जी को मरे दो वर्ष से अधिक हो रहा है, न जाने कैसे यह औरत काम चलाती है । पंडित जी के समय में भी खर्च पूरा नहीं पड़ता था, अब कैसे चलता है । कोई आमदनी भी सामने नहीं दिखाई पड़ती, कहीं काम करना तो उसके लिए कठिन ही है । दस बजे तक कहाँ रही । कौन जाने । आज लड़का खो गया तो लोगों को पता चला, वैसे क्या पता ? ईश्वर जाने जो हो । इसी में सन्तोष कर अपने-अपने काम में सब लग कर शान्ति की चिंता से दूर हो गये ।

पानी ऐसा बरस रहा था, जैसे उसे रुकना ही न हो । दो घंटे लगातार वर्षा होने से चारों ओर पानी-ही-पानी भर गया । किसी ओर

निकलने लायक न रहा। गलियों में घुटने से ऊपर पानी भर गया था। किसी की मोरी बंद हुई, किसी की छत गिरी, लोग हल्ला कर रहे थे—शान्ति इस घनघोर वर्षा से और भी व्याकुल हो उठी—श्याम की चिंता में घर के अंदर एक क्षण भी न रुक सकी। गिरीश को नाइन के पास छोड़ श्याम को ढूंढने निकल पड़ी।

नाइन पानी बन्द होने के बाद चलने की सोच रही थी, पर शान्ति का धैर्य टूट गया, वह सब भय त्याग आगे बढ़ने को प्रस्तुत होगई। जिस ओर देखती उसी ओर श्याम के मिलने की पूर्ण आशा कर भीगे नयनों से जा रही थी।

शान्ति को अपने यौवन-काल में भी घूमने का शौक न था, फिर भारतीय परिपाटी से पली हुई नारी आमोद-प्रमोद के लिए इधर-उधर घूमना कैसे पसंद कर सकती थी। केवल अपने आवश्यक कार्य के लिए ही घर से बाहर निकलती थी। गंगास्नान के लिए दशाश्वमेध, पंचगंगा तथा मणिकर्णिका घाटों को जानती थी, वह भी जब-तब पर्वों में ही इन घाटों को देखा था। सदा मणिकर्णिका घाट में ही स्नान करती और विश्वनाथ का दर्शन कर वापस चली आती। संसार के प्रपंच से कोई मतलब न था। श्याम किस मार्ग से कहाँ गया होगा इसकी कल्पना तक न थी, वह किस गली में ढूंढे, इसी उलझन में चकराई हुई थी।

गिरीश जहाँ मिला था वहाँ तक निःसन्देह चली गई, फिर सोचने लगी—पास से ही जो गली चौक की ओर जाती थी उसी से आगे बढ़ी। चक्कर लगाते हुए कई पुलिस के सिपाही भी मिले, पर श्याम का पता न बता सके। उन सिपाहियों ने कोतवाली में इत्तला करने के लिए सलाह दी। भटकते हुए वह चौक कोतवाली के सामने पहुँची। तीन सिपाही पहरे पर खड़े थे। शान्ति सिपाहियों को देखकर दूर ही से डरती थी; किन्तु परिस्थिति स्वयं निर्भीक बनाकर आधी रात चारों ओर घूमने को बाध्य कर रही थी। शान्ति जो

सिपाहियों को देखकर डरती थी, आज सिपाहियों के पास जा-जा कर श्याम को पूछ रही थी। वह सोच रही थी कि जिन बच्चों के लिए मुझे अपमानित होना पड़ा, वे भी मुझसे अलग होना चाहते हैं। क्या मुझ अभागिनी का साथ न देंगे ? वह फूट-फूट कर रो रही थी। साहस कर कोतवाली की ओर मुड़ी।

सिपाहियों ने देखा कि रोती हुई औरत आधी रात कोतवाली की ओर आ रही है। कोई कारण विशेष है। तुरन्त एक सिपाही ने आगे बढ़कर पूछा, "क्या बात है ?"

शान्ति रोती हुई बोली, "मेरा लड़का खो गया है।"

"लड़का खो गया है ! तुम्हारा घर कहाँ है ?" एक सिपाही ने पूछा।

"यहीं सिद्धेश्वरी मुहल्ले में।"

"किस समय खोया है ?"

"छः-सात बजे खोया होगा। अभी पाँच वर्ष का पूरा न हुआ था।"

आश्चर्य प्रकट करते हुए सिपाही ने कहा—"हूँ, पाँच वर्ष का लड़का छः-सात बजे खो गया और अब तक पता नहीं कि ठीक छः या सात, कितने बजे खोया है। औरतें बच्चा पैदा करना जानती हैं और कुछ नहीं। कोतवाली में अन्दर जाकर रजिस्टर में सभी बातें पूछ कर लिख लीं। अवस्था, रूप, रंग तथा नाम सभी चीजें विवरण पूर्वक लिख दीं और रजिस्टर में शान्ति के हस्ताक्षर भी करा लिए।

शान्ति आदेश पाकर पुनः चल पड़ी। तीनों सिपाही आपस में बातें करने लगे—'यार थी तो अच्छी, रात भर रोक लेते; फिर सुबह चली जाती। हम लोग उसके लड़के का भी पता लगा देते और वह तैयार भी होजाती।' तीन सिपाहियों में एक सिपाही सयाना था डाँटकर बोला, "नीच, तुम लोग क्या बातें कर रहे हो ?" दोनों युवक सिपाही बोल उठे, "अच्छा इस ऊँच को देखो" ठहाका मार कर हँस पड़े।··· ··वृद्ध सिपाही ने पुनः कहा, "किसी दुखिया को सताना पाप है।"

युवक सिपाहियों ने कहा—"वाह ! पुण्य-पाप देखना होता तो

पुलिस में नौकरी करते ? घर-द्वार छोड़ मौज उड़ाने के लिए ही तो पुलिस में नौकरी की है ?"

पीछे से कोतवाल साहब की आवाज़ आई "हाँ-हाँ, खूब मौज उड़ाओ। बेशर्म, काम करना दूर रहा मौज उड़ाने को आये हो।" वे आँखें घुरेर कर आगे बढ़ गये।

तीनों सिपाही सन्न से रह गये।

: १७ :

रायसाहब के साथ पुरोहित जी भी कुछ दूर तक गये, फिर अपने घर की ओर चले गये। रायसाहब प्रतिदिन एक घंटे में विश्वनाथ-दर्शन करके वापस आ जाते थे; किन्तु उस दिन देरी हो गई थी। विश्वनाथ की आरती के दर्शन में भक्त का मन-मोहित हो जाना असम्भव न था, फिर आरती होती ही इतने सुन्दर ढंग से है कि बीच में चलने को जी नहीं चाहता। देवताओं की आरती का बड़ा महत्त्व है—रात दिन में कई आरतियाँ होती हैं—पूजा, भोग तथा शयन आदि के समय।

पतित-पावनी, मुक्ति-दायिनी, त्रिलोक-न्यारी भगवान् शंकर की क्रीड़ास्थली काशीपुरी की शोभा अवर्णनीय है। जहाँ स्वयं शंकर भगवान् विश्वनाथ रूप से अपने गणों सहित विराजमान हों उनके सौन्दर्य-वर्णन में कौन समर्थ हो सकता है ? उनके मन्दिर में प्रातःकाल से लेकर अर्द्धरात्रि पर्यन्त दर्शकों का जमघट लगा ही रहता है। देशदेशान्तर के यात्री दर्शन कर अपने को धन्य मानते हैं।

सायंकाल नौ बजे से शयन आरती आरम्भ होकर बारह बजे तक समाप्त होती है। उस समय की छटा भारतीय संस्कृति के अतीतकाल के वैभव की प्रतीक है। दर्शकों के हृदय में आनन्द का अपार सागर उमड़ आता है। आरती आरम्भ होने से पहले ही नर-नारियों की अपार भीड़ स्वर्ण मन्दिर में इकट्ठी हो, भजन करने लगती है। आँगन में तिल भर स्थान रिक्त नहीं रहता। बड़े कौतूहल से लोग दर्शन कर आनन्दित होते हैं।

'हर हर महादेव' की ध्वनि से आकाश गुंजित करते हुए, भक्तों को नव-जीवन प्रदान कर, काशिराज के यहाँ, बड़े-बड़े चांदी के घड़ों में दुग्ध तथा स्वर्ण-कटोरों में चंदन लिए हुए "वेदपाठी ब्राह्मण पधार कर मन्दिर की शोभा बढ़ा देते हैं। विशाल-काय, लम्बे-ललाट में लगी हुई भस्म तथा कंठ में रुद्राक्ष की मालाएँ उन विद्वानों की प्रतिभा प्रसारित करती हैं। पीताम्बर-पहन रुद्राभि नन्दनकरते हुए ऐसे ज्ञात होते हैं मानों स्वयं ऋषिगण शिव की अर्चना करने के लिए पधारे हों। मलय-सुवासित शीतल-वायु संसार के संपूर्ण सुखों एवं दुखों को भुला देती है। स्वर्ण शय्या सजाकर शिव-पार्वती को स्थापित कर—

"ॐ गंगाधर हर शिव जय गिरिजाधीश ;
त्वां मां पालय नित्यं कृपया जगदीश।
हर हर महादेव॥"

गायन करते हुए आरती करते हैं। डमरू, नगाड़ा तथा घंटों के नाद से आकाश गूँज उठता है। इस अपार सुख-राशि को समेटने मे कौन भूल कर सकता है। रायसाहब को भी इस भक्ति-लहर में हिलोरे लेने से देर होजाना स्वाभाविक था।

कमला, रायसाहब की अर्द्धाङ्गिनी अपने शयन-कक्ष में टहलते हुए सोच रही थी—आज रायसाहब अब तक क्यों नहीं लौटे ? नित्य नौ बजे वापस आ जाते थे, भोजन के लिए विलम्ब हो रहा है। रह-रह कर द्वार तक आकर देख जाती, पर रायसाहब शिव के ध्यान में तन्मय थे, उन्हें उस समय आत्मानन्द के सामने भोजन तथा कमला की प्रतीक्षा की क्या चिन्ता थी !

कमला कभी-कभी रायसाहब के सरल स्वभाव से खीझकर कुछ क्षणों के लिए कुपित हो जाती थी और फिर वही प्रसन्न मुख-मुद्रा। उसने कई बार रायसाहब से कहा भी था—इस संसार में सरल होना स्वयं कष्ट को निमंत्रण देना है। छोटे आदमियों के पास भी लोग जाने में डरते हैं, पर रायसाहब के पास आने में किसी को थोड़ी भी हिचकिचाहट

नहीं होती—घण्टों बैठे रहते हैं। उन बेचारों का क्या दोष? रायसाहब स्वयं गेमे हैं। बेकार अपना नुकसान कर बड़े प्रेम से एक के बाद दूसरे की प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं। इसके लिए कोई क्या कर सकता है?

सब अपने-अपने फायदे के लिए ही आते हैं, पर उन्हें क्या दे जाते हैं। दस बज गये, अब तक लौटने का समय नहीं हुआ। जिसे अपने भोजन, शयन का ख्याल नहीं; वह और काम कैसे कर सकता है।

कोठरी से निकल कर वह कई बार गली की ओर देख चुकी थीं। उदास हो दीवाल से टिककर सुसज्जित शय्या के कोने में बैठ गईं। नींद से आँखें अलसा रही थीं, कुछ आहट मिली—सामने देखा। रायसाहब सिल्की चादर ओढ़े, सुगंधित पुष्प की माला पहने आ रहे हैं तुरन्त उठी। तब तक रायसाहब भी कोठरी के अंदर आ चुके थे। कमला ने सिर उठाकर रायसाहब की ओर देखा—आँखें घुमाकर अन्दर चली गई और खाना लेकर वापस आई।

रायसाहब ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "अब तो साढ़े दस हो रहा है, काफी देरी हो गई—मैं भोजन नहीं करूँगा।"

कुछ क्षण के लिए आँखें चार हुईं—कमला मुस्करा कर बोली—"इसमें मेरा क्या दोष?"

रायसाहब ने हँसते हुए कहा, "तुम्हारा कोई दोष नहीं है। और तुम्हें दोषी साबित ही कौन कर रहा है। नारी संदेह की मूर्ति है।"

कमला जल्दी ही बोल उठी, "हाँ, हाँ, नारी संदेह की मूर्ति है और पुरुष···!" आगे मुस्कराकर लज्जित होगई।

रायसाहब नें थालपोश हटाया और दो पराठे खाकर उठ गये। दूध पीते हुए बोले, "आज ज्यों ही तैयार हो दर्शन के लिए जाना चाहता था, कि पुरोहित जी एक महाराजिन को साथ लेकर आ गये; उनसे फुरसत मिली तब तक ठाकुर संग्रामसिंह आ टपके। बातें होते देर हो गई।

नौ बजे के बाद दर्शन करने जा सका।"

कमला ने कहा, "कौन सी गम्भीर परिस्थिति में विचार हो रहा था जो इतनी देर लगी ?" मुख पर कुछ रुष्टता का भाव था।

रायसाहब ने गम्भीरता से कहा, "कोई गम्भीर परिस्थिति नहीं थी। बातें तो पहले ही खत्म हो चुकी थीं। ठाकुर संग्रामसिंह अड़े बैठे थे, न जाने क्यों आज उठने का नाम नहीं लेते थे ? दूसरे किसी दिन दस मिनट भी बैठना उनके लिए कठिन था; पर आज पुरोहित जी के कई बार तैयार होने पर भी अनिच्छा से ही उठे।

कमला ने सोचकर कहा, "आपको क्या पता ? ठाकुर साहब बड़े घुटे हुए आदमी हैं, किसी काम से ही आये होंगे। मौका न देखकर चुप रहे। हमने तो यहाँ तक सुना है कि आज कल जो इधर डकैतियाँ हो रही हैं, उनमें इनका भी हाथ है। अभी हाल में जो मोगलसराय से लाखों रुपये का माल ग़ायब हुआ था उसमें ठाकुर साहब भी बुलाये गये थे।"

कमला की बातें सुनते ही रायसाहब के कान खड़े हो गये। उन्होंने सोचा था, ठाकुर साहब बड़े शरीफ़ हैं, रईस होने के साथ ही गरीबों के मददगार हैं। आश्चर्य पूर्वक कहा, "तुम से यह कौन कहता था ?"

"मुझ से ? आज सुबह बद्री ने कहा था; और इसकी चारों ओर खबर है। शहर का बच्चा-बच्चा जानता है।"

"नहीं, तुमने गलत सुना है। सुनी हुई बातों पर विश्वास करना मूर्खता है। अब किसी से इस तरह मत कहना। आज ठाकुर साहब को किस वस्तु की कमी है ? वे ताल्लुकेदार हैं, नगर में कई हवेलियाँ हैं, और सेवा करने के लिए नौकर-चाकर हैं। साथ ही उनके बाप की कमाई हुई संपत्ति ही दो पुश्त छानने-फूँकने के लिए कम नहीं है। उन्हें क्या गरज, जो पैशाचिक कर्म करने के लिए तैयार होंगे ?"

कमला ने कहा, "पानी में खड़े बगले भक्त की बातों में आकर मछलियों ने यह कब समझा था कि वह अपने स्वार्थ-साधन में ही तन्मय है ? किसी के हृदय की बात कोई कैसे जान सकता है ?"

"इससे क्या ? जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा।"

"लेकिन, कभी-कभी बुरे के साथ अच्छे भी पिस जाते।"

सशंकित हो रायसाहब ने कहा, "आखिर ठाकुर साहब को यहाँ आने से रोकना भी तो अनुचित है।"

कमला मुस्कराकर रायसाहब के समीप बैठती हुई बोली, "मैं रोकने के लिए कब कहती हूँ ? जो सुना था वही बतला दिया है।"

रायसाहब ठाकुरसाहब के अधिक देर बैठने के रहस्य को स्वतः समझ गये। पहले भी सोच रहे थे कि "ठाकुर साहब बेकार घूमने वाले नहीं हैं ! जहाँ कहीं भी जाते हैं, अपने काम से। किन्तु कमला जो घरों में रहती है, उसे इन सब बातों का पता है ! मेरे पास हजारों व्यापारी आते हैं, फिर भी मैं न जान सका ! वह आश्चर्य कर रहे थे।

रायसाहब के पास जो आता वह अपने स्वार्थ की ही बात करता। उसे दुनिया की बातें बतलाने से क्या लाभ ? और रायसाहब भी अपने काम से मतलब रखते थे, अतः उनके पास तक ये सारी बातें न पहुँच पाती थीं।

पुरोहित जी महाराजिन को साथ लेकर आये थे इस बात को कमला पहले जानना चाहती थी; किन्तु ठाकुर संग्रामसिंह-संबंधी बातें अधिक कुतूहलपूर्ण थीं। महाराजिन से कमला के जीवन का भी संबंध था। विशेष उत्कंठा से बोली, "हाँ, पुरोहित जी महाराजिन को लेकर आये थे, उनसे क्या बातें हुई ?"

"बातें तो बहुत हुईं, लेकिन जिस महाराजिन को साथ लाये थे, उसे कल से आने के लिए कह दिया है। तनख्वाह वही रहेगी जो पहली महाराजिन को दी जाती थी। सुबह आठ बजे आयेगी और सायंकाल सात बजे चली जायगी।"

कमला खिलखिला कर हँस पड़ी और बोली "पुरोहित जी से यही बातें हुईं ?"

नहीं-नहीं और भी बहुत-सी बातें होती रहीं। आज पुरोहित जी ने कहा कि "धनवान गरीबों को दान देकर उनकी भलाई नहीं करते; बल्कि उन्हें आलसी बना देते हैं, जिससे वे जीवन भर भीख माँगने के अलावा और किसी कार्य में सफल न हो सकें। देश का सब से बड़ा अपकार काम करने योग्य व्यक्तियों को दान देकर कामचोर बना देने में ही है।"

आवेश में आकर कमला ने कहा, "यह आप क्या कह रहे हैं ? धनवान दान देकर देश का अपकार करते हैं ? नहीं, पुरोहित जी के मुख से ऐसी बातें कभी नहीं निकल सकतीं ! फिर भी जो आदमी सैंकड़ों का दान प्रतिदिन लेता है, और उसी से अपने परिवार का भरण-पोषण करता है, वही दान को खराब बतलाकर अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारने को तैयार हो सकता है ? कभी नहीं !"

"वे प्रायः कथाओं में तरह-तरह के दानों की महिमा बतलाया करते हैं। अभी कल मैं 'दशाश्वमेध' पर कथा सुनने गई थी। पुरोहित जी सुना रहे थे—'जो व्यक्ति गर्मी के दिनों में जल-दान कर प्यासी आत्माओं को तृप्त करता है, वह संसार के संपूर्ण सुखों को भोग कर हजार वर्ष तक स्वर्गलोक में वास करता है और अवधि समाप्त होने पर पुनः इस मृत्युलोक में मनुष्य-योनि में जन्म पाकर भविष्य के लिए अपनी गति सुधारने में सफल होता है।

"मोहन की बारहवीं वर्ष गाँठ आषाढ़ पूर्णिमा को थी, उस समय भी पुरोहित जी कह रहे थे—"इस बारहवीं वर्ष गाँठ के उपलक्ष में दस विद्यार्थियों की छात्र-वृत्ति बढ़वा दीजिए। छात्रों की सहायता करने से बड़ा पुण्य होता है। शास्त्रों में कहा है - "

"कुक्षी तिष्ठति यस्यान्न विद्याभ्यासेन जीर्यति
गोत्राणि तारयेत्तस्य दशपूर्वान्दशापरान् ॥"

"विद्यार्थी-गण जिसके अन्न को खाकर विद्याध्ययन द्वारा पचाते हैं, उसके पुण्य से दस पीढ़ी पीछे की दस भविष्य की और एक स्वयं इस

तरह इक्कीस पीढ़ियाँ पापमुक्त होकर परमपद प्राप्त करती हैं। साथ ही स्वर्ग में वास करती हैं, इत्यादि, उपदेश दिया था। केवल मैं ही नहीं, और भी बहुत सी महिलाएँ थीं। घण्टों प्रवचन होता रहा। क्या धर्म-वक्ता पुरोहित जी शास्त्र के वचनों के विरुद्ध दान की निन्दा करने का दुस्साहस कर सकते हैं ?"

रायसाहब कमला की व्याख्यानबाजी पर हंस-पड़े। आज तो तुम स्वयं 'पंडित जी' बन गई हो। पुरोहित जी से तुम्हारा भाषण क्या कम है ? यह कहते हुए आलिंगन किया। कमला आनंद की लहरों में डूब गई। नारी के सामने पति-सुख से बढ़ कर संसार में और कोई सुख नहीं। वह प्रेम-विभोर हो स्वयं अपने को भूल जाती है।

: १८ :

प्रभावती ठाकुर साहब के भोजन करते समय मन-ही-मन सोच रही थी—आज मैंने ही उद्दण्डता की, यदि उस औरत के चले जाने पर मैं मौन रह जाती, तो बातें यहाँ तक न पहुँचती। पर अब क्या करूँ ? क्या सचमुच पतिदेव प्राण-दण्ड देकर ही शान्त होंगे। नहीं, मेरी धृष्ठता पर यों ही कह दिया है। पुरुष अपनी जीवन-संगिनी के साथ इतना कठोर व्यवहार कर इस संसार से सदा के लिए विदा करने का साहस नहीं कर सकता। प्रथम-मिलन में ठाकुरसाहब ने कहा था। "संसार की संपूर्ण वस्तुओं का त्याग करके तुम्हारे साथ बन में रहने को तैयार हूँ।" गुस्से में आकर बक जाना स्वाभाविक है। खाली गिलास में पानी उड़ेलते हुए कहा :

"और क्या लाऊँ ?"

ठाकुरसाहब की चढ़ी भौहें क्षण मात्र के लिए प्रभावती की ओर झुकीं। फिर गिलास उठाया, पानी पिया और हाथ धोकर तौलिए से पोंछते हुए आराम-कुर्सी पर लेट गये।

ठाकुरसाहब की मनोव्यथा में प्रभावती ठिठकी खड़ी कुछ सोच रही

थी। वातावरण बिल्कुल शान्त था। द्वार के समीप घोर वर्षा के झोंकों से प्रभावती भीगती हुई स्वामी की प्रसन्नता के लिए अपनी 'कर्मसाधना' में तन्मय आँसू बहा रही थी। जिसके आत्मानन्द के लिए लोक-लज्जा त्याग कर अपने आपको समर्पण किया था, उसे दुखी देखना वह अपराध समझती थी।

ठाकुरसाहब आरामकुर्सी पर लेटे सोच रहे थे—ओह, नारी-जीवन कितना पतित होता है। वह जिसे प्रेम-दान करती है, उसी से घृणा। सहसा वर्तमान सुप्रसिद्ध कवि श्री विन्ध्येश जी की 'नारी-रूप' कविता का स्मरण हो आया—

है उत्थान-पतन का कारण,
नारी का सुन्दर-तम यौवन।
प्रतिक्षण ही जो रूप बदलता,
विष-मधु जिसमें प्रतिक्षण ढलता।
और पिला कर किंचित मधु जो,
ताड़ित करती बहु नर को।

किन्तु,

नारी है उन्नति की श्रेणी,
विश्व क्षितिज में ऊषा-सी।
बरसाती है मधु नव-अमृत,
प्रेमासक्त मिलिन्द-वृन्द नर!
जिससे रहते हैं शुभ रक्षित,
विश्व-जननि, लय कारिणि।
पालनि त्रिविध स्वरूप,
जगत में नारी रूप त्रिवेणी।

यह कविता स्थानीय कवि-सम्मेलन में गंगा-दशहरा के अवसर पर "संकटमोचन" में सुनाई गई थी। ठाकुरसाहब ने बड़े चाव से सुना था और कवि महोदय को पुरस्कृत भी किया था। ठाकुर-

साहब रईस होने के साथ ही कवि-सम्मेलनों में सम्मिलित होने के बड़े शौकीन थे। अपने पद का ख्याल न कर कविता सुनने के लिए साधारण जगह भी पहुँच जाते थे। कोरे श्रोता ही न थे, बल्कि कुशल कलाकारों का सम्मान भी करना जानते थे। बड़े-बड़े साहित्यिक उनकी उदार प्रकृति से परिचित थे। दूर-दूर से कवि-सम्मेलनों के लिए निमंत्रण भी आते थे। देवी सरस्वती के भक्तों को प्रोत्साहन देने में सदा आगे रहते थे। इस समय बार-बार नारी के वीभत्स रूप को देख रहे थे। उन्हें नारी का मोहनी रूप भूल गया था।

प्रभावती तश्तरी में पान लेकर सामने उपस्थित हुई, किन्तु कुछ बोल न सकी। ठाकुर साहब ने पुनः कड़ी निगाहों से देखा। वह रुकी, शरीर काबू से बाहर हो गया और तश्तरी हाथ से छूटकर भूमि पर जा गिरी।

ठाकुरसाहब का शरीर क्रोध से काँप उठा। गरज कर बोले :
"हट जा सामने से।"

प्रभावती एक क्षण में फिर साहस कर बोली, "आज्ञा मानने के लिए मैं तैयार हूँ, किन्तु अपना अपराध जानना चाहती हूँ।"

ठाकुरसाहब ने सिर से पैर तक देखा और सिर हिलाते हुए कहा, "हूँ, तो तुम अपराध जानना चाहती हो, अभी यह भी मुझे बताना पड़ेगा ?"

अवश्य, मेरी धृष्टता क्षमा कीजिएगा। अपराधी को अपराध बताने पर ही दण्ड मिलता है। "बिना अपराध बताए दण्ड देना भी एक अपराध है।"

"मैं समझता हूँ हिन्दू कोडबिल के समर्थकों में सर्वप्रथम तुम्हीं हो। किन्तु जब तक मेरे अधिकारों में तुम..."

"सब कह डालिए। हृदय में विकार क्यों रह जाय। पर मैं अपना अपराध तभी मानूंगी जब आप उसका निर्देश करेंगे।"

"टाँय-टाँय मत करो। एक बार मैंने कह दिया, पति-अवज्ञा ही नारी

का सब से बड़ा अपराध है।"

प्रभावती कुछ क्षण मौन रही, फिर बोली। "लेकिन मैंने कौनसी अवज्ञा की ? उस ब्राह्मणी के सम्बंध में जो बातें हुईं उनमें भी मैंने प्रार्थना ही की थी। अनुचित पथ से उचित की ओर ले जाना भी तो अर्द्धांगिनी का कर्त्तव्य होता है। फिर भी मेरे मुख से जो अनुचित शब्द निकल गये हों उनके लिए पहिले ही क्षमा प्रार्थना कर चुकी हूँ और अब भी निवेदन करती हूँ। किंतु दूसरों के अपराध का दण्ड भोगने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ। फिर इसमें मेरा क्या अपराध ?"

ठाकुर साहब ने कहा—"अपराध का ज्ञान-दण्ड भोगने पर ही होता है। यदि दण्ड मिलने के पहले अपराध का ज्ञान हो जाय तो संसार निरपराधी हो सकता है।"

प्रथम बार की क्षमा-याचना में प्रभावती सोच रही थी—अपने पतिदेव से बिना अपराध भी क्षमा माँग लेना कोई अनुचित नहीं है। उनकी प्रसन्नता के लिए मैंने स्वयं अपराधिनी बन क्षमा-याचना भी की थी, किंतु परिणाम उलटा ही निकला। सम्भवतः यदि मैं क्षमा-याचना न करती तो यह दशा न होती। वस्तुतः मानव कर्तव्य-च्युत होने पर विवेकहीन हो जाता है। उसे कोई कार्य अच्छा नहीं दिखाई देता। चारों ओर द्वेष का साम्राज्य छा जाता है।

मानव-जीवन कितना स्वार्थी है ? अपने स्वार्थ के सामने माता-पिता, भाई, बहन, स्त्री, पुरुष तथा इष्ट-मित्र सभी भूल जाते हैं, और यहाँ तक कि अपना कर्तव्य-पथ छोड़कर स्वयं पतित हो जाता है। मैं ही निरपराध दण्ड भोगने के लिए क्यों तैयार होऊँ ? एक शिक्षित महिला का यह कर्तव्य नहीं है। मेरा धर्म उनकी चरण-सेवा ही है।

पर ठाकुरसाहब मेरी सेवा कहीं अस्वीकार न कर दें। मैंने उन्हें अपने जीवन में इतना अधिक नाराज कभी नहीं देखा था। सदा प्रसन्न-चित्त रहते थे। दुश्चरित्रता का रत्ती मात्र किसी को संदेह नहीं होता था, किंतु एक अनाथ विधवा ब्राह्मणी पर अन्याय करने को तुले—घोर

पाप। संसार में इस पाप से मुक्त होने के लिए कोई तीर्थ नहीं है। इस पाप-भार को सहन करने का साहस किसी पुण्य स्थान को नहीं है। भगवान्! इसके अभियोग में मेरा यह अपमान! महान अन्याय। पति कितना ही अप्रसन्न क्यों न हो, पत्नी के पत्नीत्व को अस्वीकार नहीं कर सकता।

प्रभावती आगे बढ़ी, आराम कुर्सी के बगल में बैठकर पैर दबाना चाहती थी, किंतु ठाकुरसाहब ने डाँटकर कहा, "मुझे छूना मत, मैं तुम्हें एक क्षण भी नहीं देखना चाहता। इस पर भी प्रभावती को पूर्ण विश्वास न हो सका। आखिर चरण-स्पर्श कर ही दिया। ठाकुर साहब प्रभावती की इस धृष्ठता को बरदाश्त न कर सके। उन्होंने पैरों से ठोकर मारकर उसे अलग कर दिया। प्रभावती लड़खड़ा कर भूमि पर जा गिरी।

प्रभावती को अपने जीवन में प्रथम आघात पहुँचा। पिता जी के यहाँ उसने राजसी जीवन व्यतीत किया था। विधाता के घर से सुख साम्राज्य लेकर आई थी, पति के घर में भी किसी वस्तु की कमी न थी। आनन्द से जीवन बीत रहा था, किन्तु होनी होकर रही।

ठाकुर साहब ने आवेश में आकर प्रभावती को ठुकराने में थोड़ा भी संकोच नहीं किया, पर अब पश्चाताप कर रहे थे। प्रभावती की सहनशीलता पर ही मुग्ध होकर प्रेम-संबंध स्थापित किया था और उसी को लेकर आज यह भीषण काण्ड। लोग जानने पर क्या कहेंगे! दाँतों तले अँगुली दबा कर सोच रहे थे।

प्रभावती बहुत देर तक स्तब्ध रही। ठाकुरसाहब ने सोचा—उठा कर बैठालूँ, पर जिसे महज छूने की वजह से ठुकरा दिया, फिर उसीका स्वयं स्पर्श कर अपनी भूल स्वीकार करूँ। आगे न बढ़ सके, बल्कि कक्ष से बाहर होने के लिए आदेश दिया।

प्रभावती थोड़ी हिली और उसने लम्बी साँसे लेते हुए आँखें खोलीं। रोते हुए उठने का प्रयत्न कर सफल हुई। ठाकुरसाहब से कुछ कहना चाहती थी—शायद, "अब प्रायश्चित् पूरा हो गया" किन्तु ठाकुरसाहब

प्रभावती की बेहोशी में चिन्तित हो गये।

लेकिन प्रभावती को इस संसार का दुःख सहने के लिए अभी जीना था। कुर्सी पकड़कर धीरे से उठ खड़ी हुई और भीगे नयनों से आँचल का कोना गीला कर अंदर चली गई। अपने दालान में टहलते ठाकुरसाहब को देखा। मन ही मन कहा, "अब मैं अन्तिम बार चरण की सेवा कर अपने आदेश पालन के लिए प्रस्तुत हो रही हूँ, आशा है आदेश-पालन में आपको प्रसन्नता होगी।"

ठाकुरसाहब ने भी प्रभावती को अन्दर जाते देखा था, उसके लिए एक शब्द कहना भी अनुचित समझा। प्रभावती कक्ष से निकलकर आँखों के ओझल होगई और ठाकुर साहब लम्बे कोंच पर शयन करने के लिए बैठक में चले गये।

: १९ :

कमला ने हँसकर कहा, "मैंने आपसे पुरोहित जी की बातें पूछीं, और स्वयं नेता बनकर भाषण देने लगी।"

रायसाहब ने कहा, "क्या हर्ज है? आज-कल औरतों के भाषण का अधिक प्रभाव पड़ता है। प्रचार-कार्य के लिए चुनाव के समय तुम्हें काफी रुपये मिल सकते हैं। किसी स्थान से तुम भी खड़ी हो जाना। यदि विजय होगई तो फिर क्या कहना? "हजारों आदमी हाथ जोड़े खड़े रहेंगे।

कमला बनती हुई बोली चलिए, यह सब मुझे नहीं चाहिए। मैं घर में ही रह कर आपकी सेवा करना चाहती हूँ।

कुछ देर पहले ही रायसाहब सो जाना चाहते थे, पर बेहद गर्मी के कारण नींद नहीं आ रही थी। तेजी से पंखा चल रहा था फिर भी देह पसीने से तर थी। चारों ओर से घिरकर बादल वर्षा करने को तुले। क्षण में ही पानी-पानी हो गया। प्रचंड वायु के प्रकोप से झरोखों द्वारा कक्ष के अंदर पानी आने लगा। कमला उठकर खिड़कियों को

बंद कर शय्या पर बैठती हुई बोली :

"महाराजिन के संबंध में पुरोहित जी क्या बतला रहे थे ? उनकी जान पहचान की है ?"

माथा सिकोड़ कर रायसाहब ने कहा, "हाँ, जान पहचान की ही होगी, तभी तो साथ लेकर आये थे। उन्होंने उसकी बड़ी प्रशंसा की। कार्य-कुशलता, ईमानदारी तथा पाक-शास्त्र की निपुणता आदि सभी गुण बतलाये। 'हाँ, चलते समय एक सेर आटा माँगा, वह भी कर्ज। बड़ी चालक मालूम होती है।'

"चालाक क्या ? बड़ी धृष्ट। बड़े आदमियों से छोटी वस्तु माँगना कम अशिष्टता है ? क्या अड़ोस-पड़ोस में एक सेर आटे का उसपर एतबार नहीं था, जो नगर के सुप्रसिद्ध सम्मानित रायसाहब से माँगने का साहस किया। साथ ही इतनी सहायता तो दो एक दिन पुरोहित जी भी कर सकते थे। आज ही नौकरी करने की बातें तय हुईं, और माँगना शुरू कर दिया। यह नहीं सोचा कि इसका क्या असर होगा। इस तरह की औरत से काम पूरा न पड़ेगा। पेट भरने का और कोई साधन नहीं था तो सदावर्त ले लेती।"

"नहीं-नहीं, वह सदावर्त्त नहीं ले सकती थी। इसीलिए कर्ज माँगा है। पुरोहित जी ने कहा था, "सुबह से बच्चे भूखे हैं, इसलिए आटा माँगने के लिए बाध्य हुई। दान की रोटी से अपने बच्चों का पालन-पोषण वह महान् अनुचित समझती है।"

"अच्छा, जब अभी लाले पड़े हैं तो कर्ज कैसे पटायेगी ?"

राय साहब ने कहा—"यहाँ से जो तनख्वाह पायेगी उसी से पटा देगी।"

"लेकिन और भी तो लिया होगा। यदि सम्पूर्ण तनख्वाह कर्ज पटाने में ही लगा देगी, तो अपने बच्चों को क्या खिलायेगी ? जरा आपने अन्दर भेज दिया होता तो मैं एक-एक कर सब बातें पूछ लेती। स्त्री की अच्छाई-बुराई को पुरुष नहीं पहचान सकते। वह उसके

सौन्दर्य के मूल्यांकन में अन्य निर्णय करना भूल जाते हैं ।"

हँसते हुए रायसाहब ने कहा, "ऐसी बात तो नहीं है, पुरुष स्त्री को अच्छी तरह पहचानता है ।"

कमला खिलखिला कर हँस पड़ी, "हाँ-हाँ, पुरुष; स्त्री को अच्छी तरह पहचानता है, लेकिन उसकी अच्छाई-बुराई को नहीं ।" रायसाहब और कमला दोनों हँस पड़े । कमला ने आगे कहा, "आपको किसी औरत को नौकर रखने का क्या अधिकार ? कुछ कामों के लिए मैं भी तो अधिकारणी हूँ ।"

रायसाहब मुस्करा कर बोले अवश्य ! नारी के अधिकारों में पुरुष को दखल देने का कोई अधिकार नहीं है इसे मैं मानता हूँ; किन्तु पुरोहित जी से बातें होने में अन्दर भेजने का ध्यान न रहा, और कोई बात न थी ।"

"मैं अच्छी तरह समझती हूँ, महाराजिन जरा ढंग की रही होगी, फिर · · ·" मुस्करा कर मौन होगई कमला ।

भौंह चढ़ाते हुए रायसाहब ने कहा, "स्त्रियों में यही बातें तो खराब होती हैं, तुरन्त संदेह करने लगती हैं । वे पुरुष पर इतना कड़ा प्रतिबन्ध चाहती हैं कि वह दूसरी स्त्री से बात तक न करे, जो अस्वाभाविक है । बेचारी ब्राह्मणी अपने बाल-बच्चों के पालन-पोषण के लिए जीविका ढूँढ़ने आई और देवी जी उसे अप्सरा समझ कर उस पर संदेह कर रही हैं ।"

कमला आवेश में आकर बोली, "पुरुष तो इससे भी बढ़कर हैं । यदि नारी पुरुष को दूसरी स्त्री से बातचीत करने में प्रतिबन्ध चाहती है, तो पुरुष, स्त्री के आँगन से बाहर होने में भी बाधक हैं । वह क्या कम है ?"

रायसाहब गुस्से में होकर बोले, "हाँ-हाँ, कोई कसर न रहे । आजकल नारी-समाज में पुरुषों से विवाद करने की शिष्टता चल पड़ी है । उससे तुम्हीं वंचित क्यों रहो ?"

झुंझलाकर कमला ने कहा, "आखिर मैंने कहा ही क्या है ?"

"अब और क्या कहना चाहती हो? किसी को चरित्रहीन बताना क्या कम है ? इतना अधिक नैतिक पतन हो जाने से संसार अशान्ति का केन्द्र बन जायगा; सामाजिक नियमों की हत्या तो होगी ही। संसार का कोई प्राणी जब तक अपने को पहचानता है, गलत रास्ते पर चलने का साहस नहीं कर सकता; किन्तु भूल जाने पर उसे कोई शक्ति पथ-विचलित होने से रोक भी नहीं सकती। मैं इतना पतित नहीं हूँ, अपने को पहचानता हूँ और अपना कर्तव्य भी समझता हूँ।"

कमला बोली, "आप बेकार ही नाराज होकर राई का पर्वत बना रहे हैं। मैंने आपके लिए नहीं कहा था, बल्कि समाज की वर्तमान परिस्थितियों की ओर इंगित किया था। आप स्वयं सोचें, इस युग में आदर्श जीवन केवल पुस्तकों के पन्ने रंगने के लिए ही रह गया है, व्यक्ति के व्यवहार में नहीं। दिनोंदिन समाज की दशा बिगड़ती जा रही है, कोई भी प्राणी नियम-बद्ध नहीं होना चाहता; सभी स्वच्छन्द हो अपना अव्यवस्थित जीवन व्यतीत करना अधिक उपयोगी समझते हैं। आज समाज का कितना पतन है, संभवतः कभी न रहा होगा। स्त्री-पुरुष अपनी श्रृङ्खलाओं को तोड़, घोर पाप करने में थोड़ा भी संकोच नहीं करते। क्या इसे आप कम नैतिक पतन समझते हैं ? मैं तो समझती हूँ कि यह नैतिक पतन की चरमावस्था है। विचार करने पर आप भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे।"

रायसाहब कमला की बातें सुनते हुए सोच रहे थे, आज कमला को क्या हो गया है ? कोई नशा तो नहीं खाया। इस तरह की बातें तो पहले कभी नहीं की। भाषण देने पर उतारू है। पहले पुरोहित जी के सम्बन्ध से दान-महिमा पर बोल रही थी; अब सामाजिक परिस्थिति पर; किस धुन में पागल होगई है। मुझे दो-चार खरी-खोटी बातें भी सुनाईं। यह दुस्साहस कैसे बढ़ा ? नारी जब विद्रोह करने के लिए तैयार हो जाती है तो किन्हीं सामाजिक नियमों एवं पति के आदेशों की परवाह नहीं करती। राक्षसी-वृत्ति अपनाकर अनर्थ करने में सफल होती है।

नारियों के प्रति गोस्वामी तुसलीदास के बचन नहीं भुलाये जा सकते ।

"नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं । अवगुन आठ सदा उन रहहीं ।

साहस, अनृत, चपलता, माया । भय, अविवेक, अशौच, अदाया ।।"

अतः नारी की स्वतंत्रता समाज के लिए अभिशाप है, "जिमि स्वतंत्र होई बिगरहिं नारी जो स्त्री पति के संरक्षण में रहकर गृह-लक्ष्मी बनती है, वही स्वतंत्र होने पर समाज के पतन का कारण बनती है। घर बसाना और बिगाड़ना दोनों ही उनके बायें हाथ के खेल हैं, लेकिन, पुरुषों का भी तो कुछ कर्तव्य होता है। डाँट कर बोले :

"क्या घंटे भर से बकवास कर रही हो ?"

कमला थोड़ा सहमकर बोली, "बकवास तो नहीं कर रही हूँ। अभी आपही ने कहा था—'जिस सम्बन्ध में बातें शुरू हों उनका पूर्ण परिचय दिये बिना समझने में असुविधा होती है । आज्ञा का पालन कर रही हूँ ।"

क्रोध में आकर रायसाहब ने कहा, "चलीं बड़ी आज्ञा पालन करने वाली । एक बज रहा है, सोना हराम कर दिया ।"

स्त्रियाँ भी कोप करने में कब पीछे रह सकती हैं ? उन्हें बदलते देरी नहीं लगती । बोली, "हाँ, अब तो आपको देरी हो रही है। दस बजे तक व्यापारियों को बैठाये गप्प मारते हैं, तब देरी नहीं होती; एक घंटा यहाँ बातें करना कठिन हो जाता है। मुझे आये पन्द्रह वर्ष हो गये—एक दिन भी सीधे बात न की होगी । न जाने और स्त्री-पुरुष कैसे होते हैं, जीवन आनन्द से बिता लेते हैं; मनमुटाव तक नहीं होता···"और कमला की आँखें सजल हो आईं ।

शय्या से उठकर रायसाहब कक्ष में टहलते हुए सोच रहे थे, "वस्तुतः आज इसका दिमाग खराब हो गया है । बार-बार मना करने पर भी वही उद्दंडता । दिन भर तरह-तरह के व्यापारियों से माथापच्ची करते थक जाता हूँ, और यहाँ भी वही बकवास । एक ओर श्रीमती जी बिगड़ खड़ी होती हैं, दूसरी ओर दूकान का काम हो जाता है—किसी में गुजर नहीं ।

इस दुनिया के छोटे-बड़े सभी दुःख के ही पंजे में फँस कर कर्मभोग से छुटकारा नहीं पाते। यदि जीवन में किंचित सुख हुआ भी तो उसका दूना दुःख, लेकिन सुख-दुःख क्या एक दूसरे से भिन्न हैं ? नहीं, भ्रम है। दोनों एक ही शक्ति के अंग हैं। जिसने सुख को बनाया है, उसी ने दुःख को भी। जो सुख भोगता है, वही दुःख। भोगने के लिए अलग-अलग प्राणियों का सृजन नहीं होता, दोनों के एक ही ग्राहक हैं। इनके बँटवारे में स्वयं विधाता भी सफल न हो सके—'अपने कर्तव्य के अनुसार लोग खरीदते हैं। हमीं स्वयं सुख-दुःख के निर्माता हैं, केवल कल्पना से ही सुख-दुःख का अनुभव करते हैं; वस्तुतः आज तक किसी ने सुख-दुःख के स्वरूप को नहीं देखा—फिर इनके लिए क्या चिंताएँ ?'

वेदान्त इन्हीं अंधकारों को दूर करने के लिए ज्ञान-ज्योति दिखाकर निमंत्रण दे रहा है, पर माया-प्रपंच से कोई प्रवेश करने का साहस ही नहीं कर सकता। पुरोहित जी से प्रतिदिन एक घंटा विवाद होता है, किन्तु कोई लाभ नहीं।

यकायक रायसाहब की दृष्टि कमला पर पड़ी; वह रो रही थी। रायसाहब ने चौंककर कहा, "अरे! यह क्या ? अभी नेता बन कर भाषण दे रही थीं और अब·········"

कमला ने अंचल के एक कोने से आँखों को पोंछकर भिगो लिया और चुप बैठी रही। रायसाहब ने सोचा, 'आखिर यह रोई क्यों ? मैंने तो कुछ कहा नहीं, बल्कि उलटे इसीने डाटा था। बकवास बंद करने के लिए कहने पर रो देगी, कौन जाने ? नारियों की माया बड़ी विचित्र होती है। पास खड़े होते हुए बोले, "क्यों रो रही हो ?" कमला पत्थर की मूर्ति सी मौन थी। क्रोध में आकर, रायसाहब बोले "आखिर कुछ बताओगी भी ?"

कमला खड़ी हुई कुछ कहना चाहती थी, पर कंठ रुँध गया। उसे मौन रह जाना पड़ा। रायसाहब ने कहा, "मैं खुशी मन से पूछ रहा हूँ, साफ़-साफ़ बता दो।"

कमला का धैर्य बँधा। वह बोली, "मैं अपनी धृष्टता के लिए क्षमा चाहती हूँ।" वह चरणों पर गिरना चाहती थी। रायसाहब ने कमला की बाहुओं को पकड़कर हृदय से लगा लिया और कहा—"मैं नाराज होकर बाहर तो जा नहीं रहा था, इतना क्यों घबरागईं ?" आँखें चार हुईं और प्रेम-रस पान के लिए अधीर होंठ फड़क उठे।

: २० :

शान्ति जिस समय बुलानाला पर पहुँची, सड़क पर सन्नाटा छाया हुआ था। रिक्शा, ताँगों पर आने-जानेवालों के अलावा कोई नहीं मिलता था। कहीं-कहीं गश्ती सिपाही मिलते थे, पर बच्चे का पता पूछने पर अनसुनी कर देते थे। कोई बहुत ही सज्जन हुआ तो कोतवाली में इत्तला करने की सलाह प्रदान दे बढ़ जाता था। घण्टों परेशानी उठाने पर भी आशा नहीं दिखाई दे रही थी, फिर भी वह अपने कर्तव्य-पथ की ओर साहसपूर्वक बढ़ती जा रही थी।

सिपाहियों के प्रति सोच रही थी—यह कैसे निर्दयी होते हैं। जरा भी तरस नहीं आता। रक्षक के स्थान में होने के कारण दुखियों को इनसे मिलना पड़ता है, किन्तु इनका कर्तव्य, रक्षक के नाम पर पूर्ण भक्षक का होता है। पुलिस का नाम सुनते ही प्रत्येक प्राणी का हृदय काँप उठता है।

बिरला-घंटाघर से चार बार टंन-टंन की आवाज हुई, शान्ति का ध्यान समय की ओर गया। उसने सोचा—ओह ! चार बज गये और अभी तक कुछ ही मुहल्ले में घूम पाई। निराशा से पैर आगे नहीं बढ़ते थे, पर अपनी कर्मशीलता के बल पर वह चल रही थी।

मार्ग में गंगा-स्नान करने वाले भक्तगण मिलने लगे। 'हर-हर महादेव' की ध्वनि से वे अपने आने का संकेत कर रहे थे। कोई 'राधेश्याम' कहता कोई 'सीताराम' कहता, आपस में आमोद-प्रमोद के लिए "कृष्ण को 'माखन चोर' राम को 'जूठन खानेवाला' कह कर एक दूसरे को

चिढ़ाने का प्रयत्न कर रहे थे। यहाँ तक कि छोटे बच्चों को मारने के लिए दौड़ पड़ते थे। "भाग ही तो गए, नहीं माखन चोर को मजा चखाता।" सुनने वाले ठठाकर हँसते और आनन्दित होते थे। किन्तु शान्ति अपने श्याम की तलाश में सब भूली हुई थी।

गिरीश और श्याम के स्कूल से लौटने का दृश्य सामने था। भूख से श्याम के रोने पर गिरीश ने कहा था, अभी चलो, हम लोग नाग ले आवें और खेलें, शाम को खाना खायेंगे।" किन्तु शाम को मुझे लौटने भी न दिया। इसके पहले ही छोड़कर श्याम चल दिया। हाय लाल, तू भी मुझ अभागिनी से अलग हो गया ! मैं कहाँ जाऊँ? क्या करूँ ? रोती, गिरती, पड़ती वह आगे बढ़ रही थी। जिस किसी से पूछती, वह सहानुभूति प्रकट कर मौन रह जाता। शान्ति ग्लानि के भार से दबती जा रही थी—उबरना उसकी शक्ति के परे था।

भक्त-गणों के आनन्द में शान्ति का करुण-क्रन्दन बाधक हो जाता था। इस सुनहली ऊषा में अमंगल-शब्द कैसे ? अचंभित हो लोग शान्ति के समीप पहुंच जाते और बच्चा खोया जान कर स्वयं को भी उस अमंगलमयी भावना से न बचा पाते। इस संसार में आकर जिसने वात्सल्य-रस का रसास्वादन किया है, वही इसका अनुभव कर सकता है। एक मिट्टी के पुतले के खो जाने पर महान् दुःख होता है, जो केवल मनोरंजन के लिए बनाया जाता है, तो मांस-पिण्ड से बना हुआ, जिसकी असह्य कष्ट सहकर सेवा की है, ऐसे जीव-धारी के प्रति दुःखी होना जीव के लिए स्वाभाविक ही है।

इस संसार की यातनाएँ भोगने के बाद ही सुख, दुःख, ऊँच-नीच एवं भले-बुरे का ज्ञान होता है। अन्यथा स्वार्थमय जीवन अपने सुख के लिए दाँव-पेंच में भूला, फूला नहीं समाता। उसके सामने संसार के सारे कष्ट नगण्य हैं, किन्तु शान्ति के समक्ष ये सारी बातें नहीं हैं। उसने यातनाएँ भोगने के पहले ही संसारी कष्टों का अनुमान लगा लिया था। पंडित जी ने उसे उपदेश देकर संसारी माया से परिचित करा दिया था।

पर उनके पीछे सारा ज्ञान न जाने कहाँ खो गया और वह अपने को भी न सँभाल सकीं।

अब पाँच बजने में कुछ ही क्षण शेष थे। गोपाल-मन्दिर की पूजा-आरती आरम्भ हो गई थी। छोटे बच्चे जाकर अपनी माँ को पुकारते सुनाई पड़ते थे। शान्ति का हृदय जल उठता था, उसे भी श्याम कहीं माँ, कहकर पुकारता होगा। शान्ति ने सोचा—सवेरा हो गया है, शायद मेरा श्याम घर पहुँच गया हो, किंचित् पुलकित हो घर की ओर लौट पड़ी।

× × ×

श्याम सायंकाल से माँ को खोजने के लिए भटक रहा था। इतनी घनघोर वर्षा हुई, सब उसके ऊपर ही। अपनी माँ को ढूँढ़ने के लिए भक्त प्रह्लाद के समान सम्पूर्ण भय त्याग कर लग गया। वह रात्रि के अन्धकार में किसी तरह भटकता हुआ ठाकुर साहब के उपवन में जा पहुँचा और भूखा-प्यासा एक पेड़ के नीचे पत्थर पर सो गया।

× × ×

शान्ति घर की ओर जाते हुए सोच रही थी—यदि श्याम घर में आ गया होगा, तो नाइन उसका सत्कार करने में न चूकी होगी। कुछ खाने का भी प्रबन्ध कर दिया होगा; एक वही मेरे लिए सहारा है। और मुहल्ले के लोग मुझसे यों ही चिढ़ते हैं। एक दिन कहा भी था—बेटी, चिन्ता न करो सब ईश्वर गुज़र करता है। पन्द्रह रुपये महीने हमको मिलते हैं, इसी में तुम भी कुछ ले लिया करो, दिन काटना है। भगवान् बच्चों को आनन्दित रखेगा, एक दिन ये स्वयं दूसरों की मदद करेंगे। बड़ी ही भली है, एक तो इस मँहगी में पाती ही बहुत कम है, फिर भी सहायता करने के लिए रहती तैयार है।

सचमुच नाइन बड़ी उदार थी। धनवान होने पर तो सभी उदार हो सकते हैं, किन्तु गरीबी में कोई नहीं। गरीबी में भी जो उदारता का परिचय देता है। वही वस्तुतः बड़ा है।

शान्ति के जाने के बाद गिरीश को भूखा जानकर नाइन ने खाना खिलाया। गिरीश बहुत रात तक माँ के लौटने की राह देखता रहा, फिर यकायक सो गया और पाँच बजे जागा। जागते ही माँ को पूछकर रोने लगा। नाइन ने दौड़कर गले लगा लिया।

शान्ति ने नाइन को द्वार पर खड़ी देख कर सोचा—श्याम अवश्य आ गया है, इसीलिए जल्दी बतलाने की उत्सुकता में द्वार पर खड़ी है।"

शान्ति के बोलने से पहले ही नाइन श्याम को साथ में न देखकर बोली "कुछ पता नहीं चला !" शान्ति की आशाओं में पानी फिर गया, कलेजे में पुन: शूल की पीड़ा होने लगी। रो-रो कर माथा पीटने लगी। नाइन हाथ पकड़कर समझाने लगी।

माँ को इस हालत में देखकर गिरीश बहुत घबराया हुआ था, श्याम को लाने में असमर्थ था। पर उसे विश्वास था कि श्याम अवश्य मिलेगा और वह दोनों एक साथ खेल-कूदकर आनन्द करेंगे, माँ देखकर प्रसन्न होगी। वह बोला, "माँ घबराओ मत, श्याम का मैं पता लगाऊँगा, वह अवश्य खुश होगा।" शान्ति ने गिरीश को हृदय से लगा लिया और बोली, "बेटे तू·········।"

: २१ :

प्रभावती शयन-कक्ष में पहुँचकर सोच रही थी—मुझे पतिदेव के आदेश का पालन कर इस संसार के बन्धनों से मुक्त हो उन्हें प्रसन्न कर देना चाहिए। मैंने सब तरह से कहा; पर उन्होंने एक न सुनी और अन्तिम क्षण भी कठोरता का ही परिचय दिया। अब मैं किस मुँह से सामने जा सकती हूँ।

जीवन खोकर पति के आदेश का पालन करने में ही मेरा हित है, क्योंकि पति-प्रेम के बिना स्त्री-जीवन निरर्थक है। ऐसे जीने से क्या लाभ ? संसार में अपकीर्ति ही होगी। जब मैंने अपना प्रेम-संबंध स्थापित करने के लिए सामाजिक क्रान्ति कर नवीन-पथ का अनुसरण

किया था, तो आज पति के सुख के लिए बलिदान होने पर समाज का कोई व्यक्ति मुझे बुरा क्यों कहेगा? किन्तु यह बलिदान नहीं आत्महत्या है।

आत्महत्या करनेवाले को न स्वयं शान्ति मिलती है और न दूसरों को ही। फिर आत्महत्या ग्लानि से होती है, उत्साह से नहीं। बलिदान और आत्महत्या में यही भेद है। मैं ग्लानि से इस संसार की यात्रा समाप्त नहीं करना चाहती। मैं पतिदेव के आदेश से अपना कर्तव्य पालन करना चाहती हूँ। मैं अपने पति के लिए ही कर्तव्य-वेदी पर बलिदान होने जा रही हूँ। इससे मुझे और उन्हें दोनों को शान्ति मिलेगी।

प्रभावती दृढ़-प्रतिज्ञ हो इस भावना को शीघ्र कार्य-रूप में परिणत करना चाहती थी, पर साधन सुलभ न था। चिन्ता से व्याकुल हो उठी। प्रातः काल हो गया था, सूर्य की सुनहली किरणें शीघ्र ही फैल कर लोक-रंजन करनेवाली थीं। पक्षी कलरव करने लगे। नवीन आशाओं को लेकर प्रत्येक प्राणी काम में जुटने लगा। क्षण भर में ही संसार की गति बदल गई। घर के नौकर-चाकर अपने-अपने कार्य में लगने वाले थे। इधर-उधर देखा, पर कोई वस्तु सामने न आई। अन्दर प्रवेश कर तेज अस्त्र ढूंढ रही थी—अलमारी खोली, छोटा-सा एक तेज चाकू मिला, प्रसन्न होगई।

फिर जम्पर के बटन खोलकर दाँये हाथ में चाकू लिया और बायें हाथ से कपड़ा लगाकर उसकी धार साफ की। फिर चलाने को उद्यत हो चाकू की ओर देखती हुई बोली :

'आज बड़े भाग्य से मेरी सहायता करने के लिए तुम मिले हो, पूर्ण सहयोग करना, बोलो, करोगे? क्यों नहीं बोलते? अभी बता दो, धोखा तो न दोगे? छलछला कर आँखों से जल-धार बह चली। अपने ही नेत्रों से बोली—अरे! सब से पहले तुम्हीं असहयोग कर

बैठे ! नहीं, ऐसा नहीं। मैं प्रार्थना करती हूँ कि तुम साहस मत छोड़ो, मेरा सब काम बिगड़ जायगा।"

प्रभावती को ऐसा ज्ञात होता था जैसे नेत्र समझा रहे हों—अब तुम अवज्ञा के अपराध में मृत्यु-दण्ड भोगने क्यों जा रही हो। ठाकुर साहब ने तुम्हें दण्ड देकर अपराध से मुक्त कर दिया है। यह भूल कर रही हो।

नेत्र स्तब्ध हो, अपनी जलधारा रोककर शांत हो गये और अपने सहयोग का पूर्ण विश्वास दिलाकर आगे बढ़ने का संकेत किया।

प्रभावती का ध्यान चाकू पर से नहीं हटा था, वह उसकी कालिमा पर सोच रही थी। यदि बीच में अपने स्वरूप का परिचय दिया तो मैं कहीं की भी न रहूँगी। बड़ी बदनामी होगी, अपने पतिदेव को सुखी भी न बना सकूंगी।

चाकू को समझा रही थी—बड़े-से-बड़े कार्य अपने सहयोगियों की सहायता से सफल बनाए जा सकते हैं। इस लोक की बात तो छोड़िए, साक्षात् ईश्वर को भी जन-शक्ति के द्वारा अपनी नीति बदलनी पड़ती है, किंतु चाकू के सहयोग से सफल होने में बाधा देख उसे वहीं रख दिया और वह भगवान् का स्मरण करने लगी :

भगवान् ! आपने दुर्योधन की सभा में द्रौपदी की जाती हुई लज्जा को चीर बढ़ाकर बचाया था। क्या मेरी कर्तव्य-पालन में सहायता न करोगे ? वह तो दयालु हैं उनके लिए यह कठोरता सोचना नादानी है। उनसे छोटा बड़ा जो कोई सहायता चाहता है वह सभी को देते हैं।"

बगीचे के एकांत कुएँ का ध्यान आया, लेकिन बागवान तो उठ गया होगा ? चार बज चुके हैं, सहसा स्मरण आया—कल अपने घर गया था अभी दो दिन नहीं आयेगा। वहीं विश्राम मिलेगा।

घर में सभी सो रहे थे। सन्नाटा छाया था, पक्षियों का कलरव सुनाई पड़ता था। प्रभावती ने सोचा—सुबह सुनते ही ठाकुर साहब अपनी

आज्ञा के पालन पर खुश हो उठेंगे। वह बगीचे की ओर चल पड़ी। अन्तिम बार पति-दर्शन के लिए बैठक में धीरे से गई, ठाकुर साहब लंबे कोंच पर पड़े थे। दूर ही से प्रणाम कर सीढ़ी से नीचे उतरने लगी।

× × × ×

ठाकुर साहब की भी गहरी निद्रा भंग हो चुकी थी। प्रभावती के जाने की कुछ आहट उन्हें भी मालूम हुई, पर ध्यान न गया। आँखें खुलते ही किवाड़ खुले दिखाई दिए। वह उठकर बैठ गए।

रात्रि में बहुत देर तक अपने कठोर व्यवहार पर-खेद कर रहे थे, पर बीती हुई बातों के लिए क्या कर सकते थे ? वे सोचते थे--प्रातः काल होते ही मैं अपने इस कटु व्यवहार के लिए प्रभावती से माफी माँगूंगा। यह मेरी ज्यादती थी। मैंने ही अपराध किया और उलटे दण्ड भी मैंने ही दिया। बार-बार मेरे डाटने-फटकारने पर भी प्रभावती मेरी प्रसन्नता के लिए ही कार्य करती रही। अन्तिम क्षण में भी सेवा करने के लिए ही प्रस्तुत हुई, किंतु मझे उस समय भी दया न आई ? एक साधारण गाँव का आदमी भी इस तरह नारी की ताड़ना करने के लिए तैयार नहीं हो सकता, फिर एक पढ़े-लिखे आदमी का शिक्षित नारी के प्रति यह व्यवहार बहुत ही अनुचित था। मैंने बहुत बड़ा अपराध किया।

बिना सोचे-विचारे आवेश में आकर कार्य करने का यही फल होता है। धैर्य से कार्य करने वाला व्यक्ति कभी धोखा नहीं खाता, सदा उन्नति-शिखर पर चढ़ता है। प्रभावती ने क्या यही सोच कर मेरे यहाँ आने का प्रयत्न किया था ? मुझ जैसा धृष्ठ शायद ही कोई पुरुष हो, जो अपनी विदुषी पत्नी का इस तरह अपमान करे। जिस तरह हो सकेगा मैं उसे प्रसन्न करने का पूर्ण प्रयत्न करूँगा।

ठाकुर साहब को किवाड़ खुले होने पर प्रभावती के बाहर निकलने का सन्देह हो गया। अंदर प्रवेश कर शयन-गृह देखा, सूना था। सामने खुला चाकू पड़ा था—सन्न रह गए। यह क्या ? संसार त्याग

कर प्रभावती मुझे कलंकित करना चाहती है। पर गई कहाँ ?

ठाकुर साहब प्रभावती को प्रभा के नाम से सम्बोधित करते थे, सामने न देख आवाज लगाई—प्रभा ! प्रभा ! किन्तु प्रभा यदि वहाँ हो तो बोले।

× × × ×

वह घर से निकल कर कूप पर पहुँची। नीरव वातावरण में अपने को विशाल कूप में प्रविष्ट कर संसार से मुक्ति चाहती थी, लेकिन कूप में रहने वाले जीव-जन्तु उसे अपनाने में लाचारी प्रकट कर रहे थे। पति से तिरस्कृत नारी का मृत्यु भी अनादर नहीं करती। विधि के विधान को मिटाने की उसमें सामर्थ्य नहीं। इसलिए पाप-कर्म की ओर प्रवृत्त होती है और अपना कलमष धोने के लिए नारियों के सौभाग्य का हरण करती है। ओह ! पुरुष से अपमानित स्त्री संसार का सब से बड़ा अनिष्ट करती है।

जल-मध्य रहने वाले जीव-जन्तुओं की इस विचार-धारा से प्रभावती दबी जा रही थी। चारों ओर से उसे······की ही ध्वनि गुंजित मालूम होती थी। प्रभावती बड़ी ही उधेड़बुन में थी। वह सोच रही थी—जल-थल में रहने वाला प्रत्येक जीव उससे घृणा कर रहा है, और पति ने तिरस्कृत ही कर दिया है; अब मैं कहाँ जाऊँ ? वापस लौटने पर पुनः उन्हें कष्ट होगा, अब मैं न जाऊँगी। तुम्हें शरण देनी ही होगी। ठाकुर साहब का चित्र सामने आया तो तुरंत जलराशि में प्रवेश कर प्राण देना चाहती थी।

दोनों भुजाएँ ऊपर उठीं, कमर पीछे हो गई और सिर आगे की ओर तन गया। जल को स्पर्श कर शब्द करना अवशेष था। ज्यों ही पूर्ण करना चाहती थी, कि पीछे से दौड़ कर श्याम ने साड़ी पकड़ कर खींचते हुए कहा, 'माँ।' प्रभावती चौंक कर खड़ी हो गई। आँह नीचे को झुक गई। बालक की ओर देखते हुए उसने कहा, "मेरे पवित्र कार्य

में बाधा पहुँचाने के लिए कौन आ गया।" प्रभावती की चढ़ी भौंहें देख श्याम भयभीत हो गया।

प्रभावती का विवाह हुए कई वर्ष बीत चुके थे, किन्तु वह 'माँ' कहलाने की अधिकारिणी नहीं हुई थी। 'माँ' शब्द सुनते ही वह चौंक पड़ी और अपनी साड़ी छुड़ाते हुए दूर करने का प्रयत्न करना चाहती थी, कि नारी—हृदय वात्सल्य छल-छला आया वह पति को प्रसन्न करने के बजाय पुत्र को प्रसन्न करने की चेष्टा में लग गई।

श्याम को देखकर प्रभावती ने अनुमान लगाया,—इतना छोटा बच्चा यहाँ कैसे आया ? इसकी माँ यहाँ आई है क्या ? जो उसकी लापरवाही से यह यहाँ भटक आया। इधर-उधर देखा तो कोई दिखाई दिया। रोते हुए बालक को उठाकर गोद में ले लिया और गालों पर थपथपी लगाते हुए कहने लगी, "मत रोओ बेटे !" और हिलाडुला कर हँसाने की कोशिश करने लगी।

श्याम बार-बार प्रभावती के मुख की ओर देखकर सोच रहा था, 'मेरी माँ तो ऐसी नहीं थी, पर बोलती माँ की ही तरह है।' प्रभावती ने सोचा—'मुझे अपरिचित जानकर बार-बार मेरे मुख की ओर देख रहा है' उसे देखकर वह अपनी सारी चिन्ताएँ भूल गई।

श्याम गोरा, छोटा, किन्तु मोटा तथा देखने में सुन्दर, चौखाने की जाँघिया व कमीज पहने बहुत अच्छा लग रहा था। वह बार-बार चुम्बन कर आनन्दित हो रही थी। प्रभावती ऐसे खिला रही थी मानो उसी का बच्चा हो। श्याम सुबह से भूखा था। संध्या को ही खाने के लिए उपद्रव मचाया था, किन्तु शान्ति भोजन का प्रबन्ध कर लौटी नहीं और श्याम घर छोड़ कर निकल पड़ा। माँ पा जाने पर कैसे संतोष कर सकता था। खाने के लिए कहना ही चाहता था कि प्रभावती ने ही पूछा, "खाना खाओगे"। खाना शब्द के सुनते ही श्याम व्याकुल हो गया और उसके मुख पर बेचैनी की रेखा दौड़ गई।

प्रभावती को बच्चे की मुख-मुद्रा देखकर समझने में देर न लगी।

श्याम को गोदमें लिए घर की ओर चल पड़ी। गई थी इस संसार की यात्रा समाप्त कर पतिदेव को सुख देने पर सब कुछ भूल कर बालक लेकर उसे जल्दी खाना देने की चिन्ता में घर लौटी। अपने कमरे में पहुँचकर कुर्सी पर श्याम को बैठा दिया और आलमारी खोल कर मिठाई निकाली। फिर एक तश्तरी में रख कर उसे खिलाने लगी।

श्याम बहुत भूखा था। दोनों हाथ मे खाने का प्रयत्न कर रहा था। रह-रह कर खाँसी आ जाती। प्रभावती ने कहा, "बेटे ! धीरे-धीरे खाओ।" उठ कर गिलास में पानी दिया। इतना छोटा बच्चा डेढ़ गिलास पानी पी गया। प्रभावती को आश्चर्य हुआ—'ओह ! कितना प्यासा था ?' पूछा, "और खाओगे ?" श्याम ने सिर हिलाकर मना किया। उसे फिर गोदमें लेकर प्रभावती कोठरी मे टहलने लगी। घड़ी में टन-टन पाँच बजे।

: २२ :

शान्ति आपबीती सारी घटना नाइन से बतला रही थी,—कल शाम बच्चों के खाने के लिए घर में कुछ न था। मैं तो कई दिन से उपवास कर ही रही थी; लेकिन बच्चों के लिए किसी-न-किसी प्रकार मैं इन्तजाम कर ही लेती थी। कल सायंकाल किसी तरह प्रबन्ध न कर सकी। घर में कोई जायदाद भी नहीं थी; और बिना जायदाद के मुझे कौन रुपया दे सकता था ? बच्चों का तरसना न देखा गया—उन्हें अकेले घर में छोड़ मुहल्ले के सेठ के यहाँ मकान बेचने चली पहुँचगई।

सेठ जी ने मेरे मकान के कुल पाँच सौ रुपये देने को कहा। मैंने कुछ और बढ़ाने के लिए कहा, पर सेठ जी ने अनसुनी कर दी। उस समय मेरे सामने कोई उपाय न रह गया। घर के लिए वापस लौट पड़ी। फिर सहसा याद आया—ठाकुर संग्रामसिंह जी भी गरीबों की कुछ मदद कर देते हैं। वहाँ से गोबर्धनसराय पहुँची।

शान्ति की बात समाप्त न हो पाई थी कि नाइन कहने लगी, "हाँ, ठाकुर साहब बड़े परोपकारी हैं, गरीबों की सहायता कर देते हैं। महाजनों

जैसा गिच-पिच नहीं करते । साथ ही जितने का माल होता है, उतने रुपये देने में कंजूसी नहीं करते । इसके अलावा गिरवीं पर भी रुपया देकर गरीबों का काम चला देते हैं । बड़े भले आदमी हैं ।"

शान्ति नीच प्रकृति के आदमी की बड़ाई सुनते हुए सोच रही थी—संसार में जिस मनुष्य का सम्मान होता है वह भी अपने पथ को भूल कर पतित हो जाता है । नैतिक बल के लिए छोटे-बड़े का कोई प्रश्न नहीं है । नाइन की बात खतम होने पर बोली :

"लेकिन, मेरे साथ तो उन्होंने भले आदमी का काम नहीं किया । दूसरों के लिए होंगे ।"

"क्या कोई बात हो गई है ?"

शान्ति बतलाने में कुछ सहमी, फिर बोली, "सहायता करना तो दूर रहा, मेरा धर्म बिगाड़नें पर ही तुले थे । ईश्वर ने मदद की, धर्म बच गया, यही सबसे बड़ी सहायता हुई ।"

नाइन शान्ति की बात सुनते ही सन्न हो गई । स्वाँस खींचती हुई बोली—मैं तो समझती थी, बड़ा आदमी है, सच्चरित्र होगा; किन्तु पाप करने में ही बड़ा है । ऐसे नीच के यहाँ तुम क्यों गई थी ! भगवान् ने जन्म दिया है, तो किसी तरह गुजर होता ही है ।

"यदि मैं न जाती तो कर्म-भोग कैसे पूरा होता ? अच्छे-बुरे की पहचान तो सम्बन्ध स्थापित करने से ही होती है ।"

नाइन चुप होगई । आगे बोलने के लिए उनके पास कोई शब्द न था । मन में सोच रही थी—पाप करने में लोगों को थोड़ा भी भय नहीं लगता । मनमानी करने को तैयार हो जाते हैं । बेचारी शान्ति अपना दुःख लेकर गई थी, धर्म जाने की नौबत आगई । यदि धर्म ही बेचना चाहती तो क्या वे ही भर पुरुष थे, फिर इतना कष्ट भोगकर इस परिस्थिति को ही क्यों पहुँचती ? संसार से धर्म उठ गया । वैसे ही अंग्रेजी पढ़-लिख कर लोग धर्म को कुछ नहीं मानते । बहू-बेटियों की इज्जत तो साग-

भाजी होगई। जिसकी जब इच्छा हो मोल-भाव करके ले ले। भगवान् जाने क्या होने वाला है ?"

शान्ति ने नाइन से कहा, "चुप क्यों हो गई ? इस संसार में भले-बुरे के पहचान् के लिए बड़े कटु अनुभव की आवश्यकता है। किसी के वेष-भूषा मात्र से चरित्र के सम्बन्ध में निर्णय नहीं किया जा सकता। अभी तुमने ठाकुर साहब के लिए शिष्ट शब्दों का प्रयोग किया; किन्तु मेरे साथ उनके व्यवहारों को जानने पर अशिष्ट शब्दों का प्रयोग करने में भी संकोच नहीं किया। अपना कृत्य ही भला-बुरा बना देता है। उसके लिए हम तुम या कोई क्या कर सकता है ?"

नाइन ने कहा, "ठीक कहती हो, बेटी ! एक ही आदमी किसी के लिए अच्छा और किसी के लिए बुरा भी है। अपने व्यवहारों से तरह-तरह की उपाधियों से विभूषित होता है। बुरे कामों से उसकी भी आत्मा दुःखी होती होगी; किन्तु स्वार्थ उसे अंधा बना देता है।"

शान्ति 'श्याम की याद कर रोने लगी। नाइन ने कहा, "रोती ही न रहो, कुछ धैर्य रखो। भगवान् चाहेगा तो 'श्याम' अवश्य मिलेगा। परसाल हरिद्वार में सेठ मुरारीलाल का पाँच-छः वर्ष का लड़का खो गया था, साल भर बाद अभी पिछले महीने मिला है। घबराने की कोई बात नहीं। गिरीश भूखा है, देखती नहीं। सवेरा हो गया चलो नहा लो। मैं सब इन्तजाम किये देती हूँ, चार रोटी सेंक लो, चार दिन से तुम ने भी नहीं खाया। बिना खाये जी न चलेगा। और रह भी नहीं सकतीं। फिर एक बच्चे के लिए इतनी दुःखी हो रही हो, और दूसरे के लिए जो भूखा-प्यासा सामने खड़ा है, उसकी कोई चिन्ता नहीं है।"

"रात में तुम्हारे चले जाने के बाद सोते हुए खाने के लिए रो पड़ा था। मेरे पूछने पर बतलाया—'मेरा माथा दर्द कर रहा है।' मैंने रात में ही चूल्हा जलाया, रोटी बनाई और इसे खिलाई। खाई तो दो ही रोटी, बल्कि दो-तीन रोटियाँ अब भी पड़ी हैं। गिन कर पाँच

रोटियाँ बनायी थी।"

शान्ति नाइन की बातें सुनती हुई सोच रही थी—किन्तु, अधीर हृदय श्याम को पाने के लिए विह्वल हो उठता था। नाइन उठी और शान्ति की बाँह पकड़ कर बोली :

"बेटी, चलो नहा लो, देरी मत करो। आठ बज गये है।"

कुछ आश्चर्यपूर्वक शान्ति ने कहा, "आठ बज गये हैं! मुझे आठ बजे से रायसाहब के यहाँ काम करने जाना था।"

नाइन ने कहा, "कोई बात नहीं है। अभी आध घंटे में सब तैयार हुआ जाता है। नौ बजे तक पहुँच जाओगी।"

लेकिन, पहले ही दिन से इस तरह का व्यवहार अपने व्यक्तित्व के लिए हानिकारक होता है। एक तो कल बातचीत तय होते ही कर्ज में एक सेर आटा माँगा। उन्होंने सोचा होगा—बड़ी धृष्ट औरत है; पर क्या करती और समय से पहुँची नहीं, दुःख की बात है।"

"यह ठीक है बेटी, लेकिन दुःख की बात न होती तो देरी ही क्यों होती। आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा है, क्या रायसाहब इस दुनिया से अलग हैं? सही बात बतला देना, कुछ न कहेंगे। मुसीबत में कठोर आत्मा भी पिघल जाती है। फिर रायसाहब जैसे दयालु कभी नाराज नहीं हो सकते।"

शान्ति उठी और नाइन के साथ नहाने चली गई। रोज गंगा-स्नान करने जाती थी, पर उस दिन समय न था। अन्दर कुएँ ही पर गई। नाइन ने पानी निकाल कर दिया, शान्ति नहा-धोकर निवृत्त हो गई। नाइन ने ही बाहर से सब मदद कर दी। शान्ति ने तुरत खाना बनाया, गिरीश को खिलाया और दो रोटी स्वयं खाकर रायसाहब के यहाँ जाने को तैयार होगई।

गिरीश को नाइन के पास समझा-बुझा कर छोड़ दिया और चल पड़ी। नौ से अधिक हो रहे थे। शान्ति के बच्चे नाइन से खूब हिले थे अतः उनके साथ रहने में गिरीश थोड़ा भी नहीं हिचकिचाया।

गिरीश सुबह से ही लड़कों के साथ नाग बेचने की सोच रहा था। एक दिन पहले से ही मोहन के दिये हुए पैसों से नाग खरीद लाया था, पर वे थे सब श्याम के पास। श्याम ने नाग को अपने हाथ से अलग नहीं छोड़ा। चुपचाप घर में चारों ओर देखकर हताश हो गया। नाग तो श्याम के साथ घर से बाहर निकल कर पानी में समाप्त हो गये होंगे। कागज के नाग कब तक सुरक्षित रह सकते थे, फिर श्याम हाथ से।

बालकों का झुंड एक स्वर से, "छोटे गुरू का बड़े गुरू का नाग लो" गाते हुए चतुर व्यापारियों की भाँति मुहल्ले में चक्कर लगा रहे थे। गिरीश अकेला होने के कारण दुखी घर में पड़ा था और अपने भाई से मिलने के लिए उत्सुक था; पर परिस्थितियों से बँधा था।

मोहन गिरीश की ओर से कई बार निकला पर गिरीश दिखाई न दिया। वह सोच रहा था—क्या बात हुई, कहीं गिरीश की माँ ने पैसा लेने के लिए डाँटा तो नहीं? आदि तरह-तरह की कल्पनाएँ करता हुआ उदास अपने साथियों के साथ घूम-घूमकर नाग बेच रहा था। गिरीश भी मोहन के साथ नाग बेचने के लिए उत्सुक था, किन्तु श्याम के खो-जाने के कारण मनोरथ पूर्ण करने में असमर्थ था।

× × × ×

मुहल्ले के सुप्रसिद्ध पहलवान श्री देवीदयाल अपने दल-बल के साथ टाउनहाल के मैदान में सात बजने के पूर्व पहुँच चुके थे। दर्शकों की अपार भीड़ से मैदान ठसाठस भरा था। पुलिस के सिपाही सभी को ढंग से बैठाने में लगे थे। किसी ओर से भीड़ आगे बढ़ते देख, कोतवाल साहब सिपाहियों को डाँटने लगते थे। दर्शकों की भीड़ बराबर बढ़ती जा रही थी; किन्तु पुलिस के सिपाहियों ने पहले से ही उसे अपने काबू में कर रखा था।

देवीदयाल का जोड़ीदार पहलवान सुखराम भी अपने दलबल के साथ

समय पर पहुँच चुका था। सात बजने वाले थे, दोनों पहलवान कपड़े उतार कर अखाड़े में कूद पड़े। उत्सुकता से लोग देख रहे थे। कुछ मिनटों में निर्णय हो जाना था। बूढ़े, बच्चे, कुछ लोग बैठने से न देख पाते तो खड़े होकर देखने का प्रयास करने लगते थे, पर सिपाहियों द्वारा एक क्षण भी खड़े न रहने पाते—अपने स्थान में ही दबकर बैठ जाना पड़ता। दोनों पहलवानों में सुखराम शरीर से ड्योढ़ा था और अवस्था में देवीदयाल। सुखराम नवयुवक होने के साथ ही बड़े शरीर वाला था; अतः लोग देवीदयाल के हार जाने का अन्दाज लगा रहे थे, और सोचते थे कि देवीदयाल बेकार ही विजय पाने के लिए तैयार हुआ। कहीं ऐसा न हो जाय कि विजय पाने के बजाय प्राण ही गवाँ बैठे। लेकिन जो देवीदयाल को जानते थे उन्हें ऐसा भ्रम न था। वे सोचते थे—कद से कुछ नहीं होता; इतने बड़े हाथी को सिंह एक छोटा सा जानवर दबा लेता है। देखें कौन विजयी होता है।

बीच मैदान में करीब पन्द्रह हाथ लम्बा-चौड़ा, ऊंचा अखाड़ा तैयार किया गया था। उसी पर घूमते हुए दोनों पहलवान दिखाई दे रहे थे। कोतवाल साहब, दो सम्मानित नागरिकों को साथ लेकर चबूतरे पर उपस्थित हुए और दोनों योद्धाओं की तलाशियाँ लीं। इसके बाद ठीक सात बजने पर मल्ल युद्ध के लिए आदेश दिया।

दोनों पहलवानों ने अपने-अपने हाथ आगे बढ़ाये और सलामी कर अपने-अपने दाव-पेच से एक-दूसरे को परास्त करने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। विजयी पहलवान को एक हजार का पुरस्कार भी मिलना था। केवल पाँच मिनट में भाग्य तथा बल का निपटारा होना था। इससे अधिक समय पर हारने-जीतने वाले को कोई पुरस्कार न दिया जायगा। यह पहले से ही दोनों पहलवानों को मालूम था। लड़ते-लड़ते ऐसा मालूम होने लगता कि एक नीचे गया, किन्तु फिर बराबर। चार मिनट समाप्त हो चुके, अब वे पुरस्कार पाने के अधिकारी नहीं मालूम पड़ते थे। सुखराम के शरीर से देवीदयाल दब जाता था। अधिक लोगों

का ख्याल सुखराम के जीतने का था। दाव पलटा और क्षण में ही सुखराम भूमि पर चित होगया। अपार करतल-ध्वनि से आकाशगूंज उठा। देवीदयाल सिंह की तरह गरदन ऊँची किए विजयोल्लास में मस्त खड़ा था। चारों ओर से जयनाद होने लगा।

कोतवाल साहब ने भीड़ को शान्त कर विजयी पहलवान को पुरस्कृत करने के लिए 'माइक्रोफौन से' दो तीन बार आवाज़ दी। आवाज़ आने से लोग चुप हो बात सुनने के लिए उत्सुक हो चबूतरे की ओर देखने लगे।

नगर के सम्मानित तथा काशी म्युनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन श्रीकुंजबिहारी एडवोकेट लाउडस्पीकर के सामने खड़े होकर बोले : उपस्थित सज्जनो,

आज नागपंचमी के उपलक्ष में इस मल्ह युद्ध का आयोजन किया गया था। इस पुनीत पर्व से आप सभी महानुभाव परिचित हैं, मुझे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। आज के दिन भारत का प्रत्येक बच्चा अखाड़े में उतरकर युद्ध करने के लिए उत्साहित होता है। काशी नगरी की विशेषताओं की देवताओं ने भी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वस्तुतः इस नगरी के कार्य ही इतने पुनीत हैं कि सभी को प्रशंसा करनी पड़ती है। नागपंचमी का त्योहार जितने सुन्दर ढंग से काशी में मनाया जाता है शायद ही दूसरी जगहों में मनाया जाता हो।

आज के मल्ह-युद्ध में विजयी होने के उपलक्ष में नगर के सुप्रसिद्ध पहलवान श्री देवीदयाल जी को काशी म्युनिसिपल बोर्ड की ओर से एक हजार रुपये पुरस्कार में दिये जाते हैं। भावी युवकों से आशा है, वे भी वीर बन इस तरह के पुरस्कार पाने के अधिकारी होंगे।

चेयरमैन साहब ने थैली उठाकर देवीदयाल के हाथों में रख दी। पुरस्कार स्वीकार कर देवीदयाल फूले न समाते थे। चेयरमैन साहब की उदारता से मुग्ध हो धन्यवाद देकर देवीदयाल एक ओर बैठ गये।

चेयरमैन साहब ने आगंतुकों को धन्यवाद देकर मल्ह युद्ध का कार्य-क्रम सामाप्त होने की सूचना दे दी। रेकार्ड बजने लगे। अपने को भूल मत जाना, दुनिया है ... ... सब अपने घरों की ओर चल पड़े।

देवीदयाल के पीछे हजारों की तादाद में भीड़ आगे बढ़ रही थी। उसके मुहल्ले में चारों ओर क्षण में खुशी फैल गई।

× × × ×

नाइन ने गिरीश से कहा, "बेटे, चलो देखें बगल वाले देवीदयाल आज दंगल मे जीत कर आये हैं, बाजे बज रहे हैं। गिरीश उठा और नाइन के साथ चल दिया। घर से बाहर होने के पूर्व ही एक टोकरी में मिठाई लिए हुए दो युवक सामने आये और एक दोना मिठाई देते हुए कहा, "आज देवीदयाल दंगल में जीत कर आये हैं, खुशी में मिठाई बँटवा रहे हैं। नाइन ने दोना लेते हुए कहा, "बड़ी खुशी की बात है। युग-युग जियें।" दोनों युवक आगे बढ़े। नाइन ने दोना गिरीश के हाथ में दिया। गिरीश ने कहा :

"मुझ से न खाई जायगी। श्याम के लिए रख दो।"

गिरीश के भोले उत्तर को सुनकर नाइन की आत्मा पिघल गई। दोने में से दो बरफी निकालकर गिरीश के हाथ में रख दीं। वह इमरती भी रखना चाहती थी, किन्तु गिरीश ने लेने से इंकार कर दिया।

गिरीश मिठाई खाने लगा और कुछ देर तक नाइन भी खड़ी चहल-पहल देखती रही। फिर गिरीश को साथ लिये स्वयं नहाने-खाने चली गई। दिन भर गाने-बजाने से मुहल्ले में काफी चहल-पहल रही।

: २३ :

रायसाहब हमेशा छः बजे के पहले उठकर टहलने निकल जाते थे। एक घंटे बाद लौट कर स्नान, पूजा-पाठ से निवृत्त हो आठ बजे पुरोहित जी से बातें करने के लिए तैयार हो जाते थे; लेकिन रात

अधिक देर तक जगने के कारण आज सात बजे तक सोकर न उठ सके ।

रायसाहब के सुबह उठने के कई कारण थे । काशी में ही नहीं, संपूर्ण तीर्थस्थानों में ही प्रातःकाल गंगा-स्नान करने वाले धार्मिक-बन्धु भजन करने चल देते हैं । काशी की गलियों में चार बजे से ही 'हर हर महादेव' की ध्वनि गूँज उठती है और अलसाये हुए व्यक्तियों को नवचेतना दे जाती है । चारों ओर शिव-मंदिरों के घंटा-नाद से आकाश गूँज उठता है ।

रायसाहब अपनी कोठी में ईशान कोण के दो मंजिले कोठे पर शयन करते थे । पूर्व-उत्तर दोनों ओर से लम्बी गलियाँ निकली थीं । आदमियों के आने-जाने की आहट एवं भजनानंदियों के कोलाहल से आँखें खुल जाती थीं, किन्तु उस दिन उनकी नींद में कोई बाधा पहुँचाने में समर्थ न हो सका ।

कमला की नींद छः बजे के पहले ही खुल गई । वह रायसाहब के अधिक देर सोने में विघ्न डालना चाहती थी, क्योंकि रायसाहब का आदेश भी था कि वह यदि किसी कारण से अधिक देर तक सोते रहें तो छः बजे बाद जगा दिया जाय । कभी-कभी इस आदेश का पालन कमला ने किया भी था, किन्तु उस दिन वह सोच रही थी—कहीं नाराज न हो जायँ । इसलिए जगाने का साहस न कर सकी; क्योंकि रात वह कुछ नाराज़ हो चुके थे ।

सात से अधिक हो जाने पर रायसाहब की नींद न खुली । साढ़े सात बजने ही वाले थे । कमला ने देखा—अभी गहरी नींद में ही मस्त हैं । पास जाकर वापस लौट आई । जगा न सकी । खट-खुट कुछ आवाज भी की । लेकिन रायसाहब की नींद न टूटी ।

पुरोहित जी प्रतिदिन आठ बजे के करीब आते थे; लेकिन उस दिन जल्दी में साढ़े सात बजे ही आगये । बैठक सुन-सान थी । बगल की कोठरी, जिस में रायसाहब पूजा करने बैठा करते थे, वह भी बन्द थी ।

पुरोहित जी ने सोचा—आज रायसाहब सुबह ही कहीं चले गये हैं क्या ? बिलकुल सुनसान दिखाई पड़ता है। बद्री नौकर के लिए दो तीन आवाजें लगायीं।

पुरोहित जी की आवाज पहचानकर बद्री तुरत हाजिर हुआ। पैर छूकर प्रणाम किया और बैठने के लिए प्रार्थना की।

पुरोहित जी बैठते हुए बोले, "क्या कर रहे थे ?"

बद्री ने हाथ जोड़कर कहा, "किछु नाहीं महराज, पानी भरत रहली।"

"अच्छा, रायसाहब नहीं हैं ?"

"नाहीं, हउँअँइ"

"क्या कर रहे हैं ?"

"आजु अभेन तनिक सोयल हउँअँइ।"

"क्या बात है, तबियत तो खराब नहीं है ?"

"सँझया मजे में रहल हुँ, फिन नाहीं जानित का भवा, बहू जी बहुत बेर से उठने हउँअँइ। किछु कहली नाहीं।"

"अच्छा, देखो पता लगाओ, क्या बात है ? अब तक सोये हैं ? वैसे तो सदा छः बजे उठ जाते थे।"

पुरोहित जी के आदेश का पालन करने के लिए बद्री अन्दर गया और बहू जी से पुरोहित जी के आने का समाचार बतलाया। कमला ने कहा, "जरा देखो, रायसाहब अभी सोये ही हैं ?" बद्री ने देखा, रायसाहब सिल्की चादर से मुख ढँके खर्राटा मार रहे हैं। आकर बताया—"अभेन नाहीं जगलें।"

कमला जरा भौंह सिकोड़कर बोली—जरा किवाड़ खट-खुट कर दे, जग जायँगे।"

भयभीत हो बद्री ने कहा, "नाहीं, बहू जी हमा ना भेजी।"

"डरता क्यों है, साढ़े सात से ऊपर हो रहे हैं, अब भी न उठेंगे।"

"बहू जी, हम नौकर ठहरली, हमें मालिक बरे डरइन चाहें।"

चिढ़ कर डाटते हुए कमला ने कहा, "अच्छा सारी बैरिस्टरी यहीं समाप्त कर लेना, जाता नहीं। जाओ, पुरोहित जी को बतला दो कि बहू जी जगाने गई हैं, अभी आते हैं।"

बद्री बहू का आदेश पाकर पुरोहित जी के सामने उपस्थित हो, बोला, "बहू जी जगावइ करे जयल हउँअँइ।"

पुरोहित जी लम्बी श्वाँस लेते हुए बोले, "अच्छा।"

बद्री अपना काम करने चला गया, पुरोहित जी रायसाहब की प्रतीक्षा करते रहे। मन-ही-मन सायंकाल के विवाद पर सोच रहे थे—कहीं आज भी रायसाहब दान के सम्बन्ध में विवाद न करें; क्योंकि उन्हीं के दान के द्वारा पुरोहित जी के परिवार का पालन-पोषण होता था। अतः उसे नीच बतलाना जरा अशोभनीय था। इस पर वाद-विवाद करना पुरोहित जी उचित नहीं समझते थे।

× × ×

कक्ष में पहुँचकर कमला ने कहा, "अभी खर्राटा ही चल रहा है।" जगाने के लिए कहने लगी, "पुरोहित जी बहुत देर से बैठे हैं, नहाने को भी देरी हो रही है।" किवाड़ की खुट-खुट आवाज से नींद टूट गई। चादर उठाई तो सामने कमला को खड़ा देखा। उठकर बोले, "क्या समय है?"

कमला ने मुस्करा कर कहा, "अभी देरी नहीं हुई, आठ तो बजे ही हैं।"

आश्चर्य से रायसाहब ने कहा, "आठ बज रहे हैं! अब तक जगा क्यों नहीं दिया?"

कमला ने कहा, "मैंने सोचा कहीं अपराधिनी न बना ली जाऊँ।"

"अच्छा, और सब कामों के लिए नहीं सोचती हो, जगाने के लिए सोच बैठीं। कमला मौन रही।" रायसाहब कपड़ा सँभाल कर पलँग से अलग हुए। हाथ-मुँह धोकर हाथ पोंछ रहे थे, तब तक कमला ने बताया—पुरोहित जी बहुत देर से आये हैं रायसाहब। पुरोहित जी को

आया जानकर बाहर निकले । बैठक में कुछ विचार करते हुए पुरोहित बैठे थे । रायसाहब ने प्रणाम करके कहा—"बैठिए, पुरोहित जी, आज मैं अभी तक सोता ही रहा, अभी उठ रहा हूँ । विलम्ब के लिए क्षमा कीजिएगा । आज्ञा हो तो दस मिनट में नहा धो कर हाज़िर होऊँ ।"

× × ×

पाँच-छः दिन पहले एक ब्राह्मणी कमला से काम करने की बात कर गई थी, फिर न लौटी । उस दिन वह काम करने के लिए तैयार होकर आई थी । कमला नहा-धो चौके में जाना ही चाहती थी कि तब तक उस ब्राह्मणी ने पहुँचकर नमस्ते की । कमला ने भी नमस्ते की और बोली—"कहो महाराजिन, कैसे चली गईं । उस दिन से तो तुम्हारा पता ही न चला ।"

"हाँ, बहू जी ! कुछ झंझटों में पड़ गई थी । इसलिए आज तक सेवा में हाजिर न हो सकी ।"

"तुम्हें कहीं काम मिल गया ?"

"नहीं बहू जी, उस दिन आपने काम करने के लिए कहा था इसलिए आज से काम करने के लिए सोच कर आई हूँ ।"

लेकिन कई दिनों से तुम्हारा पता न चला । हमने सोचा—शायद न आओ । रायसाहब ने स्वयं कल शाम को आज आठ बजे से एक महाराजिन के लिए कह दिया है । बिना उसके जवाब दिए तुम्हें कैसे रख सकती हूँ ? फिर उस दिन तुमने कुछ कहा भी नहीं था । यदि तुमने यह कह दिया होता कि चार-पाँच दिन बाद से काम करोगी, तो तुम्हारा इन्तजाम कर लेती ।

"हाँ, बहू जी ! मैंने तो कुछ नहीं कहा; लेकिन अब तो आठ से ऊपर हो रहा है ।"

"हाँ, आठ से ऊपर हो रहा है । पर घंटे-आध घंटे की कोई बात नहीं । यदि आज न आई, तो कल से तुम्हें रख लेंगे ।"

कमला चौके में प्रवेश कर आग सुलगाने लगी । महाराजिन ने

कहा, "दीजिए मैं आग सुलगा दूँ" पंखी लेकर आग जला दी और पूछा, "क्या चढ़ाना है ?' कमला ने एक पतीली में चाय के लिए पानी रख दिया।"

रायसाहब चाय पीने के आदी नहीं थे, किन्तु कमला एक दिन भी बिना चाय के नहीं रह सकती थी। उसे खाना न मिले, पर चाय जरूर मिले। आलमारी खोलकर तश्तरियों में मिठाइयाँ रख, तथा चाय, चीनी, दूध सब चीजें ट्रे में रख कर बद्री को बुलाकर कमला ने कहा, "चाय बैठक में पहुँचा दो, और देखकर आना कौन-कौन हैं।"

बद्री ने बैठक में चाय रख दी और वापस आकर बोला, "महराज बैठल हउँअंहु, औ मालिक नहाय बरे गयल हउँअँइ।"

रायसाहब ने आवाज दी, "बद्री मेरा कुरता लाना" कुरता लेकर बद्री हाजिर हुआ। कमला भी बैठक में पहुँचगई। पुरोहित जी से प्रणाम करती हुई बोली :

"पुरोहित जी, कल आप दान देनेवालों को पापी बतला रहे थे। जब आप ही लोग शास्त्र के वचनों को न मानेंगे तो और कौन मानेगा ?"

पुरोहित जी ने हंसते हुए कहा, "नहीं-नहीं, दान देने वालों को हमने पापी नहीं बताया, बल्कि काम करने योग्य आदमियों को दान देकर उन्हें काम चोर बनानेवालों को बताया है। गरीबों तथा अपंगों को भीख देना बुरा नहीं बताया है।"

"कमला ने कहा, लेकिन, जो आदमी अपने बाहुबल से खाने के लिए कमा सकता है, वह भीख माँगने के लिए कहीं तैयार ही नहीं हो सकता। जिसे कोई साधन नहीं मिलता, वही दान लेकर अपना पेट पालता है।"

"नहीं, बहू जी ! ऐसी बात नहीं है। भीख माँगना भी एक व्यवसाय हो गया है। दिन भर काम करते हैं, सुबह शाम कुछ देर माँग लेते हैं। खाने के लिए मिल जाता है। और काम में पाये हुए पैसे से गहने

बनवा लेते हैं, नशे का काम चलाते हैं। मैं तो प्रतिदिन देखता हूँ, सैकड़ों ऐसे भीख माँगने वाले मिलते हैं कि जो महीने-दो महीने खाने भर के लिए जेवर पहने रहते हैं और भीख माँगने में संकोच नहीं करते। ऐसे आदमियों को दान देना पाप है।"

कमला ने कहा, ठीक है, "पुरोहित जी! इस बात से मैं भी सहमत हूँ।" उसने चाय बनाकर पुरोहित जी की ओर प्याला बढ़ाया।

पुरोहित जी ने कहा, "मैं तो चाय नहीं पीता। रायसाहब को दीजिए।"

"उन्हें दूँगी ही, पहले आप तो लीजिए।"

पुरोहित जी ने मुँह बनाते हुए कहा—"मैं कभी चाय नहीं पीता। मुझे नुकसान करती है।"

कमला हँसने लगी—"कहीं चाय भी नुकसान करती है! चाय में तो सब से बड़ा यही गुण है, कि किसी को नुकसान नहीं करती। जहाँ तक होता है फायदा ही करती है।"

रायसाहब ने कहा, "ठीक है जो चीज नुकसान करती है, क्यों देती हो? पुरोहित जी अंग्रेजों जैसा-प्याले में चाय पीना बुरा समझते हैं। फिर मिठाइयाँ भी तो लाई हो। मुझे आशा है पुरोहित जी को यह नुकसानप्रद न होंगी।"

कमला ने मंद मुस्कान से रायसाहब की ओर देखा और मिठाई की तश्तरी पुरोहित जी की ओर बढ़ादी। मिठाई स्वीकार कर पुरोहित जी खाने लगे और रायसाहब भी चाय फूंक मार-मार कर पी रहे थे। बीच-बीच में मिठाइयों एवं नमकीनों का भी स्वाद लेते जाते थे। आनन्द की बातें हो रही थीं। मिठाई समाप्त कर पुरोहित जी ने गिलास उठा कर पानी पिया। रायसाहब ने कहा :

"पुरोहित जी, मुझे भी चाय से नफरत है लेकिन घर में बनती है, पी लेता हूँ। पीने में यदि थोड़ी भी असावधानी हो जाय, अथवा बड़ा घूंट हो जाय, तो जीभ जल जाती है। ऐसे स्वाद से क्या लाभ?"

कमला ने कहा—"जिसके स्वाद को जो नहीं जानता वह उसके गुण को कैसे बता सकता है ?"

"हाँ-हाँ, घुमा फिराकर क्यों कहती हो ? साफ शब्दों में कहो—'बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद।" सब खिलखिला कर हंस पड़े।

रायसाहब ने पुरोहित जी से पूछा, "महाराजिन आ गई ?"

"मुझे नहीं मालूम !"

कमला ने कहा, "अब तक तो नहीं आई है।"

रायसाहब ने कहा, "क्या बात है ? पुरोहित जी, अब तो नौ बज गये हैं। आठ बजे से आने को कहा गया था। कल आपने ही कहा था कि जो एक बार माँगकर खाना सीख जाता है, वह फिर काम करना नहीं चाहता। लेकिन आपने बताया था कि महाराजिन दान से एक दिन भी अपना पेट नहीं भरना चाहती। इसलिए एक सेर आटा कर्जरूप में चाहती है। किन्तु पहले ही दिन अब तक नहीं आई, क्या जाने शायद न आना चाहती हो। यहाँ तो सैंकड़ों आदमी रोज आते-जाते हैं और वायदा करके जाते हैं। फिर नहीं लौटते।"

पुरोहित जी मन ही मन लज्जित थे पर शान्ति की स्थिति अज्ञात थी। बोले, "नहीं, ऐसी बात तो नहीं थी वह बात की पक्की औरत है। काम करने में कभी लापरवाही नहीं करती, किन्तु अब तक क्यों नहीं आई, मैं नहीं बता सकता हूँ।"

कमला ने कहा, "पाँच छः दिन पहले एक महाराजिन आई थी और आज भी आई है। चाय उसी ने बनाई है। अच्छा हो कि अब उसी को रख लें।"

पुरोहित जी ने कहा—"अब तो आपने रख ही लिया।"

रायसाहब ने जल्दी में कहा—"नहीं, पुरोहित जी, आज तक प्रतीक्षा रहेगी। आप पता लगाइए; क्यों नहीं आई ?"

कमला ने कहा—"अब नहीं आयेगी। आना होता तो नौ बजे तक आ गई होती।"

पुरोहित जी, रायसाहब और कमला के विचार के भेद से बड़े धर्म-संकट में थे और सोच रहे थे--स्त्रियाँ ऐसे कामों में अधिक तेज होती हैं। शान्ति को जगह न मिल पायेगी। इसके अलावा शान्ति की गरीबी तथा रायसाहब के सामने झूठे होने का प्रश्न बड़ा ही बेढंगा था। संकोच से दबे जा रहे थे।

कमला उठी अंदर जाकर उसने आई हुई महाराजिन को काम करने केलिए कह दिया। वह प्रसन्न हो गई। यही आशा कर वह आई भी थी। मन ही-मन धन्यवाद देने लगी।

बैठक में व्यापारियों का ताँता लग गया। पुरोहित जी अपने घर के लिए चल दिये। रायसाहब ने कहा, "पुरोहित जी, जरा महाराजिन का पता लगाइएगा; क्यों नहीं आई ?"

पुरोहित जी शान्ति का पता लगाना स्वीकार कर चल दिये। अपने घर न जाकर शान्ति के ही घर पहले पहुँचे। किवाड़ बन्द थे आवाज लगाई, किवाड़ खोलकर नाइन निकली, सामने पुरोहित जी को देख कर चरण छूकर प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर पुरोहित जी ने शान्ति को पूछ। नाइन ने सारा हाल बताने के बाद बतलाया कि "शायद आप कल रायसाहब के यहाँ काम लगवा दिए हैं, वहीं गई हैं।" कल रायसाहब के यहाँ से लौटते ही आफत में पड़ गई--आज नौ बजे तक जा पाई।"

"बच्चा कितना बड़ा था ?" पुरोहित जी ने कहा।

नाइन ने कहा--"अभी चार-पाँच साल का हो रहा था।" पुरोहित जी की आँखें सजल हो गईं।

"राम-राम भगवान सब तरह से दुःख देता है। घबराओ मत, मिल जायगा, मैं भी पता लगाऊँगा। आज अभी हम रायसाहब के यहाँ गये थे, किन्तु शान्ति अभी वहाँ नहीं पहुँची। इसलिए पता लगाने आये" था। अब पहुँच गई होगी! शान्ति से कह देना, बच्चा मिल जायगा।

नाइन पुरोहित की बातें स्वीकार कर गंभीर मुद्रा में खड़ी कुछ

सोच रही थी। पुरोहित जी अपने घर की ओर चल पड़े। नाइन पुनः प्रणाम कर घर के भीतर चल गई।

: २४ :

ठाकुर साहब प्रभावती को खोजने के लिए कोठी से निकल पड़े। बगीचे में इधर-उधर देख रहे थे। फाटक में संतरी खड़ा था, बढ़कर पूछा, "प्रभा इधर तो नहीं आई ?"

"नहीं सरकार !" संतरी ने निवेदन किया।'

संतरी के बताने पर ठाकुर साहब को विश्वास हो गया कि प्रभा कोठी के बाहर नहीं निकली। लौटकर बागवान की ओर बढ़े, किन्तु उसकी कोठरी बंद थी। सब्जी पर काम करनेवाला दूसरा बागवान पानी की मशीन चला रहा था। कुएँ के समीप पहुँचकर ठाकुर साहब ने स्वयं देखा। फिर बागवान से पूछा, किन्तु उसका भी उत्तर निराशा-जनक ही मिला।

ठाकुर साहब के अश्रु-जल देखकर बागबान को किंचित संदेह हो गया था, लेकिन ठाकुर साहब के प्रश्न से वह संदेह न रहा। वह सोच रहा था, मालूम होता है ठाकुर और ठकुराइन में झगड़ा हो गया है और वे कहीं छिप गई हैं। ठाकुर साहब खोजने में परेशान हैं। क्या बड़े आदमियों में भी इस तरह का झगड़ा होता है ? हम छोटों के यहाँ तो खाने-पहनने का झगड़ा होता है, पर बड़ों के यहाँ किसलिए होता होगा ?

ठाकुर साहब और चिंतित हो उठे। अभी तक उन्होंने सोचा था—बगीचे में टहलने गई होंगी। किन्तु बगीचा भी 'प्रभा'-विहीन था। घर में भी नहीं, बगीचे में भी नहीं; आखीर कहाँ गई ? घबराये हुए बगीचे में कई चक्कर लगाये, पर 'प्रभा' का पता न चला।

प्रतिदिन वह प्रभावती के साथ आनंद की बातें करते सुबह वह बगीचे में टहलते थे और तरह-तरह की गंभीर परिस्थितियों पर विचार-विनिमय

करते थे। प्रभावती तेज दिमाग की थी; क्षण भर में कठिन-से-कठिन परिस्थितियों को सुलझा देती थी। उसकी प्रखर बुद्धि पर ठाकुर साहब आश्चर्य-चकित होजाते थे। कभी-कभी ठाकुर साहब व्यंग में उससे सरस्वती की मूर्ति कहा करते थे। वस्तुतः यह व्यंग किसी अंश तक सार्थक भी था।

ठाकुर साहब बार-बार प्रभावती की अच्छाइयों पर ध्यान देकर दुखी हो रहे थे। एक-एक क्षण उनके लिए कठिन होरहा था। अपने किए हुए प्रमाद पर पश्चात्ताप कर रहे थे। सहसा पुनः शयनगृह की ओर ध्यान गया। शायद मैं ही न देख पाया लौट पड़े हूँ, सीढ़ी पर चढ़ रहे थे, तो ऊपर से सुग्गी उतरते हुए दिखाई दी। ठाकुर साहब ने पूछा :

"प्रभा" ऊपर है ?

"हाँ सरकार ! कोठरी म लरिका खेलावत बैठि हमां।"

ठाकुर साहब सुनते ही प्रसन्न हो गये, किन्तु लड़का खिलाने की बात खटकी, क्योंकि प्रभावती की गोद खाली थी। आश्चर्य से पूछा, "लड़का खिला रही हैं ?"

"हाँ सरकार छोहलग एक छोटक लरिका लिहे बैठि हमा। हम पुछवउ नहीं भयेन अवर ओउ कुछु नहीं कहिनि।"

सुग्गी की बातें सुनकर उत्सुकतापूर्वक ठाकुर साहब आगे बढ़े और सुग्गी अपने काम के लिए बाहर चली गई।

प्रभावती श्याम का परिचय जानना चाहती थी। फुसलाकर नाम, जाति, पिता का नाम तथा मुहल्ले का नाम आदि एकएक करके पूछ रही थी। श्याम ने अपना नाम तुरन्त बतला दिया। मनुष्य को अपना नाम प्रिय होता है। श्याम उसे कैसे भूल सकता था। जाति बतलाने में हिचकिचाया। वह भी प्रश्न न समझने के कारण, फिर अपने को पंडित बतला दिया। पिता का नाम वह नहीं जानता था, नहीं बता सका। अपने रहने के सम्बन्ध में बताया कि 'हम काशी में रहते हैं।' श्याम के इस भोले उत्तर से प्रभावती हँस पड़ी और बोली:

"बेटे, यह भी काशी है।"

श्याम ने कहा, "नहीं, यह काशी नहीं है। यहाँ गंगा जी नहीं हैं, घंटा नहीं बजता और भगवान् की आरती नहीं होती।" इसके आगे हँसी के मारे प्रभावती न सुन सकी; लोट-पोट होगई।

ठाकुरसाहब यह दृश्य देखकर सोच रहे थे—गंगा जी नहीं है, घंटा नहीं बजता, भगवान् की आरती नहीं होती, यह क्या है? प्रभा को प्रसन्न देख ठाकुरसाहब को विश्वास हो गया—मेरी अशिष्टता को भुला दिया है, भुलाये क्यों न! शिक्षिता नारी, पति के किए गए अपराध को भूलकर सुखद मार्ग का निर्देश करती है, और अमृत-वर्षा कर जीवन को नव-जागरण देती है। साहस कर बोले :

"मैं अपनी प्रभा को पाने के लिए कब से उदास हो रहा था; घर में ढूंढ़ा, उपवन में ढूँढा, पर कहीं पर भी न पाया तुमको। जल, थल, नभ सब में ढूढ़ा। किन्तु न जाने तुम कहाँ छिप गई थी।" मुस्कराते हुए ठाकुरसाहब ने कहा।

प्रभावती ने चौंककर पीछे देखा। उदास ठाकुरसाहब अभियुक्त के रूप में खड़े थे। सहम कर मुख नीचे कर लिया। ठाकुरसाहब ने कहा :

"प्रभा, तुम्हारे प्रेम का अधिकारी आज अपने अपराधों के लिए क्षमा चाहता है। मनुष्य जब आप-वृत्ति की ओर अग्रसर हो जाता है, तो उसका सारा ज्ञान कुण्ठित हो जाता है और वह कर्तव्य से शून्य होकर अनर्थ कर बैठता है। मैंने कल घोर अपराध किया है। आँखें खुलने पर सब मालूम हुआ, किन्तु धनुष से निकला हुआ, बाण वापस नहीं लौटता। उसके लिए क्षमा-दान ही पाप-मुक्ति की गंगा है। आशा है, क्षमा-दान कर इस पापी को पवित्र कर एक बार पुनः प्रेम का अधिकारी बनाओगी।"

प्रभावती ने कहा, "किन्तु यदि पति के अपराधों को स्वयं नारी स्वीकार कर अपराधिनी के रूप से पति से क्षमा-दान चाहती है और

वह देने में मजबूर होता है, तो नारी पति के अपराधों को क्षमा-दान कर उसे पाप-मुक्त कैसे कर सकती है ?"

प्रभावती की बातें सुनकर वह सन्न रह गये, उन्हें यह आशा न थी। वह यह सोच रहे थे—कल प्रभा भी ऐसी ही आशाएँ लेकर गई होगी, किन्तु मैंने एक न मानी। मैं अपने प्रमाद में ही डूबा रहा, लेकिन प्रभा तो प्रखरबुद्धि है, मुझ जैसी गलती वह कभी नहीं कर सकती। ठाकुर साहब ने पुनः कहा :

"अपराध होने पर ही तो क्षमा-दान होता है ! वैसे किसी के सामने झुकने की क्या आवश्यकता। क्या मैं प्रेम का अधिकारी फिर नहीं बन सकता ?

प्रभावती बोली, "पति स्वयं सोच सकता है निरपराधिनी नारी अपने पति के सुख के लिए पति का अपराध स्वयं स्वीकार कर क्षमा-दान के बदले मृत्यु-दण्ड पाती है। तो फिर अपराधी पति को प्रेम-दान कैसे दे सकती है ?"

ठाकुर साहब के पास कोई उत्तर न था। कुछ क्षण मौन रहे, फिर लम्बी साँस लेते हुए बोले, "अच्छा, अपराधी पति " आगे कुछ कह न सके। चलने के लिए उद्यत हो गए।

प्रभावती पति का अलग होना बरदाश्त न कर सकी। वह बोली, "अपनी कर्म-साधना में सफल नारी के आदेशों के बिना पति को उसकी दृष्टि से ओझल होने का कोई अधिकार नहीं। दौड़कर सामने खड़ी हो दोनों हाथों से मार्ग रोकती हुई बोली, "नारी के कोमल हृदय को कुचल कर किस पाषाण से टकराने का पतिदेव साहस कर रहे हैं।" आँखें मिलीं, हृदय एक हुआ, आलिंगन कर वे दोनों पुलकित हो उठे।

: २५ :

शान्ति नौ बजे के बाद रायसाहब के यहाँ पहुँची। बैठक में व्यापारियों का जमघट था। वह अन्दर जाने में संकोच कर रही थी।

बद्री को देखकर बोली, "रायसाहब से बतला दो कि पुरोहित जी के साथ जो औरत आई थी, वह आपसे मिलना चाहती है ।" बद्री ने बैठक में जाकर रायसाहब से बतलाया । रायसाहब ने कहा, "अंदर बहू जी के पास लिवा ले जाओ ।" बद्री वापस शान्ति के पास आकर बोला, "बहू जी के पास जाइ बरे कहवें ।"

शान्ति बद्री के साथ चल पड़ी । कमला चौके में बैठी भोजन बनवा रही थी । सब बन चुका था, कुछ ही बाकी था । महराजिन कह रही थी, "देखिए बहू जी, अब तक वह औरत नहीं आई; उसके भरोसे आप मुझे भी जवाब दे रही थीं । जब तक काम में न लग जाय, किसी का विश्वास करने लायक नहीं है । उस दिन मैंने इसीलिए वचन नहीं दिया था कि शायद न आ सकूँ, कोई दूसरा काम करने लगूँ; पर जिस दिन से निश्चित् कर लिया, काम भी करने आगई ।

किसी को विश्वास देकर काम न करना बुरा होता है । यदि हाँ कहकर जाती तो आपभी सोचतीं कि कैसी औरत थी, जो कह कर गई और आई नहीं । इसी तरह की बातों से दुनियाँ में दिनों-दिन विश्वास घटता जा रहा है । करता है एक, किन्तु बदनाम सभी होते हैं । मैं तो सोचती हूँ, स्वयं दुःख भोग ले; किन्तु संसार को बदनाम न करे ।

बहू जी वह आयेगी नहीं, आना होता तो अब तक आगई होती । आज जगह की कमी नहीं है, जहाँ देखिए वहीं महराजिन की जरूरत है । पढ़ी-लिखी औरतें भोजन बनाना पसन्द नहीं करतीं । पर अच्छी जगहों में काम कम मिलता है ।

कमला ने कहा, "शाम को रायसाहब ने बतलाया तब तुम्हारी भी कोई आशा न थी । मैंने सोचा, काम करने आ जाय, तब निश्चित मानूँ । तुम ठीक कहती हो, यदि उसे आना होता तो समय पर आगई होती । मैंने पुरोहित जी से ढूँढ़ने के लिए कहा था । वे स्वयं ढूँढ़ कर लाये और बातें भी कीं । रायसाहब से उन्हीं के बीच सब तय हुआ । यदि न रखते तो पुरोहित जी भी बेजा मानते; पर अब तो

वह आई ही नहीं, इसलिए मैं भी दोष से बरी हूँ। उसके लिए घण्टे-आध घंटे इन्तजार करने को रायसाहब ने पुरोहित जी के सामने ही कहा था, इसमें उन्हें भी सांत्वना मिली होगी। मैंने तो उसकी सूरत भी नहीं देखी।"

महराजिन ने कहा, "अच्छा, आपके बिना ही रख ली गई।"

कमला ने कहा—हाँ, बैठक में पुरोहित जी के सामने रायसाहब से बातें हुईं और वह वहीं से वापस चली गई। उस महराजिन को मैं देखना चाहती थी। आगे कमला कुछ न बोलने पाई कि बद्री ने आकर कहा :

"बहू जी, मालिक आपके पास इन्हें भेजले हउअंइ।"

रूखे स्वर से कमला ने कहा—"तो मैं क्या करूँ।" शान्ति की ओर देखकर—"कल शाम को पुरोहित जी के साथ तुम्हीं आई थीं ?"

शान्ति ने कहा, "जी हाँ, आज आठ बजे से आने के लिए कहा था, लेकिन कुछ देरी होगई।

"तो पूरी देरी करनी चाहिए थी।"

"पूरी देरी करनी होती तो आपके यहाँ आती ही क्यों ?"

"तुम्हें आठ बजे के लिए कहा था। नौ बजे तक इन्तजार किया; फिर दूसरी महराजिन आगई, इसलिए उसी को रख लिया। उस समय पुरोहित जी भी बैठे थे, बल्कि रायसाहब ने पुरोहित जी से पूछा भी था। उन्होंने कहा, "मुझसे आपके सामने ही बातें हुई थीं, न आने का कारण ज्ञात नहीं है। व दर्जा लाचारी इसी महराजिन को रख लिया। न रखते तो यह भी दूसरी जगह जा रही थी।"

"आपने रख लिया तो अच्छा किया। मेरे लिए भी भगवान् कुछ प्रबन्ध करेंगे ही।"

कमला बोली, "अच्छा हो या बुरा, पर जो होना था, हो गया। अब मैं क्या कर सकती हूँ। रख कर बिना कारण जवाब देना भी तो बुरा है।"

"हाँ,-हाँ, मैं यह नहीं चाहती कि मेरे कारण किसी की लगी रोटी छुड़ाई जाय। मैं तो अपना कर्म-भोग कर रही हूँ, दूसरों को क्यों कष्ट हो।"

शान्ति ने सोचा, ईश्वर जिससे अप्रसन्न हो जाता है. उसे हर तरह से दुखी बनाता है। कल शाम को मेरे सामने जीविका का प्रश्न हल हो चुका था। यदि समय से पहुँची होती तो उससे वंचित न की जाती, किन्तु ऐसा हो क्यों ? मेरी भाग्य-रेखा का भोग कौन भोगेगा ? यदि मेरी जीविका चलती होती तो क्या तरुणाई में ही पतिदेव छोड़कर स्वर्गवासी होते ? फिर बच्चा खो जाता ? रायसाहब का इसमें क्या दोष ? नेत्र सजल हो गए—कमला शान्ति को रोते हुए देखकर बोली :

"यह क्या कर रही हो ? आज के युग में नौकरी की कमी नहीं है। यह महाराजिन अभी बतला रही थी, कि पढ़ी-लिखी साधारण घर की भी औरतें स्वयं खाना नहीं बनाना चाहतीं—घर-घर महाराजिन की जरूरत है। फिर पुरोहित जी के बहुत से लोग परिचित हैं। कहीं-न-कहीं प्रबन्ध करा ही देगें। कहीं न होगा तो मेरी महाराजिन करा देगी। नौकरी के लिए रोना मूर्खता है।"

"बहू जी ! इतना मैं समझती हूँ। मैं नौकरी के लिए नहीं रो रही हूँ। मैं अपनी भाग्य की विडम्बना पर रो रही हूँ। मेरे साथ मेरे कष्टों की भी दुर्दशा होती है। तरुणाई में ही पति खो बैठी। दो बच्चे पालन-पोषण के लिए मिले थे, पर कल यहाँ से मेरे लौटने के पूर्व ही छोटा बच्चा मुझे छोड़कर घर से बाहर खो गया। रात भर गलियों में भटकी, बच्चे को ढूंढ़ती रही। इसी कारण आपके यहाँ आने में देर भी हुई।"

कमला तथा नवागत महाराजिन शान्ति की करुण गाथा सुनकर सन्न हो गईं।

कमला ने कहा, "कितना बड़ा बच्चा था ?"

"अभी पाँच का पूरा नहीं था।"

"बड़े दुःख की बात है। हमें यदि ऐसा ज्ञात हो गया होता तो दो-चार दिन और तुम्हारा इन्तजार कर लेती। एक महीने से जैसे काम होता था, चार-छः दिन और हो जाता।

शान्ति ने साँस खींचते हुए कहा, "आपका आटा दस-पाँच दिन में पहुँचा दूँगी।"

"नहीं, नहीं, सेर-दो-सेर आटे की कोई बात नहीं, यदि जरूरत हो तो और ले लो।" कमला ने कहा।

"बहू जी! मैं इतना ही दे दूँ, यह बहुत है और लेकर कैसे दूँगी?"

"देने की बात नहीं है। जहाँ गरीबों की सहायता में मनो गल्ला बँटता है, वहाँ सेर-दो सेर आटा वापस करने की कोई जरूरत नहीं है। तुम निःसंकोच ले लो। बद्री, देखो महाराजिन को सेर-दो सेर आटा और दे दो।"

"बहू जी कृपा कीजिए। आपने जितनी मेरी सहायता की है, उसी के लिए जन्म भर आभारी रहूँगी और अधिक आवश्यकता नहीं। हाँ, आटा पहुँचाने के लिए दस-पाँच दिन की अवधि अवश्य चाहती हूँ। अब मुझे आज्ञा हो, मैं चलूँ?" शान्ति ने विनीत भाव से कहा।

कमला आगे कुछ न बोल सकी। उसने शान्ति को चलने के लिए स्वीकृति प्रदान कर दी। नमस्ते कर शान्ति अपने अंधकार-पथ की ओर चल पड़ी। शान्ति सोच रही थी—अपने साथ पुरोहित जी को भी कष्ट दिया। यहाँ, काम न हुआ जानकर रायसाहब के ऊपर तो नाराज ही होंगे साथ ही और किसी दूसरे स्थान के लिए प्रयत्न करने का कष्ट करेंगे। अपने भाग्य के दोष से उन्हें कष्ट देना उचित नहीं है।

× × ×

खाना तैयार हो गया, रायसाहब भोजन करने के लिए एक मित्र-सहित पधारे। महाराजिन थाल लेकर सामने आई। रायसाहब ने कहा, "यही पुरोहित जी के साथ कल शाम को आई थी।"

कमला ने कहा, "नहीं, यह पाँच दिन पहले आई थी, किन्तु काम करने आज से आई है। नौ बजे तक उसका इन्तजार किया। आपके सामने पुरोहित जी ने भी कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया था और यह भी जाने लगी तो काम करने के लिए कह दिया।

"लेकिन, वह भी तो आई थी।" रायसाहब ने कहा।

"हाँ, आई तो थी। पर साढ़े नौ बजे के बाद आई। तब तक आधा खाना बन चुका था और उससे काम भी न होता। लापरवाह सी मालूम होती थी, फिर उसका चेहरा-मोहरा भी तो रानियों जैसा था।

तुम्हें चेहरे-मोहरे से क्या मतलब ? खाना बना कर देती ही, तुमने उससे कहा क्या ?"

कमला ने उत्तर दिया, "कहा क्या, जो सही बात थी बतला दी। नौ बजे तक इन्तजार किया। उसके बाद दूसरी महाराजिन रख ली। अब उसे कैसे जवाब दूँ ?"

"लेकिन पुरोहित जी क्या सोचेंगे ? इसका तुमने ख्याल नहीं किया। उसे गये कितनी देरी होगई ?"'

"अभी आपके आने से पाँच मिनट पहले गई होगी।"

"बद्री, देखो, उस महाराजिन को बुला लाओ। हजारों काम होते हैं, एक अनाथ की रोटी न चलेगी ? पुरोहित जी सोचेंगे कि इन्होंने कह कर धोखा दिया। ब्राह्मण को अप्रसन्न करना ठीक नहीं।"

मित्रसहित रायसाहब ने भोजन करना आरम्भ कर दिया। उठने के पूर्व शान्ति को साथ लेकर बद्री उपस्थित हुआ। रायसाहब ने कहा, "मुझ से बिना पूछे क्यों जा रही थीं ? मुझ पर पुरोहित जी को नाराज कराने के लिए ?" बहू जी की ओर देखकर बोले, "देखो इससे भी काम लेना। दोनों महाराजिन काम करेंगी। कमला ऊपर से स्वीकृति प्रदान कर भीतर-ही-भीतर कुपित हो रही थी। शान्ति के सामने से काले बादलों ने हटकर आकाश स्वच्छ कर दिया। जीवन-निर्वाह की आशा पुनः जाग उठी।

: २६ :

"प्रभा ! तू मुझ पर रूठ गई थी। मैं अपने को भूल गया था। तुम्हारे साथ मेरा बर्ताव बड़ा कठोर हुआ। जब इस बात को मैं स्वयं मानने के लिए तैयार हूँ, तब तुमने क्यों न माना होगा। उन सबको भूल जाओ और पुनः प्रेम-राज्य की स्थापना करो।"

प्रभावती ने कहा, "मैं सदा आदेशों का पालन करती रही हूँ और अब भी तैयार हूँ। मृत्यु-दण्ड की घोषणा सुनने के पूर्व भी आदेशों की पूर्ति करने के लिए प्रार्थनाएँ की थीं, किन्तु अनसुनी हो गईं।"

"प्रभा, बीती बात की याद मत दिलाओ।"

"अच्छा, लीजिए, भूली जाती हूँ।" प्रभावती का ध्यान श्याम की ओर खिंच गया, "बेटे आओ, इधर आओ। वहाँ क्यों खड़े हो?" श्याम ठाकुरसाहब की ओर देखकर स्तब्ध रह गया। प्रभावती ने बढ़कर उठा लिया। ठाकुरसाहब ने कहा :

"यह लड़का कहाँ से पकड़ लाई हो ?"

फिर आपने बीती बात याद दिलाई। मेरा तो सिद्धान्त है कि बिना बीती बात याद किये भविष्य उज्वल नहीं हो सकता। धनुष का तीर जितना ही पीछे खींचकर छोड़ा जाता है, उतना ही तीर आगे जाता है। सीधे शब्दों में अपनी उन्नति के लिए पीछे के आदर्श पुरुषों को स्मरण कर आगे बढ़ना उत्तम है।"

अच्छा, तो मैं भी तुम्हारे विचारों से सहमत हूँ। अपने सिद्धान्तवाद के परिचय में बच्चे का परिचय कराना भुला ही दिया।"

प्रभावती खिल-खिलाकर हंसती हुई बोली, "हाँ, बता तो रही हूँ, आप जल्दबाजी क्यों करते हैं। आज ब्रह्म मुहूर्त में पतिदेव के सुख के लिए कूप की शरण में अपने अरमान पूर्ण करने के हेतु गई थी, किन्तु इस बालक ने 'माँ' कहकर मेरी साड़ी पकड़ ली। यही इसका संक्षिप्त परिचय है। नाम है श्याम, जाति पंडित और सब अज्ञात।

ठाकुर साहब ने कहा, "पति इस कलंक से संसार में रहने योग्य न रह जाता। इस बालक ने वस्तुतः मुझे कठोर पाप से मुक्त किया है। कृतज्ञता का भाव प्रकट कर श्याम का गाल स्पर्श करते हुए वह बोले "बेटे तुमने बड़ा उपकार किया। मैं तुम्हारी इस उपकार के बदले में क्या सेवा कर सकता हूँ ? अपनी शक्ति के अनुसार तुम्हारी सेवा करते हुए जीवन भर कृतज्ञ रहूँगा।"

सुग्गी चाय लेकर उपस्थित हुई। प्रभावती ने चाय बनाकर ठाकुरसाहब को दी और श्याम को स्वयं पिलाने लगी। फूँक मार-मार श्याम चाय धीरे-धीरे पी रहा था। सुग्गी छोटा बालक देखकर बोली :

"दुलहिन, इ लरिका कहाँ से लै आयन ?"

ठाकुर साहब प्रभावती के बोलने के पहले ही बोल उठे, "इ लरिका ऐसइ आइगाहई ।" ठहाका मार कर ठाकुर-ठकुराइन दोनों हँसने लगे। सुग्गी कुछ संकोच में मुसकराकर मौन होगई।

ठाकुर साहब कभी-कभी सुग्गी को चिढ़ाने के लिए बघेली भाषा में भी बोलने का प्रयास करते थे। सुग्गी को काशी में इतने दिन रहते हो गये; किन्तु वह अपने देश की ही भाषा में बोलती थी। रहते-रहते यहाँ की भाषा अच्छी तरह समझ लेती थी और सुग्गी से सम्पर्क रखने वालों को भी बघेली-भाषा समझने में अड़चन नहीं होती थी।

प्रभावती ने कहा, "सुग्गी तुम चुप क्यों हो गई ? ठाकुर साहब ने तो कोई बुराई नहीं की, बल्कि तुम्हारी ही भाषा को सीख रहे हैं !"

सुग्गी ने कहा, "बिना काम का बतई। हम तो चाहिये कि अपनउ पंचे हमरे बोली मां बतकहाउ करी, पय अपनउ पंचे जब ऐसन सोची तब न काम सधी। हमरे भर सोचे का होथइ।"

श्याम चकपकाकर सुग्गी की बातें सुन रहा था, पर समझ न पाया। उसके लिए अजीब तरह की भाषा थी। प्रभावती ने कहा :

"सुग्गी सुनो, यह बालक आज बगीचे में मिला है। भगवान् जाने

किसका है। अपना नाम श्याम और जाति पंडित बतलाता है, आगे कुछ नहीं।

ठाकुर साहब ने कहा, "बड़ा होनहार लड़का है।"

मुग्गी ने समर्थन किया, "हाँ हुज़ूर, भाग का जबर जनात है।"

प्रभावती ने घड़ी की ओर देखा, नौ बज गये थे। बोली, "मुग्गी नहलाने का प्रबन्ध करो, नौ बज गये।" ठाकुर साहब बैठक के लिए चल पड़े। प्रभावती ने ठाकुर साहब की ओर देख कर कहा, "बच्चे के लिए कुछ कपड़ा चाहिए।"

ठाकुर साहब ने मुस्करा कर उत्तर दिया, "अच्छा, शाम तक आ-जायगा।" जाकर बैठक में बैठ गये। यह सामने सरदार कीर्तिसिंह विराजमान थे। ठाकुर साहब के दरबारी सरदारों में सब से सम्मानित सरदार माने जाते थे। कीर्तिसिंह ने सलाम किया, ठाकुर साहब आशीर्वाद देकर कोंच पर बैठते हुए बोले—"विराजिए सरदार कीर्तिसिंह जी!"

कीर्तिसिंह संकोच से दब गए और बोले, "ठाकुर साहब आप मुझे सरदार न कहा कीजिए।"

"क्यों बिगड़ रहे हो? सरदार तो सम्मानसूचक शब्द है।"

कीर्तिसिंह ने कहा, "ठीक है! किन्तु बड़ों द्वारा छोटों के लिए श्रेष्ठ शब्दों का प्रयोग कम अपमानजनक नहीं होता।"

ठाकुर साहब ने कहा, "आप गलत सोच रहे हैं। जब अपने ही आदमियों द्वारा सम्मान न मिलेगा तो दूसरों से मिलना संभव नहीं। ऐसे ही धीरे-धीरे उन्नति कर मानव उच्च शिखर पर पहुँचता है। फिर भी मैं तो अपने बराबरी के ही शब्दों का प्रयोग कर रहा हूँ। इन बातों को जाने दीजिए। दशहरे के उत्सव की कितनी तैयारी बाकी है?"

कीर्तिसिंह ने गंभीर स्वर में कहा, "अभी तो सब बाकी है। रुपये इकट्ठे नहीं हुए, काम कैसे शुरू हो? दीवान साहब पन्द्रह दिन

से इलाके में दशहरे के लिए चन्दा लेने गये हैं, परन्तु पता न चला वहाँ क्या स्थिति है ?"

ठाकुर साहब ने कहा, "अच्छा, आज रुककर कल आदमी भेज दीजिए, खबर ले आए।"

कीर्तिसिंह ने आज्ञा स्वीकार की। सुग्गी ने आकर नहाने के लिए कहा। ठाकुर साहब थोड़ी देर के लिए कीर्तिसिंह से अवकाश लेकर नहाने चले गये। नहा-धोकर आध घण्टे बाद लौटे। तब तक दो सज्जन और पधार गए और कीर्तिसिंह से आपस की बातें होती रहीं। ठाकुर साहब के आने पर बातें बन्द हो गईं। उठकर खड़े हुए, सलामी दागी और फिर बैठ गये।

ठाकुर साहब ने कहा, "विजयदशमी-उत्सव के लिए बहुत कम दिन रह गये हैं। तैयारियाँ बहुत बाकी हैं। जिससे सभी काम होना है अभी उसी का प्रबन्ध नहीं हुआ। कम-से-कम दस हजार रुपये लगेंगे।"

कीर्तिसिंह ने कहा। "हाँ, ठाकुर साहब सबसे पहले रुपये का प्रबन्ध होना बहुत जरूरी है। यदि रुपये का प्रबन्ध उचित रीति से हो जाता है तो सब काम दस दिन में हो जायगा।"

ठाकुर साहब ने कहा—"हाँ, हाँ, ठीक है। लेकिन दस दिन में कार्य पूर्ति की आशा कर मक्खी मारते बैठे रहना ठीक नहीं है; क्योंकि कम समय में काम ठीक नहीं हो पाता। अतः धीरे-धीरे पहले से ही कार्य आरम्भ कर देना अच्छा होता है। सभी तरह की सहूलियतें धीरे-धीरे काम करने में होती हैं।"

कीर्तिसिंह ने उत्साहपूर्वक कहा, "जो आज्ञा हो हम करने के लिए तैयार हैं। आप काम की चिन्ता न करें, सब अच्छी तरह होगा। समय-समय पर हम लोगों को बतला दिया कीजिए।"

ठाकुर साहब और सरदारों के बीच की बातें समाप्त न हो पाई थीं कि चुनार के प्रसिद्ध सम्मानित सरदार भगतसिंह की मोटर आ

पहुँची। वे उतर कर बैठक में पधारे। सरदार भगतसिंह को देख कर सब ने खड़े होकर सलाम किया। ठाकुर साहब बोले, "आज आपने बहुत दिनों में आने का कष्ट किया!"

भगतसिंह ने हंसते हुए कहा, – "हाँ, इधर कुछ झंझटों के कारण न आ सका" कीर्तिसिंह की ओर इशारा करते हुए बोले। "आप पन्द्रह दिन पहले चुनार पधारे थे और आपने विजय-दशमी-महोत्सव मनाने का शुभ-संदेश भी सुनाया था। मुझे बड़ी खुशी हुई। इस युग में अपने पर्व को सब भूले जा रहे हैं। एक दिन था, जब क्षत्रिय समाज में विजया-दशमी महोत्सव बड़े उल्लास से मनाया जाता था। घर-घर में शस्त्रों की पूजा होती थी; किन्तु अब तो घड़ी-चश्मा के सामने शस्त्रों का कोई मूल्य ही न रह गया। बड़ी प्रसन्नता है कि आपने इस युग में भी अपने जातीय गौरव को बढ़ाने के लिए विजय-दशमी महोत्सव मनाने का आयोजन किया है। उसकी सफलता के लिए मैं मंगल-कामना के साथ ही हर तरह से सहयोग देने के लिए तैयार हूं।"

ठाकुर साहब सरदार भगतसिंह की बातें सुनकर गद-गद हो गये और बोले; "सरदार साहब, आप लोगों की ही आशा पर इस पुनीत कार्य की ओर अग्रसर हो रहा हूँ। दिन कम रह गये हैं, और प्रबन्ध बहुत बाकी है। अभी यही इन लोगों से कह रहा था। रुपये भी अभी इकट्ठे नहीं हो पाये। दस हजार व्यय होने का अनुमान है।"

सरदार भगतसिंह ने गंभीर होकर कहा, "घबराने की कोई आवश्यकता नहीं, सब भगवान् पूरा करेंगे।"

सुग्गी बैठक में आकर बोली, "सरकार जेवनार बनि गइ है, पधारी।"

भगतसिंह के लिए सुग्गी की भाषा अजीब तरह की थी, सुनकर सन्न रह गये। ठाकुर साहब हंसते हुए बोले, "सरदार साहब, यह औरत विन्ध्य प्रदेश की राजधानी रींवा की है। हमारे यहाँ करीब

पन्द्रह वर्ष से रहती है, लेकिन अपनी ही भाषा में बोलती है। सुनते-सुनते हम लोगों को समझने में थोड़ी भी असुविधा नहीं होती। लेकिन एकाएक सुननेवालों के लिए कुछ आश्चर्य होता है।" ठाकुर साहब सुग्गी की बातें और सुनवाना चाहते थे। साथ ही रीवाँ के दशहरा का स्मरण हो आया। बोले;

"सुग्गी, तुम्हारे यहाँ अब भी दशहरे का उत्सव होता है?"

"हाँ सरकार — अब तो नामै भर है। पहिले जैइसन नहीं होत आय, जब भर राजन महाराजन के राजि रही, तब भर सब होत रहा। अब कोनउ समान सरकार से नहीं मिले। हाथी, घोड़ और असबाब जेतना रहा सब बिकवाइ दीन गइ। फौजिउ टोरि दीन गइ। राजा बिचारे काहें मां उच्छाह करें अउ काहें माँ पेट भरें। भला अपने लरिका मेहरिअन का खवाइ लेंइ फेरि उच्छाह करिहीं। तबै केर जाइदें कि आनन्द से जौन मन परत रहा तौन करत रहें, अब अपनइ पेट जियावइ क लागि है।"

सरदार भगतसिंह कान देकर सुग्गी की बातें सुन रहे थे। ठाकुर साहब मन-ही-मन सरदार भगतसिंह के आश्चर्य पर मुस्करा रहे थे। सरदार भगतसिंह ने ठाकुर साहब की ओर सुग्गी की बातों को स्पष्ट करने के लिए देखा, ठाकुर साहब बतलाने लगे।

"सुना सरदार जी! रींवा का दशहरा-महोत्सव अपना विशिष्ट स्थान रखता था। राजसी ठाट-बाट देखने योग्य रहता था। मेरे पिता जी इधर कई वर्षों से वहीं का दशहरा देखने जाते थे, मैं भी कभी-कभी साथ मे चला जाया करता था। उत्सव का दृश्य बड़ा ही मनोहर और मनहरण होता था।"

किले से सायंकाल चार बजे जलूस निकलकर नगर की प्रधान सड़कों से बढ़ता हुआ आठ बजे परेड के मैदान में पहुँचकर समाप्त हो जाता था। सर्व-प्रथम आगे-आगे फौज मार्च करती थी, फिर घुड़सवार इसके बाद राज्य के पवाईदार अपने-अपने सैनिक एवं सवारियों के साथ

चलते थे। सरदार सब राजसी वेश में होते थे; उस दिन रीवाँ नगर का एक बच्चा भी बिना साफे के नहीं दिखाई देता था।

रईसों के बाद महाराजा घोड़े की सवारी पर चलते थे, और उनके पीछे हाथी पर कुलपूज्य गढ़ी के देवता राजाधिराज की मूर्ति रहती थी। अपार जन-समूह इस महोत्सव में भाग लेता था। नगर में फूलों की वर्षा होती थी। जय-नाद से आकाश गूँज उठता था। मार्ग में राजभक्तों के दीपदान एवं आरती से ऐसा लगता था मानों सुरराज का जुलूस निकला हो।

राज्य के कोने-कोने से इस महोत्सव में भाग लेने के लिए लोग पधारते थे। जुलूस के चलने के पूर्व तोपों से सलामी होती थी। तोप की आवाज़ से ही जलूस के चलने का अनुमान कर लिया जाता था और सायंकाल परेड की सलामी से समाप्त होने का अन्दाज़ स्वयं हो जाता था। तोपों के घनघोर गर्जन से पृथ्वी थर्रा जाती थी। परेड के मैदान में तरह-तरह के खेलों का भी आयोजन रहता था।

यह कार्य-क्रम दस बजे रात तक समाप्त होता था।

दूसरे दिन महाराज की न्यौछावर के लिए सरदारों एवं महाजनों की बैठक होती थी। अपनी हैसियत के अनुसार मोहरों से न्यौछावर करते थे। अंतरंग बैठक समाप्त होते ही जनता-जनार्दन के समक्ष महाराजा नवीन कार्यों की घोषणा करते थे। बड़ा सुन्दर समारोह होता था उसी उत्सव के लिए सुग्गी बतला रही थी कि राज्यों का संघ बनकर केन्द्रीय शासन में हो जाने से सब बन्द हो गया है। जो महाराजे इन महोत्सवों में अपार धनराशि व्यय करते थे, वे ही आज अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए चिन्तित हैं।

भगतसिंह ने कहा—"धन्य हो ठाकुर साहब, आपने अभी तक मुझ से इस महोत्सव के सम्बन्ध में कभी चर्चा भी नहीं की थी। भगवान् करेंगे तो हम लोगों का भी महोत्सव इसी रूप में सफल होगा।"

ठाकुर साहब ने कहा, "लेकिन वह राजसी ठाट-बाट कहाँ ? केवल

फौज ही दस हजार आगे-आगे मार्च करती थी !"

भगतसिंह ने आश्चर्यपूर्वक कहा, "दस हजार ।"

"जी हाँ, अच्छा अब समय अधिक हो रहा है । भोजन के लिए चलना चाहिए" सुग्गी की ओर देखकर ठाकुर साहब बोले, 'नहीं तो सुग्गी सोचेगी कि गप में ही सारा समय बिता दिया" । किन्तु सुग्गी मन ही मन अपने देश की बड़ाई सुनकर प्रसन्न हो रही थी । वह सोचती थी :

"हमरेउ देश माँ ऐसन कउन चीज हइ जौन का सुनि जानि काइ लोगन के अचरज होत हइ ।"

ठाकुर साहब सरदार भगतसिंह तथा कीर्तिसिंह को साथ लेकर भोजन के लिए चले । सुग्गी ठाकुर साहब से पहले ही अन्दर पहुँच गई थी ।

: २७ :

शान्ति रायसाहब की बातों पर सोच रही थी, "एक महाराजिन रख ली गई है, फिर भी मुझे सहायता देने के लिए रख ही लिया । बड़े दयालु हैं । भगवान् मैं कैसे इनके ऋण से उऋण हूँगी ?"

कमला ने शान्ति से कहा, "क्यों, इस महाराजिन का छुआ खाओगी ?"

शान्ति ने उत्तर दिया, "मैं तो आज खाकर आई हूँ ।"

"नहीं-नहीं, संकोच मत करना । यदि इसका छुआ न खाना हो तो स्वयं बना लेना ।" कमला ने कहा ।

शान्ति हंसकर बोली, "नहीं, आपसे क्या संकोच करूँगी । खाकर ही आई हूं ।"

"कमला स्वयं भोजन करने जा रही थी । उसे मोहन की याद आ गई तो बोली, "बद्री," पर वह न बोला, रायसाहब को पान देने गया था । मोहन का नौकर सामने आया । "क्यों जी, मोहन भैया कहाँ गए ? घर से निकलने पर तुम्हें लौटने का ख्याल नहीं रहता । बारह बज रहे हैं । बिना कुछ खिलाए ही घुमा रहे हो ?" बिगड़कर कमला ने कहा ।

भैया के नौकर ने हंसते हुए कहा, "हम तो बहुत बेर से कहत रहे, लेकिन नाग बेचइ बेगे आवइ नाहीं चाहत रहें। जब कुलि बिक गवा, तब चलें।"

मोहन दौड़ता हुआ माँ के पास आकर सामने खड़ा हो गया और प्रसन्नतापूर्वक बोला :

"माँ, सब नाग बिक गये।" एक बचा था उसे लेकर घर लौट रहे थे। बीच में बगल वाले बुड्ढे पंडित जी मिल गए सो वह भी लिए लेते थे। मैंने उनका पैसा लौटा दिया—नहीं लिया। तब भी हमारा नाग नहीं देते थे। कहते थे, "हम नाग लिए जाते हैं पैसा लेना हो तो ले लो। जब मैं रो पड़ा तब दिया।"

कमला ने मोहन को गले से लगा लिया। वह प्रसन्न होकर बोली, "खाना भी खाओगे या नाग ही बेचते रहोगे ?"

मोहन झट पट सामने आकर बैठ गया।

"माँ स्कूल के हमारे साथी सभी मिले पर एक न मिला। उससे हमने मिलने के लिए कई बार कहा था, पढ़ने की बात वही बताता है, मास्टर साहब कुछ नहीं बताते।"

कमला आश्चर्यपूर्वक सुनती हुई स्वयं भी भोजन करती जा रही थी। मोहन का ध्यान दोनों महाराजिनों की ओर गया और वह बोला, "माँ ये कौन हैं ?"

"महाराजिन।"

"दोनों ?"

"हाँ।"

"तो क्या हमारे लिए भी महाराजिन अलग रहेगी ?"

मोहन के इस भोले प्रश्न से सब हंस पड़े। कमला कहने लगी, "हाँ, बाबू जी कह रहे थे कि मोहन के लिए सभी चीजें अलग रहेंगी।"

"तो हमारी कोठी कहाँ है ?"

"तुम्हें कोठी न मिलेगी, खपरैल में रहना पड़ेगा।"

"खपरैल क्या है, माँ ?"

"जैसा बद्री का घर बना है, वैसा ही खपरैल होता है।" एक दो बार सैर करने के लिए बद्री के गाँव कमला, और मोहन सब जा चुके थे। रायसाहब को चार गाँव मिले थे, जिसमें से एक में बद्री का भी मकान था। वहाँ जाने पर बड़ी खातिरदारी होती थी। मोहन ने समझा बद्री के गाँव में ही रहना होगा, खुश हो गया और बोला :

"वहाँ बड़ा आनन्द रहता है। दूध खूब पीने को मिलता है। बूढ़े-बूढ़े आदमी हैं। पगड़ियाँ बाँधते हैं, हल चलाते हैं, खूब आम खाते हैं। हमारे जैसे लड़के गायों को घास खिलाते हैं।" कहते हुए नाचने लगा।

कमला ने मुस्कराकर कहा, "पहले खाना तो खाओ फिर गाँव में रहना।" मोहन, बैठकर खाना खाने लगा। दोनों महाराजिन हँस रही थीं। कमला ने कहा, "मोहन तुम किस महाराजिन को लोगे ?"

मोहन ने दोनों की ओर देखा, मन-ही-मन तुलना की और फिर शान्ति की ओर देखकर कहा, "इस को।"

कमला दूसरी महाराजिन की ओर इशारा करके बोली, "क्यों इसको नहीं ?"

मोहन ने जवाब दिया, "नहीं वह बड़ी खराब है।"

सब हंसने लगे। कमला ने महाराजिनियों से कहा, "देखा, तुम लोगों ने? एक को अच्छी और एक को खराब झट बतला दिया। एक सयाना आदमी भी बिना कुछ दिन साथ रहे किसी को भला-बुरा नहीं कह सकता, लेकिन इन बच्चों को कोई संकोच नहीं। मनमाने जिसको जो चाहते हैं कह देते हैं।"

शान्ति ने कहा, "इसीलिए तो ये बच्चे है। यदि उचित-अनुचित का ज्ञान हो जाय, तो बच्चे-ही क्यों कहे जायँ ?"

कमला सोच रही थी--"दो महाराजिन हैं बुलाने पर धोखा भी हो सकता था, लेकिन मोहन ने दोनों में भेद कर दिया। एक को अच्छा

बताया और एक को बुरा। साथ ही नाम में भी फर्क कर दिया, एक महाराजिन और दूसरी भैया की महाराजिन।"

× × × ×

पहली महाराजिन सोच रही थी—कितना दुष्ट लड़का है, मुझे खराब और इस राँड को अच्छा कहता है। गाल की लाली बूढ़े बच्चे सभी को मोह लेती है। इसीलिए रायसाहब ने भी रख लिया है, नहीं तो कौन पूछता है ? दूध पिये जैसी बैठी है।

कमला ने महाराजिन से कहा, "अभी तुमने खाना नहीं खाया ?"

"खा लूंगी।"

"कब खा लोगी ? अब तो सब खा चुके। भैया की महराजिन खायगी नहीं। तुम क्यों बैठी हो ?"

वह सब चीजें रखकर स्वयं खा-पीकर खाली होगई।

कमला ने कहा, "तुम दोनों गेहूं साफ कर डालो। मैं अभी आती हूँ।" दोनों महाराजिन गेहूँ बनाने में लग गई और कमला आराम करने चली गई। एक घण्टे बाद कमला आराम करके लौटी, तब तक गेहूँ साफ़ हो चुके थे। दोनों महाराजिन आपस में बातें कर रही थीं। कमला ने सोचा इन दोनों में खाना कौन अच्छा बनाती है, यह देखना चाहिए। इसकी तो जरूर परीक्षा करनी चाहिए। बोली, "भैया की महाराजिन इस वक्त तुम खाना बनाना" शान्ति ने आदेश स्वीकार कर लिया।

× × × ×

रायसाहब कचहरी जाना चाहते थे। बड़े मुनीम जी अपने काग़-ज़ात लेकर जा चुके थे, और जाते समय कहा भी था कि एक घण्टे के लिए दो बजे वह भी पधारें। बारह बज चुके थे रायसाहब की नींद सुबह तक सोते रहने पर भी पूरी नहीं हुई थी। एक घंटे आराम कर कचहरी जाने के लिए निश्चय किया और ड्राइवर से कह दिया कि कहीं जाये नहीं। कुछ देर में कचहरी चलेंगे। आज दुकान का काम

न करेंगे। दूकान पर मुनीमों से कह देना कि आज मेरे पास व्यापारियों को न आने दें।

ड्राइवर मुनीम जी को आदेश सुनाकर मोटर में बैठा प्रतीक्षा कर रहा था। रायसाहब गहरी नींद सो रहे थे। चार बजे तक नींद न खुली, बार-बार ड्राइवर जाकर वापस लौट रहा था, पर जगाने का साहस न हुआ।

टन, टन चार बजे; रायसाहब की नींद खुली। देखा चार बज गए थे, सामने ड्राइवर खड़ा था; बिगड़कर बोले, "तुमने जगाया क्यों नहीं? कचहरी चलना था, सब काम चौपट कर दिया।"

ड्राइवर ने डरते हुए कहा, "साहब, मैं सोते में किसी को नहीं जगाता।"

पहले तो काफी गुस्सा हुए, फिर शान्त हो गये। उन्होंने सोचा, "मेरे जाने पर ही क्या होता? मुनीम जी ने पूरा काम करही लिया होगा। अदालत का फैसला मेरे न जाने से रुकेगा नहीं। हाँ, मुनीम जी कसंतोष हो जाता।"

× × × ×

कचहरी में कुछ देर तक मुनीम जी ने प्रतीक्षा की, वकीलों ने भी कई बार पूछा, किन्तु अदालत ने प्रतीक्षा कर अपना फैसला सुना दिया—

"वादी का दावा मंजूर किया जाकर प्रतिवादी आराजी से बेदखल किए गये।"

किसान चिल्ला उठे, "महान् अन्याय! हम लोग घर से निकाले जाते हैं। अदालत को इस पर विचार करना चाहिए। हम भूखों मर जाएँगे।" मुनीम जी आनन्द से वकीलों से बातें करते हुए निकले और फैसले की नकल के लिए अर्जी देकर उसे प्राप्त किया। मुश्किल से पाँच बजे फैसले की नकल मिली। छः बजे तक घर पहुँचे।

दिन भर की दौड़-धूप से थके थे; कपड़े उतार कर लेट गये। कुछ

देर बाद उठे, हाथ-पाँव धोए और कुछ नाश्ता कर रायसाहब की सेवा में हाज़िर होना चाहते थे, तब नब्‌: बद्री आकर बोला :

"रायसाहब आपके बुलउले हुउअड़ ।"

"अच्छा, चलता हूँ ।" बस्ता बद्री को देते हुए कहा, "तुम चलो ।"

कुछ ही क्षणों में सम्मान के अधिकारी बनने की आशा लिए वह कोठी पर पहुँचे । रायसाहब मुनीम जी को देखते ही बोले, "कहिए मुनीम जी, क्या रहा ?"

मुनीम जी ने हँसकर कहा, "आपकी कृपा से विजयी हुए ।"

आश्चर्यपूर्वक रायसाहब ने कहा, "विजयी हुए ?"

"हाँ साहब ! सब किसान खेतों से बेदखल कर दिये गए । वे अपना कब्जा साबित नहीं कर सके । पटवारी से लगातार दस वर्ष का अपना कब्जा लिखा लिया था । उन्हें अपना कब्जा साबित करने का कोई ज़रिया ही न रह गया ।"

रायसाहब बोले, "इसमें मेरी विजय हुई या पराजय । बेचारे मुद्दतों से रह रहे हैं । मकान बनाये हैं, खेतों की उन्नति कर जोत-बो रहे हैं । फिर भी अपना कब्जा साबित नहीं कर सके । बड़ा आश्चर्य है ।"

मुनीम जी रायसाहब की इस तरह की बात सुनकर सन्न रह गये । मुनीम जी क्या सोचकर आये थे और क्या हो गया । सम्मान मिलना तो दूर रहा, रोजी बचाने की नौबत आगई । चुपचाप ठिठके से खड़े रहे ।

"मुनीम जी, किसानों के सम्बन्ध में कोई काम करने से पहले मुझ से सम्मति ले लिया कीजिए और सब से पहले कल गाँव में चलकर जिन किसानों के खिलाफ मुकदमा दायर हुआ था, उन्हें मेरे सामने पेश कीजिए । किसानों से लड़कर कोई लाभ नहीं उठा सकता । मेल करने पर वे ही दरिद्र किसान पारस बन जाते हैं । आप नहीं समझते हैं, पइरा ज़माने में छोटी-छोटी चीज़ बड़ी बन जाती हैं । कहीं नेताओं को पता चल जायगा तो किसानों को बेदखल करना सर्वथा असम्भव हो

जायगा और जगह-जगह विरोधी भाषणों की वजह से लोग मुझे गिरी निगाहों से देखेंगे। जाइए, कल सुबह चलने के लिए तैयार रहिए।" मुनीम जी हताश हो अपने घर की ओर चल दिए।

× × × ×

सात बज गये शान्ति तथा उसके साथ की महाराजिन दोनों अपने-अपने घर के लिए चल पड़ीं। चलते समय कमला ने कहा, "एक दूसरे के पहले पहुँचने का अन्दाज स्वयं घर बैठे न लगा लेना कि एक का भी दर्शन न हो। दोनों महराजिन कहने लगीं, "नहीं-नहीं समय से आएँगे।" नमस्ते कर अपने-अपने घर की ओर चल दीं।

: २८ :

कीर्तिसिंह ने कहा, "सरदार साहब ! घबराइएगा नहीं, जरा भोजन करने में मुझे देरी लगती है।"

भगतसिंह ने बेपरवाही प्रकट करते हुए कहा, "नहीं-नही, घबराने की कोई बात नहीं है। आप शौक से भोजन कीजिए।"

ठाकुर साहब कीर्तिसिंह की चतुरतापूर्ण बातों पर मुस्कराकर बोले, "सरदार साहब ! आप यह न सोचियेगा कि कीर्तिसिंह को भोजन करने में देरी लगती है। मुझे पहले ही खाना बन्द करना चाहिए नहीं तो नुकसान में रहेंगे।" कीर्तिसिंह की ओर इशारा करके फिर बोले "जरा आप बनानेवाले के परिश्रम को अधिक सफल करते हैं, देरी, का एकमात्र यही कारण है।"

सरदार साहब हँसने लगे साथ ही और सबभी हँस पड़े। ठाकुर साहब ने कहा, "खाने में मैं संकोच नहीं करता; फिर आप के यहाँ तो घर जैसा-व्यवहार ठहरा।"

कीर्तिसिंह ने कहा "यही मुझे भी विश्वास था, इसीलिए निवेदन के लिए बाध्य होना पड़ा।" प्रभावती की ओर देखकर कहा, "बहू जी से अनुरोध करता हूँ कि दो पूड़ियों से मेरा स्वागत करें।"

प्रभावती ने लज्जाभरी आँखों से कीर्तिसिंह की ओर देखकर कहा, "मैं तो स्वयं ला रही थी। घबराने की क्या बात? अभी सरदार साहब के लिए उपदेशक बने थे; पर स्वयं सन्तोष न कर सके।"

"नहीं, बहू जी! मुझे पूर्ण संतोष है। चिंता है तो केवल सरदार साहब की। मेरे कारण उन्हें क्यों देरी हो। अरे आपने गज़ब कर दिया दो के बजाय चार पूड़ियाँ छोड़ दीं। मालूम होता है अब आप परोसने से थक गईं हैं। तो मुझे भी खाना बन्द कर देना चाहिए।"

प्रभावती ने कहा, "थकने की बात नहीं। मैं और ला रही हूँ। अभी सरदार साहब भी तो भोजन कर रहे हैं, ऐसी क्या जल्दी है?"

कीर्तिसिंह हँसते हुए कहने लगे, "मुझे ध्यान न था। मैंने सोचा शायद भोजन कर चुके।"

ठाकुर साहब ने कहा, "आपको पूड़ियों के ध्यान में किसी आदमी का ध्यान कैसे रहेगा?"

सब खिलखिला कर हँस पड़े। कीर्तिसिंह बड़े विनोदी जीव थे। खासकर भोजन के समय। अपरिचित आदमियों को पेट भर खाना मुश्किल हो जाता है। बहुत ही चंट हुए तो इनकी बातों में नहीं पड़ते; पर अधिकांश पड़ ही जाते हैं। सभी भोजन कर चुके थे। प्रभावती के आग्रह करने पर भी कोई और लेने के लिए तैयार न हुआ। प्रभावती चौके के अन्दर चली गई।

सुग्गी हाथ धुलाने के लिए सामने खड़ी थी। सब के हाथ धुलाये, फिर पान लेकर बैठक में पहुँची और पान चौकी पर रखकर वापस लौट आई। कीर्तिसिंह ने तश्तरी में रखे हुए पान सरदार साहब की ओर बढ़ाये उसके बाद ठाकुर साहब की ओर फिर स्वयं पान खाकर तश्तरी एक ओर चौकी पर रख दी।

सरदार साहब थोड़ा विश्राम करने चलने को तैयार हो गये। ठाकुर साहब ने शाम तक और रुकने की प्रार्थना की; किन्तु किन्हीं जरूरी कारणों से न रुक सके। चलते समय ठाकुर ने कहा, 'सरदार

साहब इस उत्सव के लिए अध्यक्ष आपही चुने गये हैं। सब काम आपके बताये हुए ढंग पर ही होना है। इसका ख्याल रखिएगा।"

सरदार साहब ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा, ठाकुर साहब इस पद के योग्य मैं नहीं हूँ। अच्छा होता कि किसी महाराजा को चुना जाता और रही सहायता आदि की बात सो तो मैं हर तरह से सहायता करने के लिए तैयार हूँ। जब जरूरत पड़े निःसंकोच बताइएगा।"

"ठीक है; सरदार साहब ! लेकिन मैं किसी महाराजा को इस पद के लिए योग्य नहीं समझता। मेरी इच्छा रईसों तक ही थी। फिर आप जैसी आज्ञा देंगे करने को तैयार हूँ।"

"अच्छा इस विषय पर फिर कभी बातें करेंगे। और सब तैयारी कराइए।" नमस्ते के बाद मोटर पर सवार हुए और ठाकुर साहब भी अपने सरदारों के साथ वापस लौट पड़े।

बैठक में दरबार जम गया। कीर्तिसिंह दशहरा-उत्सव की बात सोच रहा था, आखिरकार इस उत्सव से किसानों को क्या लाभ ? यदि नहीं है तो चन्दा ही क्यों दें। ठाकुर साहब को यह पागलपन कैसे सवार हो गया। पहले महाराजा लोग स्वच्छन्द राज्य करते थे। उन्हें किसी का भय न था, जो चाहते थे करते थे। साल में दो चार उत्सव भी मना लिया करते थे; लेकिन जनता से चन्दा लेकर उनके बच्चों को नंगे कर मनबहलाव के लिए उत्सव करना कितनी मूर्खता है। फिर काशिराज के यहाँ रामलीला महीने भर होती है। साथ ही विजय-दशमी का उत्सव भी उचित रीति से मनाया जाता है। व्यर्थ किसानों को तबाह करने के लिए तूफान रचने की क्या आवश्यकता है ? कुर्सी से उठकर कीर्तिसिंह ने कहा :

"ठाकुर साहब मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।"

"सहर्ष, कहिए।" सब कीर्तिसिंह की ओर देखने लगे।

"निवेदन यह है कि विजय-दशमी का महोत्सव काशी के लिए नवीन नहीं है। यहाँ के हर मुहल्ले में मनाया जाता है। फिर काशिराज के यहाँ

से भी राजसी ठाट-बाट के साथ प्रति वर्ष मनाया ही जाता है। आपको अलग डफली पर अलग राग अलापने से क्या लाभ ?"

ठाकुर साहब डफली का राग अलापना सुनते ही क्रोध से भभक उठे। आँखें लाल हो गईं। डाट कर बोले, "कीर्तिसिंह होश से बोलो। तुम्हारी जबान बहुत बढ़ गई है। समय को बिना देखे जो मन में आया बकना शुरू कर दिया। जबान खिंचवा लूँगा। इससे क्या मतलब ? मैं भी कुछ समझता हूँ; तुम्हें आदेश पालन का अधिकार है; नुक्ताचीनी करने का नहीं, समझे ?"

"हाँ, ठाकुर साहब ! मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ। आपके आदेशों का पालन करने वाला तभी तक हूँ, जब तक देश के हित की बात होगी अन्यथा नहीं। मैं स्वतंत्र भारत का नागरिक हूँ। मुझे देश के अहित में रोक लगाने का अधिकार है। मैं सोचता था, कि यह उत्सव मनाने की बात केवल मनोरंजन के लिए हम लोगों तक ही सीमित है; किन्तु दीवान साहब चन्दा वसूल करने गये हुए हैं; और जनता को चूसनेवालों के लिए अध्यक्ष पद देने की कल्पना की जा रही है। इस अनाचार को मैं बरदाश्त नहीं कर सकता।"

"कीर्तिसिंह ! तुम अपने को नेतागीरी के घमण्ड में बर्बाद न करो। मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। तुम्हारे बापदादों ने यहीं जिन्दगी बिताई है।"

"ठाकुर साहब ! यदि मेरे बाप-दादों ने यहीं जिन्दगी बिताई होगी तो इस तरह शोषण के कार्य न हुए होंगे। किसी उत्सव के लिए किसानों का गला न घोंटा गया होगा।"

ठाकुर साहब ने आँखें चढ़ा करकहा, "तो किसानों का गला घोंटा जा रहा है ?"

तब क्या हो रहा ? बेचारे किसानों को इस महँगी में अपने बच्चों का पालन-पोषण करना कठिन हो रहा है। सालाना लगान देने

के लिए रुपये नहीं जुटा पाते, औरतों के जेवर गिरवीं रखकर मुश्किल से रुपये लायेंगे ? गरीबों पर मार पड़ती होगी । गाँव में हाहाकार मचा होगा । क्या आपने इस ओर भी कभी सोचा है ?"

ठाकुर साहब और कीर्तिसिंह के विवाद शुरू होने के थोड़ी ही देर बाद दीवान साहब भी आगये; लेकिन वातावरण अनुकूल न देख चुप खड़े रहे । कीर्तिसिंह द्वारा की गई चन्दे की बुराई दीवान साहब बरदाश्त न कर सके । ठाकुर साहब कुछ बोलना चाहते थे पर उनके पूर्व ही दीवान साहब बोल उठे :

"कीर्तिसिंह, तुम अभी किसानों की स्थिति नहीं समझ सके हो । आज वे सबसे अधिक मजे में हैं । घर-घर में आनन्द छाया है। इस महँगी में सेर भर की बिक्री से वे सब बन गये हैं। औरतें जेवरों से लदी हैं । दस मन गल्ला बेचने पर रुपये-ही-रुपये दिखलाई देते हैं। पहले विवाह आदि उत्सवों में बड़े-बड़े किसानों के यहाँ ही 'गैस' की बत्ती जलती थी; किन्तु आज यों ही साधारण बिना उत्सव के गैस जलती रहती है । कोई ऐसा किसान नहीं है जो विवाह आदि उत्सव में गैस और लाउडस्पीकर का प्रबन्ध न करता हो। गाँव के बड़े किसानों के यहाँ रेडियो लगा है, आनन्द से कार्यक्रम सुनते हैं । नगर के लोग किसानों के बराबर आनन्द नहीं पा रहे हैं । गाँव अब गाँव नहीं रह गये हैं, वहाँ सुख-शान्ति का निवास हो गया है ।"

आवेश में आकर कीर्तिसिंह ने कहा, "दीवान साहब ! आपको गरीब किसानों की स्थिति का ज्ञान नहीं है । अभी आपने गाँवों में जाकर बड़े-बड़े एजेण्ट किसानों के यहाँ ठहरकर सुख-साम्राज्य देखा है, लेकिन उन गरीबों को नहीं देखा है, जो नंगे और भूखों मर रहे हैं। बड़े किसान गाँव में एक ही दो होते हैं । उनके साथ गाँव भर के सुख-दुःख का अन्दाज लगाना भूल है । जेवर पहनना तो दूर रहा अपना तन नहीं ढाँक सकते, बच्चों को खाना नहीं दे सकते, चार-छः बीघे जमीन से दस आदमियों का भरण-पोषण कैसे हो सकता है ? शादी आदि में

किसान अपनी इज्ज़त के लिए भूखे रह ज़मीन गिरवी रखकर काम चलाते हैं। उन बेचारों की सही परिस्थिति का ज्ञान उसे ही हो सकता है जो उनके साथ रहकर अपना जीवन बिताता है। उन्हें रेडियो, लाउडस्पीकर लगवाने को कहाँ से पूरा पड़ सकता है ? आपको बड़े किसानों की मेहमानदारी से ग़रीब किसानों की स्थिति जानने का अवकाश कहाँ ? भर पेट खाना नहीं मिलता और ऊपर से चन्दे के लिए बाध्य किया जा रहा है, बेचारे कहाँ से देंगे ?"

दीवान ने गुस्से में आकर कहा, "कीर्तिसिंह, तुम जितने दिन के न होगे मैं उतने सालों से किसानों के बीच काम कर रहा हूँ। किसानों की नस-नस पहचानता हूँ। किसान काम सब करते हैं किन्तु रो-रो कर। उन्हें हँसकर काम करना नहीं आता, एक यही कमी है। लगान देते हैं, लेकिन समय पर नहीं। तुम आज के छोकरे किसानों के सम्बन्ध में क्या जानते हो ?"

"दीवान साहब ! बनते तो आप सयाने हैं, किन्तु विचार एक बच्चे से भी नीचे हैं। किसान हँसकर काम करना क्यों नहीं जानते ? आपने क्या इस पर कभी विचार किया है ? यदि किया होता तो हम आपकी बातें मानने के लिए तैयार थे। केवल कह देने से नहीं होता। बेचारों के पास कुछ रहता ही नहीं इसलिए हँसकर काम नहीं कर पाते। कोई प्राणी ऐसा न होगा जो कभी दुखी रहना चाहता हो। किन्तु परिस्थिति से लाचार होकर भोगना ही पड़ता है।

"अभी आप चन्दा इकट्ठा कराने गये थे। सचसच, अपने हृदय से पूछिये कितने किसान खुशी मन से चंदा देने के लिए तैयार थे और जो चंदा नहीं देना चाहते थे क्या उनके पास रुपये हैं ?"

ठाकुर साहब क्रोध में थे ही आगे कीर्तिसिंह की बातें बरदाश्त न कर सके। गरज कर बोले— "कीर्तिसिंह ! बकवास मत करो। घंटों से बरदाश्त कर रहा हूँ। जिसकी रोटी खायी उसी को बदनाम करते हो। शर्म नहीं आती।"

"ठाकुर साहब, शर्म उसे आती है जो नीच कर्म करता है। सत्कर्म करनेवाला सदा सम्मान का अधिकारी होता है। मैं आपसे अन्तिम बार नम्र शब्दों में निवेदन करूँगा कि आप अपनी लानाशाही नीति बदल दें, अन्यथा आप अपना ही नुकसान कर बैठेंगे।"

ठाकुर साहब क्रोध में अपने को न सँभाल सके। बोले, "कीर्तिसिंह! मेरे सामने से हट जाओ। मैं तुम्हें एक मिनट भी नहीं देखना चाहता, अब बोले तो धक्का देकर निकलवा दूँगा।"

"ठाकुर साहब! एक शब्द भी यदि अशोभनीय निकला तो जीभ खींच लूँगा। सारी ठकुराइस धूल में मिल जायगी।"

एक-दूसरे की ओर द्वन्द करने के लिए बढ़े। कीर्तिसिंह के हाथ में कोई चीज न थी। ठाकुर साहब के हाथ में छड़ी थी। उपस्थित सरदारों ने झगड़ने से दोनों को अलग किया। कीर्तिसिंह ने कहा, "मैं देखूँगा दशहरे का उत्सव कैसे मनाया जाता है? किसानों से चंदे के नाम पर डंडे मिलेंगे" कहता हुआ वह बैठक से बाहर हो गया।

ठाकुर साहब कीर्तिसिंह की बातों से जले जा रहे थे; किन्तु अब कीर्तिसिंह सदा के लिए ठाकुर साहब से अलग हो गया, उसका कुछ बिगाड़ना ठाकुर साहब की शक्ति से परे था। वह हाथ मलते हुए खड़े रहे।

: २६ :

मुनीम जी के कर्तव्य पर रायसाहब सोच रहे थे—आज बेचारे किसान चिंता से व्यग्र होंगे। अपने बाल-बच्चे लेकर कहाँ जायेंगे? इतनी अपार धन-राशि भरी पड़ी है। किसानों को निकालने से मुझे क्या लाभ होगा? फिर बदनामी भी होगी, बड़ा ही अनुचित कार्य हुआ।"

दर्शन का समय हो गया था। उठकर चल दिए और नौ बजने के पूर्व दर्शन कर वापस आगये। कमला मोहन के सो जाने पर

अकेली प्रतीक्षा में खड़ी थी। रायसाहब के पहुँचने पर बोली।

"आपकी प्रतीक्षा करते-करते आँखें पथरा जाती हैं।"

रायसाहब ने मुस्कराकर कहा, "इतनी कमज़ोर हैं ? कहीं..."

कमला खिन्न हो रायसाहब की ओर चुप होने का इशारा करते हुए बोली, "ऐसा अपशब्द न निकालिए।"

रायसाहब चुप हो गये। कपड़े उतार कर भोजन के लिए बैठे। कमला ने तुरन्त थाली सामनें उपस्थित की। रायसाहब नें भोजन करना आरम्भ कर दिया। कमला ने मोहन को खपरैल में रहने के लिए कहा था। यह सुनकर रायसाहब हँस पड़े। कमला ने कहा, "मैंने बतला दिया है घबराओ मत, ऐसा जमाना आ रहा है जब बिना हल जोते और बिना काम किये खाना न मिलेगा। गाँव में रहकर मौज से काम करना। मोहन गाँव में रहने के लिए खूब प्रसन्न था।"

रायसाहब ने कहा, "इसका कारण यह है कि एक-दो बार गाँव में हो आया है। वहाँ खातिरदारी अच्छी होती है। डाँटनेवाला कोई नहीं, मनमाना खेलने को पाता है। इसलिए गाँवों में इसका चित्त लगता है। क्या दोनों महाराजिन समय पूरा होने तक काम करती रहीं ?"

कमला ने कहा, "सात वजे गई हैं। मोहन ने तो पुरोहितजी वाली महाराजिन को पसन्द किया है और दूसरी को खराब बतलाया है। लेकिन खराबवाली ही मुझे अच्छी मालूम होती है। मोहन की महाराजिन बड़ी चतुर है।

रायसाहब ने कहा, "क्या बात है ?"

कमला ने उत्तर दिया—"बात कोई नहीं है, उसकी बातचीत, स्वभाव तथा वेश-भूषा सभी से ऐसा आभास हो रहा था।"

"लेकिन, एक-दो बार मैंने बतलाया था कि किसी की वेश-भूषा देखकर अच्छाई बुराई का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। उसके व्यवहारों की परीक्षा करने के बाद ही मूल्य आँका जा सकता है।"

कमला सुबह शान्ति का चेहरा देखते ही सुर्ख पड़ गई थी। रात में रायसाहब की अप्रसन्नता का निष्कर्ष निकालने में देरी न लगी। कमला ने पहले ही कहा था, "रहीं होगी कुछ ढंग की; इसीलिए अन्दर भेजने का कष्ट नहीं किया।" इस पर रायसाहब नाराज भी हुए थे। क्यों न होते सही बात कहने पर लोग नाराज़ हो ही जाते हैं। एक अन्धा भी अन्धा कहने पर नाराज हो जाता है।

आज मैंने शान्ति को जवाब भी दे दिया था, परन्तु इन्होंने पुरोहित जी की नाराज़गी की आड़ लगाकर रास्ते से वापस लौटा लिया और एक-दो बात उलटे मुझे सुनाईं भी। इन सब का कुछ कारण तो अवश्य है। पुरुष नारी की हवा लगने से ही सिहर उठता है, देखती हूँ, कब तक छिपाये रखते हैं ! आखिर खुलकर ही रहेगा।

रायसाहब ने कहा, "चुप क्यों हो गई ?"

"क्या व्यर्थ बकवास करूँ ?"

"अच्छा, बड़ा ज्ञान हो गया है ?"

"तो क्या आपने समझा था कि सदा अज्ञानी ही रहूँगी ?"

"नहीं-नहीं, मैंने तो यह नहीं समझा था कि तुम ज्ञान-शून्य रहोगी। अपनी पत्नी को ज्ञानी बनाना कौन न चाहेगा ? तुम खूब ज्ञान-वृद्धि करो।"

"कैसे करूँ ! क्या कोई पंडित मुझे भी पढ़ाने आता है ? फिर मुझे चूल्हे के ज्ञान से फुरसत कहाँ ? इतने बड़े रायसाहब हैं, लेकिन कोई महाराजिन नहीं ठहरती। दस-पाँच दिन काम किया फिर चलती बनीं।"

"अब तो दो महराजिन हो गईं।"

कमला मुँह सिकोड़कर बोली, "कहने के लिए हो गईं।"

"क्यों ?"

"चार-छः दिन में ये भी चल देंगीं। इनकी शक्ल सूरत काम करने की नहीं मालूम होती। हाँ, पुरोहित जी वाली माहाराजिन आवे तो नहीं कह सकती।

"क्यों पुरोहित जी वाली ही महराजिन क्यों आयेगी ?"

"यों ही, चाल-ढाल से ऐसा मालूम होता है।"

कमला के इस व्यंग को रायसाहब न समझ सके। उन्हें कमला की शाम की बातों का ध्यान न था। साधारण बातें कर रहे थे, और कमला का सन्देह अधिक पुष्ट होता जा रहा था। शान्ति का स्वरूप देखते ही रायसाहब के रखने के कारण कमला को निश्चित कर रहा था। वह उनके मुख से भी कुछ शब्द कहला लेना चाहती थी। अतः रायसाहब की बातों से उसकी भी पूर्ति हो रही थी।

रायसाहब भोजन कर चुके थे, पान खाया और पलंग पर लेट गये। कमला रायसाहब से अलग रहना चाहती थी; अतः बोली :

"आज मेरी तबियत खराब है।"

कुछ आश्चर्य में आकर रायसाहब ने कहा, "तुम्हारी तबियत खराब है ? डाक्टर को नहीं दिखाया ? कह कर रायसाहब ने अपना हाथ बढ़ाया और शरीर का स्पर्श कर के कहा, "कोई खास बात तो नहीं है।"

कमला मुस्कराई और नजर तिरछी कर के बोली, "अच्छा, इन्हीं डाक्टर साहब को दिखलाने के लिए आप कह रहे थे तो मैं इन डाक्टर साहब के लिए बीमार नहीं हूँ।" आँखें संकोच से दब गई और दोनों हँस पड़े।

"कमला ! आज मुनीम जी की करामात तो तुम्हें बतलायी ही नहीं। न जाने कितने किसानों को उनके घरों से निकाल आये हैं। बेचारे दुःख के समुद्र में डूबे होंगे।"

कमला आश्चर्यपूर्वक कहने लगी, "मुनीम जी ने किसानों को घर से कैसे निकाला है ? बिना आपकी राय लिए जमीदारी के कामों में वे दखल नहीं दे सकते। यदि कोशिश भी करें तो कोई मानने के लिए तैयार न होगा।"

"ये सब बातें कारण जानने के पहले की है। पहले बात तो सुन लो।"

कमला मुँह बनाती हुई बोली, "अच्छा सुनाइए।"

रायसाहब मुनीम जी की करामात बतलाने लगे—"गोविन्दपुरा के किसानों के खिलाफ़ बेदख़ली का मुकदमा दायर किया था। दस वर्ष का झूठा इन्तख़ाब पटवारी से लेकर अदालत में अपना कब्ज़ा साबित कर उन गरीबों को बेदखल करा दिया। इससे किसान के परिवार दुःखी होंगे। कल शाम को खाना न बना होगा। किसानों से जमीन चली गई, मानों सब लुट गया और रहता ही क्या है उन बेचारों के पास।"

कमला ने कहा, "अदालत झूठा फैसला तो नहीं दे सकती।"

"हाँ, अदालत झूठा फैसला नहीं दे सकती। लेकिन उसे क्या मालूम ? जो दौड़-धूप में काफी निपुण हुआ, वही अपना पक्ष बलवान बना लेता है और अदालत को मानना पड़ता है। उनके बाप-दादों के ज़माने से ज़मीन उन्हें मिली है। उनका सुधार किया है, लेकिन आज छलछद्म न जानने की वजह से अपनी साबित न कर सके। कितने आश्चर्य की बात की ?"

कमला ने कहा, "क्या मुनीम जी ने इस सम्बन्ध में आपसे कभी पूछा नहीं था ?"

"पूछा था, किन्तु इस रूप में नहीं। उन्होंने कहा था, कि कुछ गोविन्दपुरा के बदमाश किसान और गाँव वालों को परेशान करते हैं। उनके सुधार के लिए उन पर मुकदमा दायर करना जरूरी है; किन्तु ऐसा न कर किसानों को निकालने के लिए मुकदमा दायर कर दिया। जिस के फल स्वरूप गाँव भर के किसान अपने घर-द्वार से बेदख़ल किये जा रहे हैं। मैं तो इस नीति को उचित नहीं समझता।"

कमला ने कहा, "मुनीम जी ने भी आखिर कुछ सोचकर ही किया होगा। इतने दिन से काम कर रहे हैं। कभी नुकसान नहीं चाहा, तो आज ही दूसरों का नुकसान कर स्वयं कैसे नुकसान उठाये होंगे।

हाँ, यदि दूसरों को लाभ पहुँचाये होते तो यह भी मान लिया जाता कि अपना भी कुछ नुकसान किया होगा।

रायसाहब ने कहा, "तुम क्या समझो ? स्त्री यदि इतना समझने लगतीं तो काम ही क्यों बिगड़ता। इससे सबसे बड़ा नुकसान यह हुआ कि गरीब किसानों के खिलाफ अदालत में खड़े हुए, फिर सही बात झूठी करने के लिए तरह-तरह के प्रयत्न किए। जीत कर पाया क्या ? गरीब किसानों की बेदखली। फिर भी अभी किसान संतोष नहीं कर बैठेंगे। अपील में आज कल गरीबों के ही पक्ष में फैसला होता है। वहाँ तो मेरी धाक न चलेगी। हजारों रुपये खर्च होंगे, और बदनामी ऊपर से। साथ ही मुकदमेबाजी से आपसी प्रेम-सम्बन्ध भी टूट जायगा। हम किसी तरह की मदद उनसे न ले सकेंगे। यदि अपील में भी हार जायेंगे तो बेदखली आन्दोलन चलायेंगे। जानें जायेंगी, महापाप होगा। इससे बढ़कर और क्या नुकसान हो सकता है ? उनसे तो मिल कर काम करना अच्छा होता है उन्हें मालूम भी न हो और काम भी निकल जाय।"

कमला रायसाहब की बातें ध्यानपूर्वक सुन रही थी और सोचती थी कि जमींदार किसानों से दबने में अपना अपमान समझते हैं, लेकिन रायसाहब जीतने को ही बुरा समझ रहे हैं। फिर बोली, "इसके लिए आपने क्या सोचा ?"

मैंने मुनीम जी से कह दिया कि कल किसानों के यहाँ गोविन्दपुरा चलूँगा और समझौता करके जमीनें लौटा दूँगा।

कमला ने कहा, "इससे आप की ही मानहानि होगी। किसान हारने पर भी विजयी होंगें। वे आपके पास नहीं आये और आप उनके पास जा रहे हैं। किसान और लाट साहब बन जायेंगे। समय पर लगान देना भी बंद कर देंगे।"

"तुम नहीं समझतीं। मैं जाऊँगा और उनसे समझौता करूँगा। हजार दो हजार रुपये लेकर वापस चला आऊँगा। किसान जो

आय-निधि है, यदि उन्हें प्रसन्न रखा जाय तो रुपया ही रुपया देते हैं। हाँ, उनको नुकसान पहुँचाने से वे भी नुकसान पहुँचाते हैं। यह तो संसार का नियम है, जो जिसके साथ जैसा करता वह भी उसके साथ वैसा ही व्यवहार करता है। दूकानदारी के तरीके भिन्न होते हैं। व्यापारियों से मैं पैसे निकाल लेता हूँ, और उन्हें अखरता भी नहीं। इसी तरह किसानों से भी रुपये ले लूँगा और वे आनन्द से देंगे। मेरे पहुँचने पर किसान गद्गद् हो जायेंगे।"

"चलिए, अब के किसान नहीं हैं ये स्वतंत्र भारत के किसान हैं; धोखा नहीं खा सकते। नेताओं ने उन्हें पढ़ा-लिखाकर खूब चतुर बना दिया है। पहले, रोज किसानों का जमघट कोठी पर लगा रहता था; अब दीवाली, दशहरा भी नहीं झाँकते।"

"इससे क्या ! मेरे यहाँ आवें या न आवें। उनके आने से मेरा नुकसान ही होता था फायदा तो होता नहीं। फिर मीठे वचन बोलने वाला आदमी कभी धोखा नहीं खा सकता।"

"अच्छा, आप मीठे वचन बोलने वाले हैं। मैं आज तक न समझ पाई।"

"क्यों अभी तक तुमने क्या समझा था ?"

"मैंने तो कुछ नहीं समझा था लेकिन........."

"हाँ-हाँ, कहो।"

कमला मीठे वचन से शान्ति पर कटाक्ष करने जा रही थी पर उचित न समझ चुप होगई। राय साहब किसानों के ही सम्बन्ध में समझ रहे थे। क्योंकि वे किसानों को राजी करने की धुन में मस्त थे। रायसाहब यह दिखलाना चाहते थे कि मुनीम जी ने जिनसे झगड़ा पैदा कर मुकदमा दायर किया है, उन्हीं से मैं समझौता कर हजार-दो-हजार रुपये शाम तक लेकर लौट आऊँगा और किसी पर जुल्म भी न होगा। अपनी खुशी से स्वतः देंगे।

"किसानों को अपने खिलाफ होने का अवसर न देना चाहिए। अपना कुछ नुकसान सहकर भी उन्हें लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए। उनकी फटी बंडी देखकर तिरस्कृत करना अनुचित है। फिर हम जमीदारों के लिए तो वही सब कुछ हैं।"

कमला ने कहा—अच्छा ! अब मैं भी समझौते के प्रस्ताव का समर्थन करती हूँ। ग्यारह से अधिक हो रहे हैं। नींद बारबार कष्ट उठा कर आती है और हताश लौट जाती है। उत्तम होगा कि उसे आश्रय दे दिया जाय।"

रायसाहब हँसते हुए बोले—"समझौते का प्रस्ताव स्वीकार है।" कमला की ओर हाथ बढ़ाते हुए बोले, "लेकिन..........।"

: ३० :

कीर्तिसिंह के चले जानेके बाद ठाकुरसाहब चिंतित बैठे सोच रहे थे। मुझे आशा न थी कि कीर्तिसिंह धोखा देगा। उसके बापदादों ने मेरे यहाँ जीवन भर सेवाएँ की थीं—अपने कर्तव्य पर अटलरहे थे। किन्तु आज कीर्तिसिंह सब उपकारों को भूलकर मेरे ही साथ कृतघ्नता करने का दुःस्साहस कर रहा है। नहीं; मेरे साथ नहीं, बल्कि अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहा है। जिस दिन मारा-मारा फिरता था, उस दिन गरीब किसानों की सहायता न सूझी। रोजी लगते ही नेतागीरी सूझी। लगी रोजी छोड़ना आभाग्य नहीं तो क्या है ?

दीवान साहब ने कहा "ठाकुर साहब ! आज कीर्तिसिंह से कैसे बातें शुरू हुई ? सदा आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार रहता था; किन्तु आज आपके विरोध की बातें कैसे निकलीं ?"

ठाकुरसाहब नें कहा, "हटाइए, क्या कीर्तिसिंह के बिना काम न होगा ? हजारों कीर्तिसिंह रोज आते हैं; जरा दिमाग-बढ़ गया है। कुछ दिनों में आपही ठंडा हो जायगा।"

दीवानसाहब इन सब बातों को न समझ सके थे। उन्हें तो किसानों

से पैसा ऐंठकर ठाकुर साहब को प्रसन्न करना था, पर उसमें भी असफलता ही दृष्टिगोचर हो रही थी।

उपाय पूछने आये थे; किन्तु यहाँ दूसरा ही काण्ड रचा देखा। ठाकुरसाहब ने दीवान साहब से कहा :

"आप बताइए अपना काम। अभी चंदा वसूल होने में कितनी देरी है ?"

दीवान साहब चिंतित होकर बोले, "अब तक सिर्फ पाँच सौ रुपये इकट्ठे हो पाये हैं; उसमें भी तीन किसानों ने मिल कर ही दिया है। और कोई एक कौड़ी देने को तैयार नहीं। हर एक यही कहता है कि मैं चन्दा नहीं दूँगा, बल्कि गाँव छोड़कर निकल जाऊँगा। बीच-बीच में कीर्तिसिंह से पूछने की बातें करते थे।"

"अच्छा, कीर्तिसिंह से पूछने की बातें कर रहे थे ?"

"हाँ साहब !"

"कीर्तिसिंह से पूछने से क्या मतलब !"

"यही कि यदि वह कहेंगे तो रुपये देगा, नहीं, तो सत्याग्रह करेगा।"

"कीर्तिसिंह पहले से भी इस तरह षडयंत्र रचता था क्या ? कई बार किसानों ने लगान-बंदी आन्दोलन चलाया, उसमें भी कीर्तिसिंह का हाथ रहा होगा।"

"हम नहीं कह सकते साहब ! लेकिन जब ऐसी बात नहीं थी तो आज ही क्यों लड़ने के लिए तैयार हुआ ?"

ठाकुर साहब ने सिर हिलाते हुए कहा "हूँ, अब मैं समझा।" "तो गाँव में उसका प्रभाव है ?"

"हाँ, साहब, उसे सब जानते हैं। गाँवों में जाकर घर-घर घूम आता है। छोटे-बड़े सभी उस पर विश्वास करते हैं। आज मैंने सभी किसानों को खूब फटकारा और घर से निकालने की धमकियाँ दीं। जमीन से बेदखल कराने को कहा पर एक न माने; बल्कि आपके पास

शिकायत करने के लिए करीब दो सौ किसान आ रहे हैं। अभी कुछ ही देर में आ-जायेंगे।"

बैठक का वातावरण गर्म देखकर प्रभावती भी निकल आई। सब जा चुके थे। केवल दीवान साहब ठाकुर साहब से बातें कर रहे थे। बैठक में पहुँच कर प्रभावती ने पूछा !

"आज लड़ाई कैसे हो रही थी ?"

ठाकुर साहब के बोलने के पहले दीवान साहब बोल उठे;

"कीर्तिसिंह का घमण्ड बढ़ गया है। अब वह किसी को कुछ नहीं समझते। दशहरे के उत्सव के लिए किसानों से चन्दा लेने का विरोध कर रहे थे और काम छोड़कर चले गये।"

प्रभावती ने कहा, "काम छोड़ कर चले गये ? बड़ा बुरा हुआ। एक कीर्तिसिंह ही ऐसा था जो कठिन कार्यों के लिए उत्साहपूर्वक आगे बढ़ता था। उसे निकालना अनुचित हुआ। वह किसानों से मिल कर बिद्रोह करेगा। इससे अशान्ति फैलेगी।"

ठाकुर साहब ने कहा, "यह तो मुझे भी मालूम है। कीर्तिसिंह जैसा उत्साही कार्यकर्ता हमारे यहाँ कोई नहीं था। लेकिन अपने अभाग्य से वह स्वयं छोड़ कर चला गया; मैं क्या कर सकता हूँ। मेरे उपकारों को भूलकर मेरे ही साथ कृतघ्नता करने का दुःस्साहस कर रहा था। मेरे ही कार्यों में विघ्न !"

प्रभावती ने कहा—"लेकिन उत्सव के लिए किसानों से चन्दा वसूल करने का विरोध किया तो कोई अनुचित नहीं किया। बेचारे किसान लगान अदा करदें यही बहुत है। घर में बीमार आदमी की दवा नहीं करा पाते और न बच्चों को पढ़ा पाते हैं। तन ढकने के लिए कपड़ा नहीं फिर चन्दे देने में कैसे समर्थ हो सकते हैं ? दीवान साहब ! आप बताइए किसानों की कैसी स्थिति है ?"

दीवान साहब मौन रहे। फिर प्रभावती बोली, "मैं उत्सव मनाना उचित नहीं समझती। इस युग में जातीय दृष्टिकोण से उत्सव

मनाना द्वेष का सूत्रपात करना है। एक-दूसरे को देखकर लोग अपनी-अपनी जातीय भावनाओं से संघर्ष करने के लिए प्रस्तुत होंगे। हिन्दू-मुस्लिम दंगे जातीय संगठन के ही दुष्परिणाम हैं।"

प्रभावती की बातें सुन क्रोध में आकर ठाकुर साहब ने कहा, "प्रभा, मेरे प्रबन्ध में तुम्हें दखल देने का कोई अधिकार नहीं। मैं स्वयं कर लूँगा। देखता हूँ, कीर्तिसिंह कैसे किसानों को चन्दा देने से रोकता है। एक घंटे के अन्दर ही दस हज़ार रुपये इकट्ठे करा लूँगा। न देने पर उनके घर फुँकवा दूँगा।"

प्रभावती गम्भीर मुद्रा में होकर बोली, "लेकिन इसका परिणाम क्या होगा ? इस ओर भी आपने विचार किया है ? एक आदमी के द्वेष से सैकड़ों आदमियों का अहित होगा ? फिर कीर्तिसिंह की शक्ति की क्या परख ? गरीब किसानों को चूसना कोई वीरता नहीं, पाप है, अधर्म है।"

दीवान ने कहा, "बहू जी दुनिया में सब पाप ही पाप है या कुछ पुण्य भी।"

"दोनों हैं। प्रसन्नता से दूसरी आत्माओं को सहयोग देकर सुखी बनाने के लिए जो कार्य किया जाता है वही पुण्य है और क्रोध से दूसरों को अपमानित कर कष्ट देना ही पाप है।"

ठाकुर साहब ने कहा, "मुझे इन पुण्य-पापों से कोई मतलब नहीं।"

प्रभावती मुस्करा कर बोली, "इस संसार में प्राणिमात्र पुण्य-पाप से अलग नहीं रह सकते। फिर आपही कैसे हो सकते हैं। स्वयं अपने लिए जो कार्य किया जाता है, उसमें भी पुण्य-पाप निहित है। आवेश में आकर काम करना हानिकारक होता है। यदि आप गरीब किसानों की स्थिति जानते तो उत्सव के लिए उनसे रुपया न वसूल करवाते। सर्व प्रथम गरीब बन, संपूर्ण ऐश्वर्यमद को तिलांजलि देकर उन किसानों के साथ कुछ दिन अपना जीवन बिताइए, फिर यदि आपको किसी

प्रकार का चन्दा इकट्ठा करानें का साहस हो, तब कहिए।" भारतीय किसान अभी इतने धनवान नहीं हैं।"

× × × ×

आठ बज रहे थें सहसा कोलाहल सुनाई पड़ा। दीवान साहब बोल उठे, "ठाकुर साहब, यह कोलाहल किसानों का ही मालूम होता है।"

ठाकुर साहब, दीवान साहब और प्रभावती सहित बाहर निकले। देखा, "सामनें क्रान्ति करने के लिए किसानों की भीड़ जमा थी। एक दो प्रमुख किसान आगे बढ़ कर नारे लगा रहे थे—'इन्कलाब जिन्दाबाद, गरीब किसान-लूटे गये। हम क्यों आये हैं, मरने आये हैं। ठाकुर साहब ने शान्त होनें का इशारा किया। लोग बातें सुनने के लिए शान्त हो गये। वह बोले :

"क्या, बात है ? तुम लोग क्यों हल्ला मचा रहे हो ?"

सब एक स्वर से बोल उठे, "हम लोग लूटे जा रहे हैं।"

सब जानते हुए भी ठाकुर साहब ने कहा, "कौन लूट रहा है ?"

"हुजूर, दीवान साहब से पूछिए।" उपस्थित भीड़ में से आवाज़ आई।

ठाकुर साहब की बगल में ही दीवान साहब खड़े थे। ठाकुर साहब दीवान साहब की ओर देख कर चुप रहे। फिर बोले, "तुम लोगों से चन्दा माँगा गया, उसी को लूटना कह रहे हो क्या ?"

"हाँ सरकार; हम लोग लुट गये, बच्चे भूखों मर रहे हैं।" सभी ने एक स्वर में कहा।

फटी बंडी पहने, पगड़ी बाँधे, बूढ़े-जवान तथा बच्चे, पेट-खोले, आँखों में आँसू भरे खड़े थे। ऐसा मालूम हो रहा था मानो मरने के लिए आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हों। प्रभावती से यह दारुण दुःख न देखा गया। वह बोल उठी :

"जाओ, तुम लोगों से चन्दा नहीं लिया जायगा।"

अपार हर्ष-ध्वनि से आकाश गूंज उठा। मरने के लिए आये थे,

जीवन-दान पाया। बच्चों की भूख मिटने की आशा हुई। ठाकुर साहब की जय बोल उठे। एक बूढ़ा घबराया हुआ आगे बढ़ा और बोला, "हजूर जे दइ चुका हयँ।"

प्रभावती मुस्करा कर बोली, "उनका चन्दा वापस कर दिया जायगा।"

सब किसान प्रसन्न हो अपने घरों को लौट पड़े। ठाकुर साहब का सारा शरीर क्रोध से जला जा रहा था; किन्तु एक दिन पहले ही प्रभावती से विवाद हो चुका था, इसलिए पुनः संघर्ष नहीं बढ़ाना चाहते थे। प्रभावती भी उनकी नाराज़गी को समझ रही थी, लेकिन किसानों के सामने जीवन-मरण का प्रश्न था। अतः उत्सव को कम उपयोगी समझ कर किसानों को चन्दे से मुक्त कर दिया।

दीवान साहब चलने के लिए तैयार होते हुए बोले, "तो चन्दे की रकम वापस कर दूँगा ?"

कुछ क्षण ठाकुर साहब मौन रहे फिर बोले, "अब भी सन्देह ! कल ही जाकर वापस कर दीजिए।"

दशहरे का उत्सव गरीब किसानों की भूख शान्त करने में परिवर्तित हो गया।

प्रभावती-के सहित ठाकुर साहब सीढ़ी की ओर बढ़े और दीवान साहब अपने घर की ओर चल दिये।

: ३६ :

रायसाहब समय पर उठकर सात बजे तक सब कामों से निवृत्त हो मुनीम जी की प्रतीक्षा में बैठे थे। आने में देरी समझ, आदमी भेज कर बुलवाया। मोटर तैयार थी, मुनीम जी के आने पर गोविन्दपुरा के लिए चल दिये। ड्राइवर ने पूछा :

"किस तरफ से चलना है ?"

रायसाहब ने उत्तर दिया, "सीधे सारनाथ होकर गोविन्दपुरा पहुँचना है।"

ड्राइवर निर्दिष्ट स्थान की ओर तेजी से मोटर ले जा रहा था। मुनीम जी रायसाहब की बगल में बैठे सोच रहे थे—कितनी ही शिकायतें हों। आज तक रायसाहब ने कभी मुझ पर अविश्वास नहीं किया, पर कल शाम को न जाने कैसी बात होगई ! मैंने जो भी कार्य किया है, सब उन्हीं के फायदे के लिए, फिर भी नाराज होगये। एक साल लगान न वसूल हो तो सारी उदारता मिट जाय। सब तरह से परिश्रम करके लगान वसूल कर लेता हूँ। नहीं, कौड़ी न मिले। मैं काम छोड़ दूँगा तब पता चलेगा। कितनें परिश्रम के बाद मुकदमें में विजय हुई, किन्तु इस भले आदमी ने बदले में एक शब्द भी धन्यवाद में नहीं कहा। मेरे काम की कौड़ी कीमत नहीं व्यर्थ ही दिन-रात मरता फिरा।

रायसाहब ने कहा, "मुनीम जी, आप क्या सोच रहे हैं।"

मुनीम जी ने सतर्क होते हुए उत्तर दिया, "कुछ नहीं साहब !"

रायसाहब ने कहा, "मैंने इसीलिए पूछा कि आप चुपचाप बैठे हैं, कुछ बोले नहीं। फिर आपकी मुख-मुद्रा कुछ चिन्तित सी मालूम होती है।"

मुनीम जी बनावटी मुस्कान लाने का प्रयत्न करते हुए बोले, "मैं चिन्तित तो नहीं हूँ।"

रायसाहब ने कहा, "अच्छा कोई बात नहीं है, हाँ, आपसे मैंने किसानों की बेदखली के लिए मुकदमा चलाने को तो नहीं कहा था। आपने बड़ी गलती की। चारों ओर बदनामी हुई, इसका तो आपको ख्याल रखना ही चाहिए। थोड़ी सी वस्तु के लिए व्यर्थ में बदनाम होना अच्छा नहीं होता। किसानों से रुपये वसूल करने के बहुत-से तरीके हैं। आप बुजुर्ग हो गये, पर विचार से काम नहीं करते।

"गाँव वालों से काम निकालने के लिए यह आवश्यक होता है कि गांव के एक-दो प्रमुख आदमियों को छूट देकर अपनें पक्ष में कर लें, फिर वही स्वयं गाँव भर से रुपये इकट्ठे करानें में मदद करेंगे। आवश्यकता पड़ने पर लड़ेंगे भी। पूरा नौकर का काम करेंगे, गाँववालों को

उभरने न देंगे, लेकिन छूटवाली बात और दूसरा कोई न जानने पावे ।"

मोटर सन्न से सारनाथ के आगे से निकल गई । कुछ ही क्षणों में तीस मील की यात्रा समाप्त कर गोविन्दपुरा में पहुँची । किसानों ने मुकदमे में हार कर वापस आने पर तय किया था कि ज़मीन न छोड़ेंगे, बल्कि बलिदान हो जायेंगें । गाँव भर के लोग इकट्ठे होकर सत्याग्रह करने के सम्बन्ध में विचार कर रहे थे । सायंकाल रायसाहब के घर पहुँचकर प्रदर्शन करना चाहते थे, किन्तु रायसाहब स्वयं उपस्थित हो गये । देखकर किसान लोग आगे बढ़ते हुए कह रहे थे, "आज ही ज़मीन से बेदख़ल करने आरहे हैं ।"

मोटर से उतरते ही रायसाहब ने भीड़ देखकर सोचा—शायद किसान लोग मुकदमें के सम्बन्ध में ही विचार करने के लिए इकट्ठे हुए हैं ।

किसानों ने उठकर सलाम किया, और खातिरदारी के साथ बैठाया । एक-दो बूढ़े किसान मुकदमेंबाज़ी पर खेद प्रकट कर पुराने सम्बन्ध की चर्चा कर रहे थे । रायसाहब अधिक देर तक बरदाश्त न कर सके; बोले :

"आप लोग शायद सोचते होंगे कि मुकदमे में रायसाहब जीत गये हैं, बेदख़ली कराने आये होंगे । लेकिन मैं अपने किसी किसान भाई को बेदख़ल करने नहीं आया हूँ, बल्कि उनकी सुविधा के लिए और तरह-तरह के सुझाव लेने आया हूँ । कुछ बातों का संदेश तो मुनीम जी के द्वारा मिलता रहा. लेकिन मैंने स्वयं आकर देखना चाहा ।"

किसानों ने बड़ी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा, "आपने बड़ी कृपा की ।"

किसानों के नम्र शब्द सुनकर रायसाहब प्रसन्न हो गये । फिर बोले, "जिन किसानों से मुकदमें बाजी हुई शायद उन सब को मैं पहचानता भी नहीं । कहीं-कहीं हमारे किसान भाई भी गलती कर बैठते हैं । यह

तो आप जानते ही हैं। आज बड़े भाग्य से किसानों का राज्य कायम हुआ है। हम सब किसानों के सेवक हैं, तो कहीं मालिक पर सेवक नाराज़ हो सकता है ? हाँ, मालिक का कर्तव्य होता है कि वे अपने सेवकों का भी ध्यान रक्खें।"

रायसाहब की इस तरह बातें सुनकर भोले किसान गद्‌गद होकर सोचने लगे, "रायसाहब बड़े अच्छे हैं। मुकदमा जीत कर भी किसानों को बेदखल न करेंगें। बीच के काम करनेवाले ही घपला मचा देते हैं। रायसाहब के पिता जी भी ऐसे ही थे। उनके और किसानों के बीच कभी झगड़ा नहीं हुआ।"

सब किसान हाथ जोड़कर कहने लगे, "नहीं, सरकार ! मालिक आपही हैं।"

"नहीं, तुम नहीं समझते हो। आज तुम में सबसे बड़ी ताकत है; जिसको चाहो राजा बना दो और जिसको चाहो प्रधान मंत्री बना दो, सब तुम्हीं लोग कर सकते हो। देखते ही हो तुम लोगों से वोट माँगने के लिए कितने बड़े-बड़े आदमी आते हैं, यदि कोई महत्त्व न होता तो क्यों आते ?"

रायसाहब की बातें सुनकर सभी किसान गदगद हो गये। उन्हें यह आशा न थी कि रायसाहब मुकदमें में जीतकर भी हम किसानों को बेदखल न करेंगे।

किसान रायसाहब के जलपान का प्रबन्ध कर रहे थे, दूध काफी था, लेकिन चीनी सम्पूर्ण गाँव में तलाश करने पर भी आधा पाव से ऊपर न मिल सकी। तुरत दूध गरम कर रायसाहब के सामने हाजिर किया। रायसाहब ने कहा, "आप लोगों ने बेकार ही कष्ट किया, हम तो जलपान करके आये थे।"

"हाँ सरकार, आप भूखे नहीं हैं लेकिन, पत्रपुष्प हम लोगों का भी स्वीकार कर लीजिए। हम लोगों के पास आपके खिलाने के योग्य कोई चीज़ भी तो नहीं है।"

"नहीं-नहीं, सभी चीजें हैं। दूध से बढ़कर और क्या हो सकता है ? शहरों में तो पानी पीते-पीते लोगों का होश बिगड़ जाता है।

"हाँ, सरकार आपके कहने को यही है।"

रायसाहब ने दूध पीते हुए कहा, "मैं आज ही लौट जाना चाहता हूँ। सिर्फ झगड़ा शान्त करने आया था।"

"सरकार, हम लोग झगड़ा करने योग्य नहीं हैं।" किसानों ने कहा।

"हाँ-हाँ, मैं समझता हूँ। जितने रुपये लगाकर मुकदमा लड़ोगे उतने से कोई दूसरा काम हो जायगा। हजारों रुपये लग जाते हैं, लाभ कौड़ी का नहीं होता।"

"हाँ, सरकार।" (सब किसानों ने स्वीकार किया।)

रायसाहब आराम करने लगे, किसानों ने तय किया कि रायसाहब मुकदमा मिटाने आये हैं। जीत कर भी बेदखल न करेंगे तो कुछ अपना लाभ ही सोचे होंगे। उन्होंने कहा, "कुछ नहीं, फिर भी हम लोगों को सोचना ही चाहिए, यदि जमीन से बेदखल कर देते तो हम लोगों की कोई नहीं सुनता। नेता लोग भी आते हैं, लम्बे-लम्बे भाषण दे जाते हैं, लेकिन वक्त पड़ने पर कोई साथ नहीं देता ? पानी में रह कर मगर से बैर अच्छा नहीं होता। जाते समय रायसाहब को कुछ रुपये भेंट कर देना चाहिए।

समय हो गया था रायसाहब को भोजन करवाया और स्वयं भी किया। फिर रुपये के प्रबन्ध में जुट गये। गोविन्दपुरा बड़ा गाँव है दूकानें नहीं हैं; केवल एक यही कमी है, नहीं तो पूरा कस्बा है। दो बजे तक एक हजार रुपये का प्रबन्ध हो गया। किसी ने उधार लिया, किसी ने जेवर रखा और किसी ने जमीन ही रेहन रखी। जिस किसी तरह हो सका, रुपये सब ने दिये। जो रुपया देने से सर्वथा असमर्थ थे, उन्होंने गल्ला ही दिया। यहाँ तक की अपने बच्चों के लिए कुछ न रख कर सब दे दिया।

रायसाहब के चलने का समय हो गया। चार बजने में कुछ ही समय शेष था। वर्षा की भी आशा न थी, चलने के लिए तैयार हो गये। किसान भी अपनी तैयारी कर उपस्थित हो गये थे। चलते समय गाँव का एक प्रमुख किसान आगे बढ़ा और रुपये देते हुए कहा, "यह आपके लिए विदाई है सरकार।

रायसाहब ने कहा, "नहीं-नहीं, मेरे लिए विदाई क्या? आप लोग लगान देते हैं, वही मेरे लिए सब कुछ है। फिर आप लोगों की कृपा भी तो चलती है। आप लोग लगान भरने के बाद फिर कैसे गुजर कर पा हैं। रुपये वापस करने लगे।

सब किसान एक साथ बोल उठे, "नहीं साहब, ऐसा नहीं हो सकता आपको रुपये लेने पड़ेंगे।" रायसाहब आगे एक शब्द भी न बोल सके। उन गरीबों की उदारता से आत्मा दब गई, सोचने लगे—सच में यही देश के सेवक हैं; और मोटर पर बैठ गये।

मोटर घरघरायी, किसानों ने जय-नाद किया और रायसाहब हाथ जोड़े हुए क्षण भर में ही बगीचे के आगे निकल कर आँखों से ओझल हो गये।

: ३२ :

ठाकुर साहब शयन-गृह में पहुँचकर बोले, "प्रभा, तुम फिर अपने कर्तव्य से विमुख होने लगी हो। तुमने यह नहीं सोचा कि विजयदशमी के उत्सव मनाने की बात चारों ओर फैल चुकी है। उसके बन्द होने से कितनी बड़ी बदनामी होगी?"

प्रभावती ने कहा, "गरीब किसानों की हत्याएँ तो बन्द होगईं। क्या इसमें नेकनामी नही है। मैं तो समझती हूँ, केवल मनोरंजन के लिए किसी को कष्ट देना उचित नहीं। हाँ, यदि सब का मनोरंजन होता हो तो कोई बात नहीं। किन्तु, विजयदशमी के उत्सव से किसानों के मनोरंजन का कोई सम्बन्ध नहीं। फिर भी मैं अपनी धृष्टता के लिए क्षमा चाहती हूँ।"

ठाकुर साहब आगे कुछ न बोल सके। प्रभावती उठी, सुग्गी को आवाज दी और वह खाना लेकर उपस्थित हुई। दोनों ने प्रेम की बातें करते हुए भोजन करना शुरू कर दिया। रसेदार आलू में नमक न था। प्रभावती बोली, "अरे ? सुग्गी आज रविवार का व्रत मना लिया क्या ?"

सुग्गी घबराई हुई सामने आकर बोली, "का हुकुम है मालकिन ?"

"हुकुम क्या है ! साग में नमक नहीं है।"

सुग्गी सन्न रह गई ! तुरंत पिसा हुआ नमक थाल के एक कोने में रख दिया। ठाकुर साहब ने कहा, "तुम्हारा श्याम खाना खा चुका ?"

प्रभावती मुस्कराकर बोली, "हमारा ही भर क्यों आपका नहीं। वह दिन रहते ही खा चुका था, और आठ बजे सोगया। अब हम लोगों की..."

"हाँ-हाँ, देरी क्यों पलंग बिछा है।" ठाकुर साहब ने कहा।

× × × ×

श्याम को आये कई महीने हो गये। प्रभावती अपने बेटे के समान उसके पालन-पोषण में लगी रहती थी। श्याम प्रभावती को "माँ समझने लगा। उसे घर से निकलने की सारी आपत्तियाँ भूल गईं। कभी-कभी गिरीश की याद आती थी, पर कुछ देर बाद ही शान्त हो जाती। वह राजसी सुख-भोग रहा था।

प्रभावती श्याम के अधिक स्नेह के कारण ठाकुर साहब की सेवा अधिक समय तक नहीं कर पाती थी। इससे ठाकुर साहब खिन्न रहने लगे। कभी-कभी झुँझला कर श्याम को घर से निकालने की बातें भी करने लगते थे। पर प्रभावती उनकी बातों पर ध्यान न देकर अपना काम करती रहती थी। वह श्याम की पढ़ाई के बारे में सोच रही थी। एक मास्टर को घर पर लगा लिया गया। श्याम पढ़ने में बड़ा तेज था। मास्टर खूब परिश्रम से पढ़ाते थे। थोड़े ही दिनों में

कक्षा चार में दाखिल कराने योग्य बना दिया।

स्कूल खुलते ही श्याम को दीवान साहब के साथ दाखिले के लिए भेजा। हेडमास्टर साहब दाखिला रजिस्टर निकाल कर बोले, "लड़के का क्या नाम है।"

दीवान साहब ने कहा —"श्याम पंडित।"

मास्टर साहब ने कहा—"श्याम पंडित या पंडित श्याम।"

दीवान साहब—"ऐसे ही कुछ है।"

मास्टर साहब अभी आपने क्या कहा है ?

दीवान साहब—"मैंने ?"

चिढ़ कर मास्टर साहब ने कहा, "हाँ तुम्हीं ने।"

दीवान साहब, 'श्याम पंडित।"

मास्टर साहब—"पंडित तो जाति है। ब्राह्मण को पंडित कहते हैं, आपतो ठाकुर साहब के यहाँ से आये हैं। क्षत्रियों के यहाँ लाल कुँवर तथा ठाकुर नाम के साथ जुड़ता है। आप पंडित कैसे कहते हैं ?"

दीवान साहब ने कहा, "अब तक तो हमने एक गाँव का लगान वसूल कर लिया होता।"

मास्टर साहब—"हाँ, हाँ, दीवान साहब, लगान वसूल करने और लड़के पढ़ाने में बहुत बड़ा अन्तर है। बिना पढ़ा आदमी भी लगान वसूल कर सकता है, लेकिन बच्चे नहीं पढ़ा सकता। इसके लिए शिक्षित, चरित्र-वान तथा प्रतिभाशाली होना बहुत जरूरी है।"

दीवान साहब ने कहा—"मास्टर साहब आज मुझे भाषण सुनने का अवसर नहीं है, आप जल्दी से नाम लिख लीजिए ; मैं चलूँ।"

मास्टर साहब मन-ही-मन कुपित हुए। पर चुपचाप नाम लिख लिया। फिर पिता का नाम पूछा तो दीवान साहब नहीं बता सके। बच्चे से पूछा तो वह भी उत्तर न दे सका। मास्टर साहब भी जानते थे कि ठाकुर साहब के कोई लड़का नहीं है, यह किसी दूसरे का ही लड़का है।

दीवान साहब के न बतलाने पर मास्टर साहब ने कहा, "तब आप क्या नाम लिखाने आये हैं ? पिता का नाम नहीं जानते, जाति नहीं जानते और ठीक से नाम भी नहीं जानते। मेरी समझ में नहीं आता कि आप लगान कैसे वसूल कर लेते हैं।"

दीवान साहब बोले, "अच्छा मास्टर साहब, मैं अभी पिता का नाम पूछ कर आता हूँ। आप नाराज न हों।"

मास्टर साहब, "नाराज नहीं हो रहा हूँ। आप स्वयं सोचिए कि जिस काम के लिए आप आये हैं उसे नहीं जानते। आप अगर नहीं जानते थे तो पूछ कर आते। आपने अपना तो नुकसान किया ही, साथ ही बच्चों की पढ़ाई में भी हर्ज हुआ।"

श्याम को स्कूल में छोड़कर दीवान साहब ठाकुर साहब की कोठी पर चले गये। प्रभावती बैठी सोच रही थी—श्याम ने जिसकी कोख में जन्म लिया है वह समझती होगी कि श्याम इस संसार में नहीं है। किन्तु भगवान् की कृपा से आज स्कूल में पढ़ने गया है, पढ़ लिखकर विद्वान् बनेगा और मेरे साथ माँ का-सा व्यवहार रखेगा। मैं उसे अपनी सम्पूर्ण जायदाद का अधिकारी बनाऊँगी।

दीवान साहब सामने दिखाई दिये। प्रसन्नता से प्रभावती बोली, "दाखिला हो गया ?"

दीवान साहब ने कहा—"नहीं, मैं श्याम के पिता का नाम ही नहीं जानता था।"

प्रभावती की आँखों में आँसू भर आये। बोली, "मुझे भी नहीं मालूम। आप तो श्याम को जानते ही हैं, वह किस तरह हमारे यहाँ पहुँचा है। मास्टर साहब से सम्पूर्ण किस्सा बतला देना। ठाकुर साहब का नाम संरक्षक में लिख लेंगे। दीवान साहब पुनः वापस हुए। मास्टर साहब प्रतीक्षा में ही बैठे थे। बगल में श्याम नीचे की ओर सिर किये बैठा था। दीवान साहब पहुँचते ही बोले, "मास्टर साहब, श्याम के पिता का नाम मालूम नहीं है। यह भूल कर कोठी पर पहुँचा था, तब से

ठाकुर साहब ही पालन-पोषण करने लगे। अब तक इसके माँ-बाप का पता नहीं है।"

श्याम बोल उठा "माँ का पता नहीं है ? कोठी पर बैठी है।"

"मास्टर साहब हँसने लगे। श्याम को अनाथ समझकर मास्टर साहब को दया आगई। पिता का स्थान रिक्त छोड़ संरक्षक के स्थान में ठाकुर साहब का नाम लिख लिया और श्याम को छुट्टी देदी।"

फिर बोले "कल से दस बजे स्कूल आया करना बेटा !"

दीवान साहब श्याम को साथ लेकर वापस कोठी पर पहुँचे। प्रभावती ने श्याम को गोद में उठा लिया। श्याम कहने लगा, "माँ ! दीवान साहब मास्टर साहब से कहते थे कि श्याम के माँ-बाप का पता नहीं है। तुम कहाँ चली गई थीं।"

प्रभावती—"मैं तो यहीं थी।"

श्याम—"तब दीवान साहब क्या कहते थे ?"

प्रभावती "योंही कहते रहे होंगे।"

श्याम—"माँ, बड़े आदमी क्या झूठ बोलते हैं।"

प्रभावती—"बड़े आदमी झूठ नहीं बोलते। मुझे न देखा होगा।"

श्याम—"अच्छा, हमारे बाप का क्या नाम है ?"

इस प्रश्न से प्रभावती मुश्किल में पड़ गई। उसका हृदय दया से भर आया। सोचकर उत्तर दिया—"तुम्हारे पिता का नाम भगवान् हैं बेटा।"

श्याम—"हमारे पिता का सभी लोग सुबह नाम लिया करते हैं।"

प्रभावती—"हाँ ! श्याम पुलकित हो खेलने लगा। प्रभावती अपने काम में लग गई। श्याम खेलते-खेलते ठाकुर साहब के कोठे में पहुँच गया। वहाँ ठाकुर साहब की घड़ी से खेलने लगा। कुछ देर में घड़ी के सब पुरजे अलग-अलग हो गये। श्याम चलना चाहता था। कि ठाकुर साहबआकर बोले "यह क्या ?" घड़ी की हालत देखकर दो चांटे श्याम के गालों पर जमा दिये। श्याम चिल्लाकर रो पड़ा। प्रभावती दौड़ कर

आई। रोते हुए श्याम को उठा लिया और "बोली, क्यों, क्या बिगाड़ रहा था ?"

ठाकुर साहब ने कहा, "पहले अपने लाल की करामात देख लो, फिर बात करो।"

प्रभावती ने कहा, "देख क्या लूँ ! आपको सुरक्षित रखना चाहिए। यह नादान बच्चा क्या जाने ?"

ठाकुर साहब, "तुम तो जानकार की बच्ची थीं तुमने क्यों नहीं रोका ! खबरदार, सामने आया तो खैरियत न समझना।"

प्रभावती—"आपको दया नहीं आती। एक अनाथ बच्चे के लिए इस तरह से कटु शब्द।

क्रोध में आकर ठाकुर साहब ने कहा :

"निकल जाओ मेरे घर से ! बड़ी बच्चे वाली बनी हो।"

प्रभावती—"निकल क्यों जाऊँ ? इस घर में मेरा भी हक़ है। उस दिन इसी श्याम के लिए आपनें कहा था—बेटे तुमने मेरा बड़ा उपकार किया। मैं तुम्हारे इस उपकार के बदले में क्या सेवा कर सकता हूँ, मैं अपनी शक्ति के अनुसार तुम्हारी सेवा करते हुए जीवन भर कृतज्ञ रहूँगा आज उसी उपकार का बदला चुका रहे हैं ?"

ठाकुर साहब प्रभावती के स्मरण दिलाने पर पीले पड़ गये। दो सौ रुपये की घड़ी के स्वार्थ में बच्चे का अमूल्य उपकार भूल गये थे। तुरन्त प्रभावती के पास आये और श्याम को अपनी गोदी में लेते हुए बोले, "बेटे आओ।" श्याम सिसक-सिसक रो रहा था। माँ को छोड़कर ठाकुर साहब की गोद में नहीं गया। ठाकुर साहब ने कहा, "स्कूल में दाखिल हो गया ?"

प्रभावती ने आनन्दमग्न होकर कहा, "हाँ, हो गया। श्याम को आप मारा न कीजिए।"

ठाकुर ने कहा, "पगली, मैं श्याम को क्यों मारूँगा ? घड़ी के पुर्जे सब अलग कर दिये थे इसलिए गुस्सा आगया।

प्रभावती—"चाहे जो भी हो, लेकिन श्याम को कुछ भी न कहिए। उसके बदले मुझे सब कुछ कह लीजिए।" और श्याम की पीठ पर हाथ फेरते हुए उसे अपनी छाती से लगा लिया !

: ३३ :

मोहन कई दिन से स्कूल में पढ़ने लगा था। अध्यापकों को पहल पहल बड़ा आश्चर्य हुआ; कि वह उपस्थिति में भी नहीं बोलता। एकाएक गिरीश के सत्संग से उसका जी पढ़ने में लगने लगा। यह खुशखबरी रायसाहब को सुनाने के लिए स्कूल की छुट्टी होने पर सब अध्यापक कोठी पर उपस्थित हुए। पर पाँच बजे तक रायसाहब वापस न आये थे। अध्यापक दूसरे दिन आने के लिए निश्चिय करके वापस जा रहे थे।

कोठी से निकलते ही मोटर सामने आकर रुकी। ड्राइवर ने उतर-कर फाटक खोला। रायसाहब मोटर से उतरते हुए बोले, "आज मास्टर साहबान एक साथ यहाँ कैसे पधारे हैं ?"

प्रधानाध्यापक ने कहा, "आज आप ही के यहाँ बधाई देने आये हैं।"

रायसाहब—"पधारिए, बड़ी कृपा है।"

बैठक भर गयी। रायसाहब ने बद्री को आवाज लगायी, वह हाजिर होकर बोला :

"हाजिर हइलीं सरकार।"

रायसाहब—"देखो, मोहन के मास्टर साहबान आये हैं. नाश्ते का इन्तजाम कराओ।"

प्रधानाध्यापक—नहीं-नहीं, नाश्ते की कोई जरूरत नहीं है।

रायसाहब—जरूरत क्यों नहीं है, अभी आप लोग स्कूल से आ रहे होंगे।

प्रधानाध्यापक—जी हाँ, स्कूल से ही आ रहे हैं। हम लोग कई दिनों से सोच रहे थे, पर न आ सके। बड़ी खुशी की बात है कि मोहन

अब खूब पढ़ता है। इधर कुछ दिन से गिरीश नाम का एक लड़का आने लगा है। उसके सत्संग से मोहन भी खूब पढ़ता है। अब अपनी कक्षा में मोहन का दूसरा स्थान है। गिरीश है तो गरीब लड़का, लेकिन पढ़ने में बड़ा तेज है। कभी-कभी बिना खाये ही स्कूल चला आता है।

मोहन अन्दर द्वार से झांक रहा था। प्रधानाध्यापक महोदय की नज़र पड़ गई। बोले आओ, मोहन दूर से क्या देख रहे हो !" मोहन कैसे भाग सकता था; सामने आकर नमस्ते की। प्रधानाध्यापक महोदय ने पास में बैठा लिया। मोहन गम्भीर हो, चुप-चाप बैठ गया।

बद्री आठों अध्यापकों के सामने अलग-अलग तश्तरियों में मीठा और कपों में चाय लेकर रख गया। रायसाहब बोले—आप लोग खाना शुरू कीजिए।

प्रधानाध्यापक—"मोहन के सामने तो अभी कुछ आया ही नहीं।

मोहन बोला—"मैं मास्टर साहब, अभी खाकर आया हूँ।"

रायसाहब, "आप लोग शुरू कीजिए, मोहन को मिल जायगा।" मास्टर साहबान ने शुरू कर दिया और स्वयं रायसाहब ने तश्तरी में मिठाई रखकर मोहन की ओर बढ़ादी। फिर स्वयं खाने लगे।

बद्री ने सब को पान दिया। मास्टर साहबान पान खाकर चलने के लिए तैयार हो गये। रायसाहब उठे और पाँच-पाँच रुपये सभी अध्यापकों को और दस रुपयें प्रधानाध्यापक को देने लगे।

प्रधानाध्यापक बोले—कृपा बनाए रखिए, हमेंकुछ नहीं चाहिए।"

परन्तु रायसाहब ने सबको इनाम दिया और उस गरीब लड़के का पाँच रुपया महीना बजीफ़ा बाँध दिया। अध्यापक लोग प्रसन्न चित्त बिदा हुए।

× × ×

मोहन अंदर आकर अपनी माँ से कहने लगा, "पाँच-पाँच रुपये सभी मास्टरों को और दस रुपये हेडमास्टर साहब को बाबू जी ने दिया

है। और पाँच रुपये महीने हमारे साथी को भी देने के लिए कहा है।"

कमला भौंह सिकोड़ते हुए बोली, "कौन साथी।"

मोहन—"वही जिसने मुझे पढ़ना सिखाया है।"

माँ-बेटे की बातें हो रही थीं। इसी बीच रायसाहब भी उपस्थित हो गये। कमला कुछ सहम कर व्यंग करती हुई बोली, "किसानों से हो गया समझौता ?"

रायसाहब ने कहा, "समझौता क्यों न होता ? समझौता भी हो गया और एक हजार रुपये भी मिल गये।"

कमला—"अब तो एक हजार रुपये देने में किसानों को कष्ट न हुआ होगा ?"

हँसकर रायसाहब ने कहा, "कष्ट होता तो देते ही क्यों ?"

कमला—"बेचारे दबाव से दिए हैं, खुशी मन से न दिए होंगे। कहाँ इतने इफरात से रुपये भरे हैं जो लुटा रहे हैं !"

रायसाहब—"किसान ज़मीन से बेदखल नहीं हो रहे हैं, मैंने रुपये लेने के लिए एक शब्द भी नहीं कहा, फिर दबाव किस बात का ?

कमला—"आपने भले न कहा हो, लेकिन............।"

रायसाहब—"लेकिन क्या बार-बार मना करने पर भी जबरन रुपया मोटर में डाल दिया। इससे हम उन्हें प्रसन्न ही समझते हैं।"

कमला—"आप समझिये किन्तु मैं ऐसा नहीं समझती।"

रायसाहब—"तुम क्यों समझो ? तुम्हें तो लड़ाई करनी है।"

कमला—"हाँ, मुझ जैसी लड़ाकी और आप जैसे.........।"

× × ×

सात बज गये, दोनों महाराजिन कमला से छुट्टी लेने आईं। कमला ने कहा, "खाना अच्छी तरह ढँक दिया है ?"

शान्ति ने कहा, "सब ठीक से रखा है।"

दोनों को घर जाने की आज्ञा मिल गई।

× × ×

कमला रायसाहब से मास्टरों के आने का कारण जानना चाहती थी, किन्तु दूसरी बात शुरू हो जाने से न जान सकी। बोली :

"आज मास्टर साहबान क्यों आये थे ?"

रायसाहब ने कहा, "हाँ, मैं बतलाना ही भूल गया, और बतलाता भी कैसे ? तुमने तो आते ही दूसरी बात छेड़ दी। मास्टर साहबान बधाई देने आये थे। मोहन अब स्कूल में पढ़ने लगा है। किसी गरीब लड़के का साथ हो गया है। इसी खुशियाली में सब मास्टर साहबान आये थे। जाते समय पाँच-पाँच रुपये सब मास्टरों को, और दस रुपये हेडमास्टर साहब को पुरस्कार में दे दिया। उस गरीब लड़के के लिए पाँच रुपया महीना देने के लिए कह दिया है।"

कमला मोहन की पढ़ाई का समाचार जानकर गद्-गद् होगई और बोली, "मास्टरों को आपने पुरस्कार दे दिया बड़ा अच्छा किया। मोहन ने भी एक-दो बार बतलाया था कि एक गरीब लड़का हमको पढ़ना सिखाता है, लेकिन मैं यों ही समझती थी। उस लड़के के लिए सहायता जरूरी थी; फिर उससे अपना स्वार्थ भी है। यदि मोहन को पढ़ने में मदद देता है तो खास तौर से मदद करनी चाहिए।

रायसाहब ने कहा, "मैं सब काम अच्छा ही करता हूँ।"

कमला ने कहा, "आप सब काम अच्छा ही करते हैं पर उस महाराजिन······।"

: ३४ :

"कीर्तिसिंह के निकल जाने से जमींदारी का सारा काम ठप्प हुआ जाता है। काम करने वाले आदमी को बुला लेना कोई अनुचित नहीं है। यदि कीर्तिसिंह होता तो किसान लगान-बंदी आन्दोलन करने के लिए तैयार न होते। वह किसानों को मदद करता होगा। आपके कुछ काम भी ऐसे ही होते हैं, जिसकी मुखालफत करने के लिए किसानों को खड़ा

होना पड़ता है। दोनों किश्तों का एक साथ लगान वसूल कराने की क्या आवश्यकता थी ? जब खेती दो किश्तों में होती है, तो किसान लगान ही एक किश्त में क्यों दें ? आखिर हमारे पूर्वजों ने कुछ सोच समझकर ही इन नियमों का निर्माण किया होगा।" प्रभावती ने कहा।

ठाकुरसाहब भौंह सिकोड़ते हुए बोले, "मैं इतना अंध-विश्वासी नहीं हूँ। हमारे पूर्वजों ने अपने समय में परिस्थिति के अनुसार ही सामाजिक नियमों को बनाया था। किन्तु अब वह समय नहीं है। उस जमाने में जन-जन में कलह नहीं होता था, सदा अकाल नहीं पड़ता था, लोग भूखों नहीं मरते थे, सभी अपने-अपने कर्तव्य पर अटल थे। किसानों से जबरन लगान वसूल करने का अवसर नहीं आता था, स्वयं किसान खेती का छठवाँ हिस्सा 'राज्यकर' पहुँचा देते थे, किन्तु आज लड़ने-झगड़ने पर भी किसान लगान देने को राज़ी नहीं होते। यदि उन्हीं पूर्वजों के आधार पर जमींदार चलें, तो भूखों मर जाएँ।"

प्रभावती ठाकुर साहब की बातें सुन कर बोली, "लेकिन इसमें केवल किसानों का ही दोष नहीं है। जमीदारों ने किसानों पर कोई जिम्मेदारियाँ ही नहीं छोड़ी हैं। सारा भार स्वयं लेकर चलना चाहते हैं। यह कैसे संभव हो सकता है ? यदि अपने-अपने कर्तव्य-भार को लेकर चलना चाहते तो सफलता मिल सकती थी; किन्तु आज एक दूसरे पर विश्वास नहीं। यही तो समाज के पतन का कारण है।

"हमारे आदिकाल में भी अकाल पड़े हैं, लोग भूखों मरे हैं; लेकिन वे अपने कर्तव्यों से विचलित होना उचित नहीं समझते थे। एक छत्रपति भी अपनी प्रजा के हित के लिए छोटे से-छोटा कार्य करने को तत्पर रहता था; परन्तु आज हम स्वार्थ के सामने अपना कर्तव्य भूल गये हैं। साथ ही कर्तव्य से नहीं, अपितु अनुचित दबाव डालकर दूसरों पर अपना प्रभाव चाहते हैं, इस पर भी सुख साम्राज्य की कल्पना ?

प्रभावती की बातों को ठाकुर साहब गम्भीरता से सोच रहे थे, वह बोले "वस्तुतः समाज की हालत गिरी है, उसके सुधारने के लिए नैतिक

बल प्राप्त करना बहुत जरूरी है, लेकिन इन सब से कीर्तिसिंह का क्या सम्बन्ध ? वह नाराज होकर गया है। मैंने तो गलती नहीं की ! फिर चिंता ही क्यों करूँ ?"

ठाकुर साहब की गम्भीर-मुद्रा देखकर प्रभावती ने कहा—"यदि आप अनुचित न समझें तो कीर्तिसिंह को बुलवा लें, योग्य आदमी का तिरस्कार करना उचित नहीं।"

आवेश में आकर ठाकुर साहब ने कहा, "मेरा क्या अपराध है ? कीर्तिसिंह स्वयं गलती करके अलग हुआ है, माफी माँगने तक नहीं आया। उलटे मैं ही उसे मनाने जाऊँ ! कदापि नहीं हो सकता।"

प्रभावती, "इसमें क्या हुआ ?"

ठाकुर साहब, हुआ क्यों नहीं ? अपने अभिमान से चूर होकर संसार को तुच्छ समझना क्या कम मूर्खता है। उसे, बाप-दादों के जमानें से बिना लगानी जमीन दी गई थी, साल में ऊपरी खर्च के लिए रुपये दिए जाते थे और कपड़े का भी यहीं से प्रबन्ध होता था। इसके अलावा आवश्यकता पड़ने पर और तरह-तरह की सहायता भी दी जाती थी। सब कुछ भुला कर मेरा विरोध किया है उसने इस पर भी मैं उसे पुनः बुलाना उचित समझूँगा ?"

प्रभावती—"यही तो मनुष्य की गलती है संसार में जो मान-अपमान को त्यागकर उचित-अनुचित विवेक को ग्रहण कर लेता है, वही उन्नति करता है। हाँ, सहसा ऐसा होना कठिन लगता है, पर क्रमशः ठीक हो, परन्तु कीर्तिसिंह ने कोई अनुचित कार्य भी नहीं किया। जो कहा आपके हित के लिए कहा। जी हुजूरी नहीं की, यही एक अपराध है।

प्रभावती की बातें समाप्त न हुई थीं कि दीवान साहब आ गये। प्रभावती ने पूछा "दीवान साहब, इस समय कीर्तिसिंह कहाँ रहता है ? आपको कुछ मालूम है !"

दीवान ने कहा, "जी हाँ, वह अपने गाँव में मौज से रहता है।

एक चरखा-संघ कायम कर लिया है। दस आदमी उसके यहाँ काम करते हैं।"

प्रभावती ने कहा, "ठीक है, जो व्यक्ति कर्तव्यशील होता है, वह सर्वत्र सुखी रहता है। दीवान साहब, कल आप कीर्तिसिंह को बुला लाइए! और कहिए ठाकुर साहब ने बुलाया है।"

ठाकुर साहब डाँटकर बोले, "मैं कीर्तिसिंह को फिर से यहाँ नहीं आने देना चाहता।"

दीवान साहब, "ठीक भी है, इसमें आपका अपमान है।"

प्रभावती दीवान साहब को डाँटती हुई बोली, "आप लोगों के काम से क्या ठाकुर साहब का अपमान नहीं होता! चारों ओर किसान मुकदमेंबाजी पर तुले हैं। साल भर से किसान लगान देना बंद किए हैं। आपको महीने में तनख्वाह मिल जाती है। बैठे हुए-हजूरी करते रहते हैं। जमीदारी का सारा काम चौपट हो गया।

प्रभावती की बातें दीवान साहब को काफी बुरी लगीं। भीतर ही भीतर आग बबूला हो गये; पर कर ही क्या सकते थे। प्रभावती "दीवान साहब, श्याम को साथ लेते जाइए। और कीर्तिसिंह का घर बता दीजिए वह बुला लायेगा।"

दीवान साहब ने कहा, "मुझे कोई आपत्ति नहीं और श्याम माँ का आदेश स्वीकार कर दीवान साहब के साथ मोटर में जा बैठा मोटर चल पड़ी।

: ३५ :

शान्ति को रायसाहब के यहाँ काम करते दो वर्ष से अधिक बीत रहे थे। वह समय पर आती, जाती और काम करती। शान्ति का काम बड़ा सन्तोषजनक था, पर कमला उसकी सुन्दरता से द्वेष करती थी, और कभी-कभी ताने दिये बिना नहीं रहती थी। शान्ति को अपने काम से मतलब। वह और प्रपंच में नहीं पड़ना चाहती थी। अपने काम को पूरा कर घर लौट जाती थी।

दूसरी महाराजिन शान्ति की कार्य-कुशलता से द्वेष करती थी। भोजन बनाने का काम शान्ति को ही मिला था, क्योंकि दोनों की परीक्षा ली गई, जिसमें शान्ति को ही सफलता मिली थी। कभी दोनों महाराजिन में झगड़ा भी हो जाता था। रायसाहब दोनों को डांट कर शान्त करने का प्रयत्न करते पर वह शान्त न हो सका। धीरे-धीरे बढ़ता ही गया।

× × × ×

रायसाहब बैठक में बैठे थे। मोहन की वर्षगांठ की तैयारी के लिए सोच रहे थे, एक दिन बाकी था। इसी समय ठाकुर संग्रामसिंह ने आकर प्रणाम किया। रायसाहब ने कहा, "आइए, आइए, ठाकुर साहब ! आपने तो इधर आना ही छोड़ दिया है।"

ठाकुर साहब बोले, "नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। आजकल ज़रा किसानों के उपद्रव अधिक होते हैं, इसलिए फुरसत नहीं मिलती।"

रायसाहब ने कहा "इसके लिए आप किसानोंमें ही किसी को नेता बना दीजिए और कुछ उसकी मदद भी कर दिया कीजिए, फिर वही आपकी सम्पूर्ण गाँव से मदद करायेगा।"

रायसाहब की बातें ठाकुर साहब से होती रहीं, उसी समय शान्ति अपने घर जाने के लिए बैठक में होकर निकली। ठाकुर साहब, देख कर दंग रह गये। आंखें लाल पड़ गईं। बोले, "यह औरत आपके यहाँ रहती है।"

रायसाहब—"रहती तो नहीं, काम करती है।"

ठाकुर साहब—"आप इसको जानते नहीं हैं क्या।"

रायसाहब—"नहीं जानता हूँ पुरोहित जी के मुहल्ले में रहती है। ब्राह्मणी है, काम करने में बड़ी निपुण है।"

ठाकुर साहब—"होगी, लेकिन दुश्चरित्र है।

रायसाहब—"अच्छा !"

ठाकुर—"हां, इसे हम बहुत दिन से जानते हैं। इसकी ननिहाल

भी हमारे ही मुहल्ले में है। आचरण ठीक नहीं है, एक बार महीनों गायब रही, फिर लौटकर आई; इसके पति रखते ही नहीं थे। बड़ी पंचायत जुड़ी मुश्किल से रखा गया। बेचारा पाप भोगने के लिए जी ही न सका। अब इधर-उधर फिरती है।"

रायसाहब—"इसे तो मैं बड़ी सम्मान की दृष्टि से देखता था, लेकिन इतनी गिरी हुई है ?"

ठाकुर साहब—"हाँ, इससे आप पर भी लोग बुरा अनुमान लगाते होंगे। अच्छा, अब चलूँ।"

रायसाहब—"चाय तो पी लीजिए।"

"ठाकुर साहब चाय नहीं पीऊँगा। आज्ञा चाहता हूँ।"

रायसाहब शान्ति के चरित्र के बारे में सोच रहे थे। देखने में तथा व्यवहार में बड़ी भली मालूम होती है, लेकिन चरित्र के लिए कैसे कहा जा सकता है। आखिर ठाकुर साहब कह रहे हैं, तो कुछ जानते ही होंगें, नहीं क्या पड़ी थी।

कमला आज सुबह शान्ति को निकालने का निश्चय कर चुकी थी। एक शब्द रायसाहब से कहला लेना चाहती थी। रायसाहब के आते ही थाल सामने रख दिया और रायसाहब भोजन करने लगे। कमला ने कहना शुरू किया, "आपने जो भैया की महाराजिन को रखा है, वह ठीक नहीं है। वह रानी बनी बैठी रहती है, कई बार मैंने बतलाया भी। दूसरी महाराजिन बेचारी दिन भर काम करती है. फिर भी वह उससे लड़ती है। ऐसी चुड़ैल से घर का सत्यानाश हो जायगा। मैंने कई बार उसे निकालने के लिए कहा, पर आपने अनसुनी करदी। इसका परिणाम बुरा होगा। यह दूसरी बात है कि आप उसके रूप पर ही मुग्ध हो रहे हों, लेकिन मेरे रहते कोई राँड इस घर में पैर नहीं रख सकती।"

रायसाहब कमला की, बातें सुनकर बोले, "तुम क्यों इतना बड़बड़ा रही हो न रखना हो, तो जवाब देदो।"

कमला ने क्रोध में आकर कहा, "आप से कोई मतलब नहीं, तो अब तक निकाल क्यों नहीं दिया।"

रायसाहब—"अंधी मत बनो कमला! बिना कारण क्यों निकाल दूँ। तुम उस बेचारी से न जाने क्यों चिढ़ती हो। जबान काबू में रखो और यदि उसका काम ठीक नहीं है तो निकाल दो।"

कमला ने प्रसन्न होकर चुप हो गई, और सुबह शान्ति के आते ही जवाब देना तय कर लिया।

× × × ×

उत्सव के कारण सभी नौकर अपने समय से एक घंटे पहिले आते थे। शान्ति भी उसी के अनुसार पहुँची और काम में लग गई।

कमला शान्ति को देखकर सुबह मना कर देने वाली थी, पर सोचा कि अभी कह देने से आज दिन में ठीक काम न करेगी। इसलिए जाते समय दूसरे दिन आकर तीसरे दिन से न आने को कहा।शान्ति सुनकर सन्न रह गई। बोली, "बहू जी! हमने कोई गलती की है।"

कमला—"मैं क्या बताऊँ अपने से ही पूछो।"

शान्ति—"मैं अपने से पूछ कर ही आपसे पूछ रही हूँ।"

कमला—"मुझे दो महाराजिन की जरूरत नहीं है। अभी तक केवल तुम्हारी सहायता के लिए लगा रखा था।"

शान्ति—"आपने बड़ी कृपा की, इसके लिए मैं सदा आभारी रहूँगी।"

कमला—"खैर, यह तो कहने की बात है, लेकिन कल मोहन की वर्षगाँठ है आना जरूर।"

शान्ति स्वीकार कर अपने घर के लिए चली गई!

: ३६ :

मोहन की वर्षगाँठ के उपलक्ष्य पर रायसाहब अपने इष्ट-मित्रों को निमंत्रण-पत्र भेज चुके थे, और मोहन स्वयं अपने साथियों के घर जा-जा कर उन्हें निमंत्रण दे रहा था। वह सबके यहाँ पहुँच चुका था। एक

गिरीश को निमंत्रण देना बाकी था, उसे भी देने के लिए मकान ढूंढ़ रहा था। यह मोहन जानता था कि उनका घर स्कूल के पास है और गिरीश को खेलते भी कई बार उसी जगह देखा था, पर किस मकान में गिरीश के लिए आवाज़ लगाए, यह निश्चित् न कर सका। दो-तीन चक्कर लगाये, मकान न मिला। घरों में झाँकता हुआ आगे बढ़ा जा रहा था।

गिरीश अन्दर बैठा पढ़ रहा था। देखा, मोहन बेचैनी से आगे कहाँ बढ़ता जा रहा है? कहीं मुझे ही तो नहीं ढूंढ़ रहा। तुरन्त बाहर निकला और पीछे से आवाज़ दी :

"मोहन, जरा मुझ गरीब की भी कुटिया देखते जाओ।"

मोहन ने चौंककर पीछे की ओर देखा, गिरीश जांघिया और हाफ कमीज़ पहने आ रहा था। मोहन तेजी से बढ़ता हुआ बोला, "अरे! भाई, तुम्हीं को तो घंटों से ढूंढ़ रहा हूँ। अब तक तुम ने घर तक न दिखाया। सोचते होगे कि कभी आ न जाय, लेकिन न बताने पर भी न बच सके; आज मैं आ ही गया।"

गिरीश, मोहन को अन्दर ले जाकर कम्बल ठीक करते हुए बोला, "बैठिए।" मोहन बैठ गया और बोला, "तुम्हारी माँ नहीं हैं क्या?"

गिरीश ने उत्तर दिया, "हाँ, नहीं हैं, किसी सेठ जी के यहाँ खाना बनाती हैं। सात बजे बाद लौटती हैं।"

मोहन—"अब तो सात बज रहे हैं।"

गिरीश—"हाँ आती ही होंगी। क्या सेवा करूँ तुम्हारी?"

मोहन—"सेवा क्या? आपने दर्शन दे दिया यही क्या कम सेवा है?"

गिरीश ने हँसते हुए कहा, "दर्शन तो आपही ने दिये।" गिरीश उठा, और ताख से कुछ पैसे उठाये और बोला। "भाई, दो मिनट में हाज़िर हुआ।"

मोहन—"नहीं-नहीं, मेरे लिए कोई चीज़ लाने की जरूरत नहीं।"

गिरीश ने मुस्कराकर कहा, "मैं आपके लिए तो ला नहीं रहा हूँ। मेरे लिए भी बन्द करना चाहते हो, तो कोई बात नहीं।"

मोहन गिरीश की चतुराईपूर्ण बातों के सामने कुछ न बोल सका। गिरीश तुरन्त पाव भर पेड़ा और आध सेर दूध लेकर वापस आगया। मोहन चारों ओर फटी-टूटी चीजें व्यवस्थित देख मन-ही-मन सोच रहा था—बेचारा बड़ा गरीब है। फिर भी काम सब कायदे से हैं। आज जो पैसा खर्च कर रहा है वह किसी दूसरे काम में आता। गिरीश की गरीबी से मोहन का हृदय दबता जा रहा था।

गिरीश ने दोने में पेड़े और गिलास में दूध रख कर कहा, "अब भोग लगना चाहिए।"

मोहन संकोच से आगे कुछ न कह सका। दोने में चार पेड़े निकाल कर अलग रख दिये, फिर खाना शुरू किया। एक घूँट दूध पीने के बाद बोला, "यह आपने बेकार कष्ट किया।"

गिरीश मुस्कराते हुए कहने लगा, "बेकार क्यों ? खाने की वस्तु है, हम लोग खा रहे हैं। खाद्य-पदार्थ की यही उपयोगिता है। मेरे यहाँ कोई वस्तु नहीं है, फिर भी यदि माँ होतीं तो शायद कुछ हो भी जाता।"

मोहन—"भाई साहब, सब कुछ तो है। कमी किसी वस्तु की नहीं है। मिठाई खाने के लिए और दूध पीने के लिए; और क्या चाहिए ?

गिरीश—"मित्रवर, आपके कहने के लिए ऐसा ही है, लेकिन कमी को मैं ही समझ रहा हूँ।"

मोहन—"क्या मुझे समझने का अधिकार नहीं है ?"

गिरीश—"क्यों नहीं! अपने मित्र की सम्पूर्ण परिस्थिति जानने का आपको अधिकार है। आपके लिए तो कुछ छिपा ही नहीं है।"

मोहन ने हँसते हुए कहा, "हाँ, मैं समझता हूँ।"

मोहन ने मिठाई समाप्त कर दूध पिया और जेब से रूमाल निकाल कर हाथ पोंछने लगा।

गिरीश ने कहा, "पानी दूं ?"

मोहन—"नहीं, जब मिठाई के साथ दूध पीने को मिला, तो पानी की क्या आवश्यकता है ?"

गिरीश—"यह ठीक है, लेकिन पीने के अलावा हाथ धोने के लिए भी तो पानी की आवश्यकता है।"

मोहन—"पेड़ा खाने में हाथ से लगता ही क्या है ?"

गिरीश—"लौंग की तो जरूरत पड़ सकती है ?" मोहन ने कहा, "हाँ-हाँ, शौक से।" गिरीश ने एक पुस्तक पर लौंग रख मोहन के सामने बढ़ायीं। दो-तीन लौंग लेकर मोहन ने कहा, "गिरीश, मैं तुम्हें अपने वर्षगांठ के उपलक्ष में आज निमंत्रण देने आया हूं।" जेब से लिफ़ाफ़ा निकाल कर निमन्त्रण-पत्र गिरीश के हाथ में दे दिया।

गिरीश ने निमंत्रण-पत्र स्वीकार करते हुए कहा, "बधाई है।"

मोहन नमस्ते करके चल दिया। स्कूल से थोड़ा आगे जाने पर शान्ति आती हुई दिखाई पड़ी, सामने आने पर शान्ति ने हँसकर पूछा, "मोहन, आज इधर कहाँ गये थे भय्या ?"

मोहन ने जबाब दिया, "ऐसे ही, एक गिरीश नाम का लड़का हमारा मित्र इसी मुहल्ले में रहता है, उसी को निमंत्रण-पत्र देने आया था।"

शान्ति ने कहा, "अच्छा।" मोहन आगे बढ़ गया। शान्ति मन-ही-मन सोचती रही—इस मुहल्ले में गिरीश नाम का लड़का, शायद और कोई नहीं है। क्या मेरे गिरीश के ही साथ मोहन की मित्रता है ? नहीं मुझ अभागिनी के लड़के के साथ कौन मित्रता करेगा ? लगी रोज़ी आज से छूट गई, भगवान् गिरीश को इतने बड़े आदमी का कैसे मित्र बनायेंगे ?

मोहन के निमंत्रण से गिरीश खूब प्रसन्न हो रहा था, और बार-बार अपनी माँ से बतलाने के लिए उत्सुक था। शान्ति के पहुँचते ही गिरीश ने दौड़कर मोहन का दिया हुआ निमंत्रण-पत्र दिखलाया और सब हाल

बतलाया। कहने लगा—"मोहन अभी-अभी गया था, शायद तुम्हें रास्ते में मिला भी हो। किन्तु तुम क्या जानो उसे?" शान्ति गिरीश की बातें सुनकर प्रसन्न हो रही थी। रायसाहब के ही लड़के की वर्षगांठ का निमंत्रण-पत्र था। शान्ति सोच रही थी, दस रुपये महीना गिरीश को रायसाहब की ओर से ही मिल रहे हैं। बड़े ही उदार हैं। शान्ति ने कहा, "गिरीश, मोहन मुझे रास्ते में मिला था। उसने भी बतलाया कि वह निमंत्रण-पत्र देने आया था।

गिरीश ने कहा, "मां, तुम मोहन को कैसे जानती हो?"

शान्ति, "मैं ऐसे ही जानती हूँ। रायसाहब की कोठी ठठेरी बाजार में है, और वहीं मैं भी काम करने जाती हूँ। इसलिए मोहन को जानती हूँ।"

गिरीश पुलकित हो अपनी मां से बातें करता रहा, और शान्ति भविष्य में जीविका के लिए चिंता करती हुई गिरीश की आनन्द-कहानी सुन रही थी।

: ३७ :

कीर्तिसिंह चरखा-संघ के मजदूरों को मजदूरी दे रहा था। संघ के अंतर्गत हाथ की कताई, बुनाई और बढ़ईगीरी आदि का काम होता था। गरीब बच्चे जो स्कूलों में नहीं पढ़ पाते थे, उन्हें कीर्तिसिंह स्थान देकर शिक्षा को आर्थिक सहायता भी देता था। उनसे तैयार की हुई वस्तु बड़े शहरों में भेजकर समुचित लाभ उठाता था। बड़े-बड़े नेताओं द्वारा कीर्तिसिंह के कार्य की प्रशंसा होती थी। वह अपने जीवन में कभी असफल नहीं हुआ था, उसे अपने कर्तव्य पर दृढ़ विश्वास था।

चरखा-संघ, भवन के बगल से सड़क निकाली थी। मकान अभी कच्चा ही था, लेकिन नये ढंग से हवादार बना था। खिड़कियों की कमी न थी। देखने से आभास होता था कि कोई राष्ट्रीय संस्था है। तिरंगा झंडा फहराता रहता था, साथ ही बड़े-बड़े नागरी के अक्षरों में 'चरखा-संघ बलरामपुर' लिखा था।

सामने मोटर रुकी और श्याम तथा दीवान साहब फाटक के अन्दर घुसे। तरह-तरह के रंग-बिरंगे फूलों की आभा प्रकृति को चुनौती दे रही थी, दृश्य बड़ा मनोहर था। एक चौकी पर कुछ कागज पत्रों के साथ एक लाल थैली में रेजगी और दो-तीन नोटों के बण्डल लेकर कीर्तिसिंह बैठा एक-एक का नाम लेकर पुकारता और महीने भर के परिश्रम का मूल्य दे रहा था। रजिस्टर का पन्ना खोलकर कीर्तिसिंह ने आवाज दी, "श्यामलाल।"

श्याम था छोटा, लेकिन प्रकृति से बहुत चंचल। बोल उठा, "हाजिर हूँ सरकार !"

सहसा नवीन आवाज आने पर कीर्तिसिंह ने हकपका कर सामने देखा; मुस्कराते हुए दीवान साहब और श्याम खड़े थे। तुरन्त चौकी से उतरकर कीर्तिसिंह ने दीवान साहब को सलाम किया। और श्याम को गोद में उठा लिया। उसे श्याम से मिलने पर बड़ा आनन्द हुआ। दीवानसाहब सामने कुर्सी पर विराज गये और कीर्तिसिंह श्याम को गोदी में लिए चौकी पर बैठ गया।

कीर्तिसिंह की आत्मा गरीबों की करुण दशा बरदास्त नहीं कर सकती थी। उसने गरीबी को मिटाने के लिए ही चरखा-संघ की स्थापना की थी और भगवान् की कृपा से बीस-पच्चीस गरीबों का पालन-पोषण भी होता था। ठाकुर साहब के यहाँ का काम छोड़ने का उसे क्षोभ न था, किन्तु श्याम से अलग होने के लिए उसका हृदय गवाही नहीं देता था। वे यह भी जानते थे कि प्रभावती श्याम को अपने से एक क्षण भी अलग न होने देगी। बाध्य होकर कीर्तिसिंह को अलग होना पड़ा था, फिर भी श्याम कीर्तिसिंह को हृदय से अलग नहीं समझता था।

खोए हुए पुत्र से मिलने पर जो सुख पिता को मिलता है उसी सुख का कीर्तिसिंह अनुभव कर रहे थे। उनकी आत्मा स्नेह से पिघल गई और आँखों में प्रेमाश्रु उमड़ आये। अगल-बगल खड़े चरखा-संघ के

काम करने वाले मजदूर कीर्तिसिंह की दशा देखकर सोच रहे थे—"यह लड़का शायद कीर्तिसिंह का ही है, कहीं खो गया था। पाने पर यह बुड्ढा पहुँचाने आया है।

कीर्तिसिंह ने कहा, "दीवानसाहब, आज आपने बड़ी कृपा की। साथ ही श्याम को भी साथ लाये मैं बहुत ही आभारी हूँ आपका, श्याम तुमने तो हमें भुला ही दिया था।

श्याम नें कहा, "आप अब कोठी में आते ही नहीं है।"

दीवान साहब ने कहा, "आज श्याम आपको बुलाने के लिए आया है।"

कीर्तिसिंह दीवान साहब की बातें सुनकर चुप रहे। श्याम के सिर पर हाथ फेर रहे थे। एक कर्मचारी एक बाल्टी पानी ले आया, और हाथ मुँह धुलाये, और फिर कुछ फल भी आये।

कीर्तिसिंह बोला, "दीवानसाहब, नाश्ता कर लीजिए," नश्तरी आगे बढ़ाई और श्याम को स्वयं खिलाने लगे। श्याम ने कहा, "आप भी खाइए। मैं स्वयं खा लूँगा।"

कीर्तिसिंह ने मुस्कराकर कहा, "अच्छा" और स्वयं भी नाश्ता करने लगे फिर बोले। "अरे ड्राइवर, आओ! आओ! तुम वहाँ क्यों रह गये? ड्राइवर ने भी नाश्ता किया।

दीवान साहब ने कहा, "कीर्तिसिंह जी, आपके आश्रम में एक बात मुझे खास तौर पर देखने को मिल रही है।"

कीर्तिसिंह नें कहा, "वह क्या?"

दीवान साहब "मैं देख रहा हूँ कि किसी काम के लिए किसी को कहना नहीं पड़ता। सब अपने-अपनें काम में बड़ी सावधानी से लगे हैं। मैं तो बड़ों के मुँह से सुनता था कि पुष्पक विमान मन के अनुसार चलता था। भगवान् रामचन्द्र जी को कहना नहीं पड़ता था। किन्तु मैं आज आप के आश्रम में स्वयं वही बात देख रहा हूँ।"

कीर्तिसिंह ने नम्र शब्दों में कहा, "सब आप बुजुर्गों की कृपा है। हमारे बापू जी भी तो राम-राज्य की ही कल्पना करते थे। उसकी सफलता के लिए प्रयत्न करना हर भारतीय का कर्तव्य है।"

दीवान साहब ने कहा, "छः बज रहे हैं, अब चलना चाहिए।"

कीर्तिसिंह ने कहा, "आज कैसे ? कम-से-कम एक दिन तो रुकिए। आज यहाँ छुट्टी हो चुकी। कल यहाँ के सब कामों का निरीक्षण कीजिए। सायंकाल चले जाइएगा।

दीवान साहब ने कहा, 'बहुत अच्छा, लेकिन बहू जी ने कहा था कि साथ में लेकर आज ही सात बजे तक लौट आना। आप तो जानते ही हैं, वह एक दिन भी श्याम के बिना नहीं रह सकती !"

कीर्तिसिंह ने कुछ चिंतित होकर कहा, "मैं कोठी पर कैसे चल सकता हूँ ? ठाकुर साहब ने मुझे विद्रोही घोषित कर दिया है। और उस दिन आपके सामने काफी विवाद भी हुआ था, इसलिए वहाँ जाना मैं उचित नहीं समझता।"

दीवान साहब—"नहीं-नहीं, संसार में वाद-विवाद होता ही रहता है। टक्कर होना भी स्वाभाविक ही है। आप जैसे विचारवान् पुरुष को कभी ऐसा न सोचना चाहिए।"

कीर्तिसिंह—"ठीक कहते हैं दीवान साहब, लेकिन यदि कोठी पर पहुँचते ही ठाकुर साहब मुझ पर पुनः बिगड़ने लगेंगे तो·········और मैं जमींदारों का विरोधी हूँ ही। ऐसी दशा में मेरा वहाँ जाना उचित नहीं है, आप स्वयं सोच सकते हैं।"

दीवान साहब—"नहीं, कीर्तिसिंह जी, अब मुझे यह कहना पड़ेगा कि आपका यह सोचना बिल्कुल गलत है। ठाकुर साहब के विचारों में अब काफी परिवर्तन हो चुका है। समय-समय पर आपकी चर्चा करते हैं। अपनी गलती मानते हैं, इसीलिए तो आज मुझे भेजा है।"

आश्चर्य में पड़कर कीर्तिसिंह ने कहा,—"अच्छा, ठाकुर साहब ने आपको भेजा है।"

दीवान साहब – "जी हाँ, यदि उन्हें भी मना करना होता तो बहू जी के कहने पर भी कर देते। पहले जो बातें हुई हों, मेरे पहुँचते ही आपको बुलाने के लिए आदेश मिला और साथ में श्याम को भी भेजा गया।"

श्याम के सिर पर हाथ रखते हुए कीर्तिसिंह ने कहा, "लेकिन मेरा चलना उचित नहीं है। बहू जी से निवेदन कर दीजिएगा। मैं माफी चाहता हूँ।"

दीवान साहब के बोलने के पहले ही श्याम कीर्तिसिंह की ओर देख कर बोला, "क्या आप हमको छोड़ देंगे ?" श्याम के इस प्रश्न का उत्तर कीर्तिसिंह न दे सके। उठाकर उसे हृदय से लगा लिया।

दीवान साहब ने कहा, "कीर्तिसिंह जी, अब आपको श्याम की बात माननी ही पड़ेगी।" कीर्तिसिंह को भी स्वीकार करना पड़ा। श्याम की बात टालने की उनमें सामर्थ्य न थी ? अपने घर, शहर जाने का संदेशा भिजवाकर कीर्तिसिंह मोटर पर सवार हो गये।

: ३८ :

प्रातःकाल होते ही गिरीश सोकर उठा और नहा-धोकर सात बजे से ही मोहन के यहाँ जाने के लिए तैयार हो गया। शान्ति ने कुछ जलपान का प्रबन्ध कर गिरीश से कहा, "बेटे, मैं अपने काम पर जाती हूँ, तुम अपने मित्र के यहाँ समय से हो आना।"

गिरीश ने कहा, "क्यों माँ, जहाँ मैं जाऊँगा, वहाँ तुम न रहोगी।"

शान्ति—"बेटे, मैं अभी कैसे बता सकती हूँ, वहाँ पहुँचने पर जो काम मिलेगा, वही करना होगा।"

गिरीश—"मोहन के यहाँ जाने के लिए एक घंटे की छुट्टी न मिलेगी।"

शान्ति—"वहाँ चलने पर ही पता चल सकता है।"

गिरीश—"अच्छा, तो जाओ, लेकिन एक घंटा के लिए मोहन के

यहाँ अवश्य पहुँचना। बेचारा आग्रहपूर्वक बुला गया है। मैं दो बजे जाऊँगा, आज स्कूल की छुट्टी है।"

शान्ति गिरीश को घर पर छोड़कर चल पड़ी। श्याम के चले जाने पर कुछ दिन गिरीश को घर पर अकेले रहना अच्छा न लगा था, लेकिन अब रहते-रहते आदी हो गया था। उसे किसी सहायक की आवश्यकता न थी। उसके पड़ोस की नाइन भी दस बजे अपने काम पर चली जाती थी और सायंकाल आठ बजे से पहिले कभी नहीं लौटती थी। गिरीश के लिए आठ घंटे का समय बिताना पहाड़ होगया। वह मोहन का घर भी नहीं जानता था। किससे पूछेगा, इसकी भी चिन्ता थी। शान्ति के जाते समय घर का पता पूछने का स्मरण न रहा। गिरीश सोच रहा था—दो घंटे पहले चलेंगे, रायसाहब इतने प्रसिद्ध हैं कि मुहल्ले का बच्चा-बच्चा उन्हें जानता होगा। फिर उत्सव का दिन है, बाजा बजता होगा। उसे पहचानने में देरी न लगेगी। हाँ, यदि कई घरों में उत्सव होता होगा तो बाजे से पता चलना कठिन हो जायगा। लेकिन आजकल तो शादी व्याह के दिन हैं नहीं, ऐसा नहीं होगा। दो बजे चलना निश्चित् कर गिरीश अपना समय बिताने लगा।

रायसाहब के यहाँ सुबह से ही शहनाई बज रही थी, दूर-दूर से अतिथि आकर विश्राम-गृह में उपस्थित होते जाते थे। अलग-अलग सबके ठहरने का इन्तज़ाम था। गाँव के आये हुए किसान सब से अलग समीप ही धर्मशाला में ठहरे थे और दूसरी जगह रिश्तेदार, रईस। समय से नाश्ते का प्रबन्ध हो चुका था, भोजन चार बजे पंगत में सबका साथ होना था। पुरोहित जी पूजन कराने का प्रबन्ध बहुत देर पहले कर चुके थे। उन्होंने रायसाहब को बुलाया और पूजन करने के लिए कहा। रायसाहब कपड़े बदलकर पुजारी के वेश में पद्मासन लगाकर बैठ गये। पूजन आरम्भ हुआ। कहीं औरतों के गीत, कहीं शहनाई, और कहीं वेद-मन्त्रों के उच्चारण से आकाश गूंज उठा था।

मोहन पिता के समीप बैठा गिरीश के लिए सोच रहा था—अब

तीन बज चुके हैं और वह आया नहीं। कल मैंने कहा भी था कि दो बजे के लगभग आ जाना, पर न जाने क्यों नहीं आया। पूजन बिना हुए उठ भी नहीं सकता था। मोहन के टीका लगा, आशीर्वाद मिला और पूजन समाप्त हुआ।

मोहन तुरन्त बाहर आया, उसके सभी मित्र मौज से बैठे थे, किन्तु गिरीश न आया था। मोहन सोचने लगा—'कल मेरे जाने पर गिरीश ने कुछ पैसे खर्च कर दिये थे, कहीं उसकी माँ नाराज न हुई हो और आने से मना कर दिया हो।' निश्चित् कर गिरीश को बुलाने के लिए चल दिया। रायसाहब ने मोहन को बाहर जाते देखा तो रोक दिया। मोहन ने बतलाया, "मेरा साथी गिरीश अब तक नहीं आया, उसीको बुलाने जा रहा हूँ।"

रायसाहब ने कहा, "घबराने की कोई बात नहीं है, वह आता ही होगा। सामने सफेद कुर्ता, धोती पहरे आता हुआ एक लड़का दिखाई दिया। रायसाहब ने इशारा किया, "देखो, यह लड़का तो नहीं है।"

मोहन गिरीश को देखते ही प्रसन्न हो गया और बोला, "भाई, इतनी देर क्यों होगई, मैं सोचता था कि कहीं माँ नाराज तो नहीं होगई।"

गिरीश ने हँसते हुए कहा—"नहीं-नहीं, माँ नाराज नहीं हुई। वह प्रसन्न थीं। सम्भवतः रास्ते में तुम्हें मिली भी थीं और इसी तुम्हारे मुहल्ले में काम भी करती हैं। चार बजे आने को कहा है।"

× × × ×

कमला को शान्ति के चरित्र पर संदेह था, वह इसका निर्णय करना चाहती थी। शान्ति के मुहल्ले में कमला के परिचय के अधिक लोग थे। वर्षगांठ में सम्मिलित हो बधाइयां देने बहुत-सी स्त्रियाँ आई थीं। समय निकालकर कमला ने शान्ति के चरित्र के सम्बन्ध में पूछा भी, लेकिन किसी ने एक शब्द भी संदेहजनक न बताया। कमला को विश्वास हो गया कि शान्ति अच्छी औरत है, चरित्रहीन नहीं है। मैंने उसे निकालने के लिए कहा है यह अनुचित किया है, लेकिन अब तो जो होना था सो हो

गया। वह अपनी सहेलियों से मोहन के चिरंजीवी होने की बधाइयाँ स्वीकार करती हुई आनन्दित होरही थी।

× × × ×

पंगत बैठ गई। रायसाहब परोसने के इन्तजाम में थे। हजारों आदमी एक साथ बैठे थे। आमने-सामने, ऊपर छत पर सभी जगह आदमी ठसाठस भरे थे। ब्राह्मणों ने भोजन करना आरम्भ कर दिया। कहीं से मिष्टान्न, कहीं से पूड़ी, रायता, साग आदि चीजों के लिए पुकारें हो रही थीं। परोसनवाले दौड़-दौड़ कर चीजें दे रहे थे। रायसाहब गुलाब-जामुन परोस रहे थे, किन्तु दूसरे परोसनेवालों से इनकी गति धीमी थी। ब्राह्मण, रईस तथा रिश्तेदार सभी आनन्द से भोजन कर रहे थे।

मोहन ने गिरीश को अपने कक्ष में लेजाकर बैठाया। बद्री नाकर सभी वस्तुएँ एक-एक करके रख गया। मोहन ने कहा, "मेरी समझ में अब भोजन शुरू करना चाहिए।"

गिरीश ने मुस्कराते हुए कहा, "हाँ-हाँ, देरी किस बात की है। दोनों ने पहले मिठाइयों से ही भोजन आरम्भ किया। बद्री बीच-बीच में सभी चीजें ला-लाकर देता जाता था। मोहन ने कहा, "गिरीश, तुम्हारी माँ अभी नहीं आईं !"

गिरीश--वह तो सुबह से ही निकली हैं। मैंने चार बजे अवश्य आने के लिए कहा था और उन्होंने स्वीकार भी किया था, शायद आई भी हों, औरतों में बैठी हों कहीं।"

मोहन—"नहीं, आतीं तो पता अवश्य चलता। देखो, अभी पता लगाता हूँ। वह शान्ति से गिरीश की माँ का पता लगवाना चाहता था। अतः उसे आवाज दी, "महाराजिन, जरा यहाँ आना।"

शान्ति बैठी सोच रही थी—"क्या गिरीश अब तक नहीं आया : नहीं, आकर चला गया होगा। मोहन की आवाज पर बोली, "आ रही हूँ।"

गिरीश अपनी माँ की आवाज पहचान कर हकबकाया। इधर-उधर

देखने लगा। शान्ति कक्ष में प्रवेश करते ही मोहन और गिरीश को एक साथ बैठे देखकर गद-गद होगई। मोहन के कुछ बोलने के पहले ही गिरीश ने कहा, "माँ तुम आगई।"

मोहन गिरीश को माँ कहते सुनकर सन्न रह गया। फिर गिरीश की ओर देखकर बोला, "यह तुम्हारी माँ हैं।"

गिरीश ने उत्तर दिया, "जी हाँ, यही मेरी माँ है।"

मोहन दौड़कर शान्ति से लिपट गया और बोला, "तुमने अब तक क्यों नहीं बताया" मेरी महराजिन!

× × × ×

रायसाहब ब्राह्मणों को भोजन के बाद पान के साथ एक-एक रुपया दक्षिणा दे रहे थे। सबको देने के बाद उन्हें याद आगई कि मोहन के मित्र गिरीश को अभी दक्षिणा नहीं मिली है। वह देने के लिए अन्दर चल दिए। कमला भी मोहन के मित्र को देखने जा रही थी; उसे बड़ी उत्सुकता थी। रायसाहब ने कहा, "गिरीश ने मोहन के लिए मित्र का नहीं, बल्कि उपदेशक का काम किया है। सभी अध्यापक पढ़ाकर हार गये, लेकिन उसके सत्संग से ही मोहन की जिन्दगी सुधर गई।" कमला को कुछ कहने का अवसर न मिल पाया और मोहन के पास पहुँच गई। मोहन, गिरीश और शान्ति आपस में बातें कर रहे थे।

रायसाहब को कक्ष में प्रवेश करते देख मोहन ने कहा, "बाबू जी, हमारे मित्र गिरीश यही हैं। शान्ति की ओर इशारा करके बोला और हमारी महाराजिन इन्हीं की माँ हैं।" गिरीश ने मुस्कराते हुए नमस्ते की।

रायसाहब आशीर्वाद देते हुए आश्चर्य में पड़कर बोले, "ये महाराजिन गिरीश की माँ हैं!"

मोहन—"हाँ, बाबू जी, मुझे भी अभी मालूम हुआ है।"

रायसाहब - "महाराजिन, अब तक तुमने क्यों नहीं बताया।"

शान्ति के बोलने से पहले कमला ने कहा, "इसने कभी बताया

नहीं, कल मैंने काम के लिए भी मना कर दिया इसे ।" शान्ति के पैरों पड़ती हुई बोली, "क्षमा करना बहन ! मैंने तुम्हारे साथ बड़ी धृष्ठता की है। तुम-जैसी कार्य-कुशल, सुशील शायद ही और कोई महिला मिले। तुम्हारे गिरीश ने मोहन को अच्छे रास्ते पर ला दिया है, यही तुम्हारा उपकार सब से बड़ा है। मैं तुम्हारे ऋण से उऋण नहीं हो सकती। आशा है, मेरे अपराधों को क्षमा कर, मेरे यहां का आना-जाना न छोड़ोगी ।"

शान्ति ने हंसकर कहा, "बहू जी, आपकी सहायता मुझे न मिली होती तो न जाने कहाँ-कहाँ भटकती। आप ही एक आधार हैं। आपको छोड़ मैं जा ही कहां सकती हूँ। शरण में आई हूँ, जीवन भर रहूँगी, गिरीश आपका है। उससे जो हो सकता है वह उसके कर्तव्य का पालन है। कल जाते समय मोहन मुझे मुहल्ले में मिले थे और उनके बताने से निश्चित् हो गया था कि यही मोहन गिरीश के मित्र हैं। गिरीश अपने मित्र की कभी-कभी चर्चा करता था, परन्तु नाम कभी नहीं बताया, बल्कि एक-दो बार मैंने पूछा भी था। गिरीश ने यह कहकर टाल दिया कि स्कूल के लड़कों के नाम से तुम्हें क्या मतलब। मैं चुप रह गई। मुझे बड़ी प्रसन्नता है, और भगवान् से प्रार्थना है कि कृष्ण-सुदामा जैसी मित्रता गिरीश मोहन की अमिट हो ।"

रायसाहब ने शान्ति की वाक्पटुता पर आश्चर्य कर कमला की ओर देखा। कमला ने मन्द मुस्कान में समर्थन किया और फिर एक-दूसरे की ओर देखते रहे।

: ३६ :

प्रभावती सोच रही थी, 'दीवान साहब, कीर्तिसिंह को बुलाने गये हैं, कहीं जवाब न दे दें क्योंकि कीर्तिसिंह का स्वभाव बड़ा अक्खड़ है। वह अपनी हठ पर अटल रहता है, स्वाभिमानी आदमी किसी की परवाह नहीं करता। वह ठाकुर साहब से बोली, "ठाकुर साहब ! देखिए, कीर्तिसिंह के आने

पर फिर किन्हीं अशिष्ट शब्दों का प्रयोग न कीजिएगा। संसार में अपना कार्य साधना ही चतुरता है। यदि कोई व्यक्ति अपनी बुद्धि के प्रमाद में अपना अहित कर बैठता है, तो वह अपना जीवन कभी सुखी नहीं बना सकता। बुद्धिमत्ता तो यही है कि "अपना कार्य हर दशा में सफल करलें। दूसरे भले ही नाराज़ हों, पर समय पड़ने पर काम करालें।"

ठाकुर साहब ने गहरी साँस लेते हुए कहा, "इतना मैं भी समझता हूँ; लेकिन परिस्थिति लाचार कर देती है। जब मनुष्य कार्य-व्यस्त रहता है और उससे चारों ओर से लोग असहयोग करने लगते हैं तो वह झुँझलाकर कुछ अनुचित बातें भी कह देता है, यह स्वाभाविक ही है। इसे ही यदि लोग बुरा समझ कर उससे अलग हो जांय तो किसकी गलती है कीर्तिसिंह की बुद्धिमानी तो मैं तभी मानता, जब वह मेरी ग़लती पर भी खामोश हो उचित पथ का निर्देश करता। किन्तु वह तो मेरी एक गलती पर स्वयं दो गलती कर बैठा।"

प्रभावती ने कहा, "नहीं, ठाकुर साहब, उसने ग़लती नहीं की। जब मानव के चित्त में भ्रम पैदा हो जाता है तो उसे अच्छी बातों पर भी बुरा संदेह होने लगता है। यही कीर्तिसिंह प्रसन्नता के समय में न जाने कितनी बातें कहता रहा होगा, लेकिन कोई ध्यान नहीं दिया गया। और जाते समय एक-दो शब्द कह दिये तो अब तक वह नहीं भूले। किसी के प्रति दूषित भावना कर लेना ही बुराई पैदा कर देता है।"

कोठी में मोटर रुकने की आवाज़ सुनाई पड़ी। प्रभावती तुरन्त बैठक से निकल कर दालान में आई और सामने देखा—कीर्तिसिंह बिलकुल नेता के वेश में—धोती, कुर्ता तथा गान्धी टोपी पहनें श्याम का हाथ पकड़े आ रहे हैं। साथ ही पीछे दीवान साहब भी एक डोलची में कुछ लिए आ रहे हैं। प्रभावती ने पुलकित हो, ठाकुर साहब को बतलाया कि कीर्तिसिंह जी आ गये।

कुछ आश्चर्य में पड़कर ठाकुर साहब ने कहा, "कीर्तिसिंह आगये !"

कीर्तिसिंह बैठक के द्वार के सामने पहुँच चुके थे। प्रभावती दुबारा न कह पाई थी, कि स्वयं कीर्तिसिंह ने कहा, "जी, हाँ मैं आगया।"

एकाएक कीर्तिसिंह का उत्तर सुनकर ठाकुर साहब कुछ सहमे, और फिर हँसते हुए बोले, "आइए कीर्तिसिंह जी, आपने तो हमें बिलकुल ही भुला दिया।"

कीर्तिसिंह—"नहीं, ठाकुर साहब हमने नहीं, बल्कि आपनेही मुझे अलग कर दिया था। आदेश पाने पर पुनः हाज़िर हुआ हूँ।"

ठाकुर साहब अपनी गलती पर मौन हो गये। प्रभावती ने कहा, "ठीक है, लेकिन यदि किसी से गलती हो जाय तो सुधार करना भी तो कर्तव्य होता है।

कीर्तिसिंह—"हाँ होता है, लेकिन यदि गलती करनेवाला व्यक्ति स्वयं अपनी ग़लती स्वीकार करे तब।"

प्रभावती—"मैं इस बात को मानती हूँ, इसीलिए तो श्याम को दीवान साहब के साथ भेजा था।" श्याम कीर्तिसिंह की तरफ इशारा करके बोला "माँ दीवानसाहब के कहने पर भी आप नहीं आते थे, फिर जब मैंने कहा तब चले।" प्रभावती ने श्याम को गोद उठाते हुए कहा, "तुम्हारी बात तो मान गए न !" सरदार कीर्तिसिंह श्याम के विवेक पर ग़ौर कर रहे थे।

ठाकुर साहब ने पूछा, "कीर्तिसिंह जी, आजकल कौन सा काम होता है।"

कीर्तिसिंह—"यही, जो कुछ बन पड़ता है, राष्ट्र की सेवा करता हूँ।"

ठाकुर साहब—"आपके चले जाने के बाद मेरे यहाँ अशान्ति का ही वातावरण रहा। उस दिन कुछ आपने गलती की और कुछ मैंने भी, लेकिन अच्छा हुआ उस गलती का प्रायश्चित हो गया।"

कीर्तिसिंह—"उस दिन मुझ से कोई गलती नहीं हुई थी, मुझे अपराधी मानना अब भी आपके गलत विचारों का ही परिणाम

है। मैंने उस दिन भी कहा था और आज भी कहता हूँ: देश के अहित के लिए जो भी कार्य होगा उसका मैं विरोध करूँगा।

प्रभावती ने कहा—सरदार कीर्तिसिंह जी! आप जो कह रहे हैं, मैं भी उसे उचित ही समझती हूँ। आज आपका सहयोग हमारे लिए जरूरी है। मैं चाहती हूँ, आप पुन: मेरी जमींदारी का कार्य अपने हाथों में लेलें, और आधुनिक ढंग पर जैसा उचित समझें।

कीर्तिसिंह ने कहा—बहू जी, अभी आवेश में आकर सबकह जारही हैं, लेकिन समय आने पर अपने आप स्वार्थों को तिलांजलि देकर देश की सेवा करना कठिन होता है।

प्रभावती—इसीलिए तो आपका सहयोग चाहती हूँ। यदि कठिन कार्य न होता तो मैं स्वयं कर लेती। आपको कष्ट ही न करना पड़ता है।

कीर्तिसिंह—"लेकिन अब मैं आपके यहाँ सरदार होकर नहीं रह सकता। जन-सेवक की हैसियत से आपकी सेवा करने के लिए तैयार हूँ।"

प्रभावती—"बड़ी कृपा है आपकी। इसी आशा से मैंने आपको कष्ट दिया था।"

ठाकुर साहब ने कहा, "बातें भर होती रहेंगी कि कुछ जलपान का भी प्रबन्ध होगा।"

प्रभावती ने कहा—"अभी सब कुछ हुआ जाता है। बहुत दिन में आये हैं, पहले बातें तो कर लूँ। प्रभावती ने सुग्गी को आवाज दी, और वह हाजिर हुई। कीर्तिसिंह को देखकर सलाम करते हुए कहा, "सरदार अपना बहुत दिन में देखानेन हैं। हमार पंचेन कै सुधि ही बिसराइ दीन।"

कीर्तिसिंह ने कहा, "नहीं-नहीं, सुग्गी, तुम लोगों को भूल गये होते तो आते ही क्यों?"

सुग्गी ने कहा, "बड़ी किरपा कीन जान आए कै दरसन दीन।"

प्रभावती ने कहा, "सुग्गी सरदार साहब को कुछ शर्बत वगैरह भी दोगी या कोरी बातें होती रहेंगी?"

मुग्गी ने कहा, "अबहिन लइअइत दुलहिन।" वह अंदर गई और चार गिलाश केवड़े का शर्बत बनाकर लेआई, और कीर्तिसिंह, ठाकुर साहब आदि उपस्थित महानुभावों को दिया। शर्बत पीते हुए सब आनन्द की बातें कर रहे थे; बीच-बीच में श्याम की भोली बातें विदूषक का काम कर जाती थीं।

: ४० :

गिरीश अपने मित्र मोहन के साथ उचित रीति से पढ़ता हुआ हाई-स्कूल की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर काशी हिन्दू-विश्व-विद्यालय में विज्ञान का अध्ययन करने लगा था। गिरीश और मोहन साथ-साथ पढ़ने जाते थे।

श्याम भी इसी वर्ष मैट्रिक में प्रथम श्रेणी में पास हुआ और उसके यूनिवर्सिटी में दाखले का काम ठाकुरसाहब ने सरदार कीर्तिसिंह के सुपुर्द किया।

श्याम सुबह से ही विश्वविद्यालय जाने की उत्सुकता में था। जल्दी-जल्दी सभी कामों से निवृत्त होकर सात बजे ही तैयार हो गया। परन्तु सरदार कीर्तिसिंह नहीं आये। प्रभावती ने आकर "कहा, आओ श्याम टीका लगा दूँ।" श्याम माँ के समीप आया, टीका लगवा कर प्रणाम किया और चलने के लिए निकलकर बैठक में आया।

कीर्तिसिंह कुछ पहले ही पहुँच चुके थे किन्तु पुकारना उचित न समझ कर श्याम की प्रतीक्षा में बैठ गये। ठाकुर साहब भी उस समय उपस्थित न थे। शीघ्र जाकर भरती कराने की सोच रहे थे। श्याम को देखते ही कीर्तिसिंह ने कहा, "चलें ?"

श्याम—"जी।"

कीर्तिसिंह के साथ श्याम भी सीढ़ी से उतरकर मोटर में बैठ गया और कीर्तिसिंह स्वयं मोटर चलाते हुए मिनटों में ही विश्वविद्यालय पहुँच गये। देशान्तर के आए हुए छात्रों की भीड़ इकट्ठी थी। प्रवेश

न मिलने की आशा से नगर के बड़े-बड़े आदमी सिफारिश करने के लिए गए थे। मोटरों की कतार दूर तक फैली थी। मोटर से कीर्तिसिंह तथा श्याम दोनों उतर पड़े और वाइसचांस्लर के कार्यालय में उपस्थित होकर कीर्तिसिंह ने अपना परिचय कार्ड भेजा।

वाइसचांसलर महोदय लड़कों के प्रवेशपत्र पर हस्ताक्षर कर रहे थे। चपरासी ने वह परिचय पत्र सामने रख दिया। उन्होंने देखा और कहा, "बुलाओ।"

चपरासी के संकेत पर कीर्तिसिंह ने श्याम के साथ कक्ष में उपस्थित होकर नमस्ते किया।

वाइसचांसलर—"नमस्ते, आइए सरदार कीर्तिसिंह जी।" उठते हुए कुर्सी की ओर इशारा करके कहा, "पधारिए! कीर्तिसिंह जी।" वह बैठ गये और साथ ही बगल में श्याम भी। वाइसचांसलर महोदय ने पान का डिब्बा सामने करते हुए कहा—"आज आपने कैसे कष्ट किया।"

कीर्तिसिंह (श्याम की ओर संकेत करके बोले) "ठाकुर संग्रामसिंह जी ने श्याम दाखिल कराने के लिए मेरे साथ भेजा है।

वाइसचांसलर—"अच्छा, यह उनके लड़के है?"

कीर्तिसिंह—"नहीं, उनके तो कोई लड़का है ही नहीं, किन्तु इन्हें लड़के से भी अधिक मानते हैं।"

वाइसचांसलर—"किस क्लास में भरती होंगे?"

कीर्तिसिंह—"इन्टर में।"

वाइसचांसलर—"अच्छा!" इन्हें चपरासी के साथ भेज दीजिए फार्म भर दें।"

वाइसचांसलर महोदय के आदेशानुसार कीर्तिसिंह ने श्याम को चपरासी के साथ भेज दिया। वह फार्म भर कर कुछ ही मिनटों बाद वापस आया। कीर्तिसिंह ने पूछा, "हो गया।"

श्यामने उत्तर दिया, "हाँ हो गया।"

कीर्तिसिंह ने वाइसचांसलर महोदय से कहा, "अब मुझे आज्ञा हो

तो चलूं ?"

वाइसचान्सलर—"मेरे योग्य और कोई काम !"

"आपकी कृपा" कहकर कीर्तिसिंह तथा श्याम आफिस से बाहर निकले। बहुत से लड़के विविध वेश-भूषा, रूप-रंग आदि देखते हुए घूम रहे थे। सामने से गिरीश ने आते हुए श्याम को देखातो उसे एकाएक श्याम की याद आई। वह सोचने लगा—यदि आज मेरा श्याम होता तो वह भी इतना ही बड़ा हो जाता, पर यह बिलकुल श्याम की ही तरह मालूम होता है। एक-दो बार पूछने को भी सोचा पर साहस न कर सका। एक अपरिचित व्यक्ति से अकारण कुछ पूछना जरा अनुचित है।

श्याम ने भी गिरीश को देखा। उसे भी अनुभव हुआ कि मैंने इन्हें कहीं देखा है, पर स्पष्ट न कह सका।

गिरीश बार-बार श्याम से परिचय प्राप्त करने के लिए सोच रहा था। मोहन ने कहा, "चलो अब घर चलने का समय हो गया है।"

गिरीश ने कहा—"जरा दस मिनट ठहरो फिर, चलता हूँ।"

मोहन—"अच्छा, लो भाई रुकता हूँ।"

गिरीश ने श्माम की ओर संकेत कर धीरे से कहा, "मोहन, यह लड़का मेरे भाई जैसा मालूम होता है।"

मोहन—"अच्छा तो मैं अभी पूछे लेता हूँ।"

मोहन आगे बढ़ कर श्याम के पास पहुँचा और बोला—क्यों भाई साहब, आप कहाँ से पधारे हैं।

श्याम ने मोहन की ओर देखते हुए कहा—"मैं तो गोवर्धन सराय में रहता हूँ।"

श्याम की आवाज निकलते ही गिरीश पहचान गया, और श्याम की ओर बढ़ता हुआ बोला, "श्याम, तुम मुझे पहचानते हो ?"

श्याम का भी ध्यान गिरीश की ओर आकर्षित हुआ। वह बोला भैया गिरीश ! दोनों आपस में मिल गये।"

कीर्तिसिंह गिरीश और श्याम के मिलन को देखकर सोच रहे थे—ये दोनों भाई-भाई हैं क्या ? किन्तु श्याम के तो माँ-बाप भाई-बहन किसी का कोई पता ही न था । वस्तु-स्थिति सरदार कीर्तिसिंह जानना चाहते थे किन्तु श्याम स्वतः बताने लगा— "गिरीश जी मेरे बड़े भाई हैं ।"

कीर्तिसिंह श्याम के भाई भी है यह जान कर अतिप्रसन्न हुए और बोले "भगवान ने बड़ी कृपा की । आज आप लोगों के दर्शन हुए । अचानक ठाकुर संग्रामसिंह के यहाँ श्याम पहुँच गया था । उनकी पत्नी बड़ी ही सुशील हैं, उन्होंने अपने पुत्र की तरह पाल पोषकर इन्हें बड़ा किया है । जिसके फलस्वरूप आज श्याम आप लोगों से मिलने के लिए उपस्थित है ।"

श्याम बार-बार गिरीश से माँ को पूछता रहा और स्वयं गिरीश की कुशलता पूछते हुए फूला न समाया ।

कीर्तिसिंह ने कहा—"गिरीश जी, चलिए अब कोठी पर पहुंचकर आनन्द से बातें होंगी ।" सब चल दिये तैयार हो गए ।

मोहन और गिरीश अपनी मोटर में बैठते हुए बोले "सायंकाल हम लोग स्वयं आयेंगे ।"

श्याम—"भैया मेरे यहां होकर जाओ ।"

गिरीश—"सायंकाल हम सब आयेंगे ।"

घर्र घर्र मोटर की आवाजें हुई । गिरीश पुलकित हो माँ से सब समाचार बतलाने के लिए आनन्दित होता हुआ अपने घर के लिए चल दिया ।

: ४१ :

श्याम के लौटने का समय हो गया था, प्रभावती प्रतीक्षा में बैठी सोच रही थी—आज मे श्याम विश्वविद्यालय का छात्र हो गया । भगवान् चिरंजीव रखेगा तो एक दिन बहुत बड़ा आदमी होगा । उसके मां-बाप बेचारे सोचते होंगे कि श्याम संसार में नहीं रहा, नहीं तो अब तक कहीं-न-

कहीं अवश्य पता चल जाता। हताश हो कर्म को दोषी ठहराते होंगे, किन्तु भगवान् की कृपा से श्याम क्रमशः उन्नति करता जा रहा था।

× × × ×

श्याम गिरीश से अलग होकर तुरंत कोठी पर पहुँचकर अपनी माँ से भाई गिरीश के सम्बन्ध की बातें बतलाने की कल्पना में पुलकित हो रहा था। उसे अपने बालकाल के कुछ संस्मरण अवश्य थे किन्तु उन्हें विकसित होने का अवसर न मिल सका था। आज अचानक गिरीश भैया से भेंट हुई और माँ-बाप का पता चला। अब मैं भी अपने पिता का नाम बता सकूंगा।

मोटर क्षणभर में कोठी पर जाकर रुकी। श्याम मोटर से उतर कर बैठक में होता हुआ अन्दर गया। ठाकुर साहब बैठक में उपस्थित न थे। वह भोजन करने के लए अन्दर जा चुके थे और श्याम की प्रतीक्षा में प्रभावती से बातें कर रहे थे।

श्याम को देखते ही प्रभावती उठी और खाना देना चाहती थी कि श्याम ने कहना शुरू किया, "माँ आज मेरा भाई गिरीश मिला था और उसने बतलाया कि मेरी माँ जीवित हैं।" आगे कुछ न बोल पाया। प्रभावती का हृदय अधीर हो उठा। वह कहने लगी, "सच तुम्हारे भाई से भेंट हुई थी, उसे यहाँ क्यों नहीं लिवा लाये।"

श्याम ने कहा, "हमने उनसे कहा और सरदार कीर्तिसिंह जी ने भी कहा, पर उन्होंने शाम को आने के लिए कहा है। रायबहादुर भोलानाथ के यहाँ रहते हैं।"

ठाकुर साहब ने कहा, "रायसाहब के यहां रहते हैं। वह तो हमारे बहुत मित्र हैं।"

प्रभावती—"शाम को हमी लोग चल कर मिल आयेंगे। वहाँ भैया से भी भेंट होगी और तुम्हारी माँ से भी।"

श्याम दूसरी मां के प्रति प्रभावती की उदार सेवा से कुछ संकुचित होकर सोच रहा था—कहीं प्रभावती को बुरा न लगे; लेकिन श्याम

के भाई तथा माँ बाप का पता लगने से प्रभावती एवं ठाकुर साहब को बेहद खुशी थी। वे जल्दी-से-जल्दी श्याम के भाई गिरीश और माँ के दर्शन कर कृतकृत्य होना चाहते थे।

ग्रीष्मान्त के मध्याह्न कालीन सूर्य के ताप से बाहर निकलने योग्य न था। मिनटों को गिन-गिन कर घंटे पूरे किए जाते थे। अन्य दिनों एक नींद में ही सारी दोपहरी समाप्त हो जाती थी, किन्तु उस दिन की दोपहरी के बीतने में बहुत समय लगा। सुग्गी प्रभावती से कह रही थी :

"दुलहिन, बड़ी भागि से साम के बडकऊ भइया और महतारी को पता चला है। भगवान् के गति नहीं कही जाइ सकति। छिन भरे म सब काम होइ सकत है।"

प्रभावती ने कहा, "ठीक कहती हो सुग्गी। अब चार बज गये हैं। चलो, तैयार हो जाओ; रायसाहब के यहाँ चलना है।"

ड्राइवर मोटर लेकर तैयार था ठाकुर साहब, प्रभावती श्याम तथा सुग्गी मोटर पर सवार होकर चल दिये।

× × × ×

गिरीश और मोहन दोनों ने घर पहुँचते ही श्याम के मिलने का समाचार माँ को बतलाया। सुनकर शान्ति गदगद होगई। रायसाहब ने कहा, "तुम्हारा लड़का गायब हो गया था और तुमने मुझ से कभी चर्चा भी नहीं की।"

शान्ति ने नम्र शब्दों में कहा, "हाँ, मैंने आप को नहीं बताया था परन्तु बहू जी को बतला दिया था।"

रायसाहब—"यदि मुझे मालूम होता तो श्याम कभी का मिल गया होता।"

कमला ने कहा—"हाँ जिस दिन यह आई थीं उसी दिन बतलाया था कि बच्चा खो जाने के कारण आने में देर हुई।"

रायसाहब ने कहा, "गिरीश, श्याम कहाँ पर रहता है।"

गिरीश—"गोवर्धनसराय में ठाकुर संग्रामसिंह के यहाँ रहता है।"

रायसाहब—"अच्छा, वे तो मेरे दोस्त हैं, कभी-कभी यहाँ आते ही रहते हैं। दुनियाँ में सभी चीजें भरी पड़ी हैं पर मिलती सब भाग्य से ही हैं। दोपहरी समाप्त कर ठाकुर साहब के यहाँ सब चलेंगे।"

शान्ति सोच रही थी—जो ठाकुर संग्रामसिंह इज्जत बिगाड़ने पर तुला था, उसे यदि मालूम हो जाय तो कहीं अनर्थ न कर बैठे। और उसकी इतनी कठोर आत्मा श्याम के प्रति कैसे पिघली। नहीं, उसने नहीं, बल्कि उसकी पत्नी ने पालन-पोषण किया होगा।

ठाकुर साहब के यहाँ चलने का समय हो गया। रायसाहब मोटर पर बैठ गये। शान्ति, गिरीश, कमला और मोहन सभी थे। मोटर-संचालन कार्य मोहन ही करने वाला था। जल्दी-जल्दी में अपनी घड़ी वहीं भूल गया वह। उसे लेने के लिए चला कि तब तक ठाकुर संग्रामसिंह की नई कार सामने आकर रुकगई।

ठाकुर साहब, प्रभावती, श्याम आदि उतर कर रायसाहब के यहाँ बरामदे में आकर खड़े हो गये।

रायसाहब ने देख कर कहा, 'अरे ठाकुर साहब तो यहीं आगये। मोटर से उतरकर ठाकुर साहब की ओर बढ़ते हुए कहा, "हम लोग तो आपही के यहाँ आ रहे थे।"

ठाकुर साहब—"मैं स्वयं सपरिवार हाजिर हूँ। ठाकुर साहब सब के साथ बैठक में पधारे।

बैठक में पहुँचते ही श्याम ने अपनी माँ को देखकर तुरंत पैर छूकर प्रणाम किया। शान्ति ने श्याम को कलेजे से लगा लिया। उसकी आंखों में प्रेमाश्रु छलछला आये !!

ठाकुर साहब ने देखा - कि वह तो वही शान्ति है। वे हकबका कर रह गयें।

शान्ति ने प्रभावती से कहा, "बहन, तुमने मेरे साथ बड़ा उपकार किया। यदि तुमने श्याम की मदद न की होती तो आज यह न जाने कहाँ होता; मैं आपकी बहुत ही कृतज्ञ हूँ।"

प्रभावती ने कहा, "आप ठीक कहती हैं; लेकिन मैं समझती हूँ कि आपने ही मेरा उपकार किया। यदि श्याम को आपने जन्म न दिया होता तो मैं अपने कर्तव्य में कैसे सफल हो सकती थी। आपकी कृपा से ही मुझे सेवा करने का अवसर मिला, यही मेरे लिए बहुत है।"

ठाकुर साहब अपने कलुषित कर्तव्य के भार से दबे जा रहे थे। उन्होंने सोचा पापों को छिपाना ठीक नहीं। उनका प्रायश्चित् करना ही उत्तम है। बोले, "शान्ति, मैं अपने अपराधों के लिए क्षमा चाहता हूँ। मैंने तुम्हारे साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया है।"

शान्ति ने कहा, "ठाकुर साहब कर्म-फल अनिवार्य होता है। उसे क्षमा करने का अधिकार मानवीय शक्ति से सर्वथा परे है। अतः उपकारों से निवृत्ति होने पर पश्चात्ताप करना भी व्यर्थ है। सत्कर्मों के फल स्वरूप ही मानव परोपकार की ओर प्रवृत्त होता है। मनोविकारों के जाल में पड़कर मनुष्य अपने कर्तव्य-कर्म को भूल जाता है और निज कृत-कर्मों का फल भोगने के लिए उसे बाध्य होना पड़ता है। अतः भावुकता और दुःसाहस का त्याग ही मनुष्य को कर्तव्य-पथ की ओर अग्रसर करा सकता है;" कोरी बिडम्बना कुछ नहीं कर सकती बस यही है मानव की सफल कर्म-साधना।

आज शांति के अन्दर से उसके पति की आत्मा बोल रही थी। रायसाहब, कमला, ठाकुर साहब और प्रभावती दंग रह गये। इन शब्दों को सुनकर शांति एक आदर्श भारतीयनारी की साकार सती साध्वी मूर्ति के समान उनके सामने खड़ी थी, निष्पाप, निश्कलंक शांति की सौम्य साधनामयमूर्ति के सम्मुख सभी के मस्तक झुक गये।

मोहन, गिरीश, और श्याम वयस्क होने पर भी इस रहस्यमय घटना का सार न समझ सके। वे मौन थे, प्रेमार्द्र और बेहद प्रसन्न।
